आचार्य विनोबा

प्रकाशकीय

पूज्य विनोबाजी के लोक-नीति सम्बन्धी विचारों का संकलन इस पुस्तक में किया गया है। 'राजनीति' की जगह अब 'लोकनीति' शब्द जनता की जबान पर चढ़ गया है। देश के बड़े-बड़े विचारक और राजनीतिज्ञ अब लोकनीति के विचार की ओर जिज्ञासा की दृष्टि से देखने लगे हैं।

पुस्तक तीन खण्डों में विभक्त है। पहला खण्ड बहुत छोटा है, फिर भी मूलभूत है। भारत के प्राचीन ऋषि जंगलों में रहते थे, लेकिन राज्यकर्ता समय-समय पर सलाह लेने उनके निकट पहुँचते थे। यह ऋषियों का 'अनुशासन' सबको मान्य होता था। इसकी एक झलक मात्र इस खंड में दी गयी है। इसमें लोकनीति का आध्यात्मिक बीज निहित है। दूसरे खण्ड में वर्तमान राज्यनीति, चुनाव, कानून, दण्डसत्ता, लोकतन्त्र, पक्ष-भेद आदि का विश्लेषण है। तीसरे खण्ड में लोकनीति की व्याख्या, ग्रामाभिमुख समाज, अहिंसक राज्य, ग्राम-स्वराज्य, सर्वसम्मति आदि का स्पष्टीकरण है। सर्वोदय की दृष्टि से लोकनीति का क्या स्वरूप होगा, राज्य की क्या स्थिति होगी आदि की दृष्टि से यह खंड महत्त्वपूर्ण है।

विनोबा-विचार की धारा गंगा की तरह अखंड बह रही है। किसी एक विचार को दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। गंगा की धारा में से चाहे चुल्लूभर पानी लीजिए चाहे घड़ाभर, उसमें कोई भेद नहीं किया जा सकता। इसी तरह यों ही यह संकलन 'लोकनीति' विषयक कहा और माना जायगा, परंतु विनोबा जिस सर्वोदय-विचार को साकार देखने के लिए गाँव-गाँव में भ्रमण कर रहे हैं, वह तो उनके प्रवचन-प्रवचन में प्रकट है। उनका हर शब्द

साधना और अनुभूति की ज्योति से ज्योतिर्मान् है। इसीलिए कहना चाहिए कि पुस्तक में एक ही विचार पाठकों को अनेक जगह दिखाई दे सकता है। लेकिन विनोबाजी की यह अनुपम खासियत है कि बार-बार पढ़ने पर भी हृदय हर बार नूतन-नूतन प्रेरणादायी आनन्द का अनुभव करता है। कम-से-कम मेरा तो यही अनुभव है।

आशा है यह पुस्तक राजनीतिज्ञों और राजनीति के विद्यार्थियों को नयी दृष्टि से सोचने की सामग्री प्रदान करेगी। लोकनीति में विश्वास रखनेवाले भी इसमें अपने मनोनुकूल स्पष्टता व्यापकता और व्यावहारिक मार्गदर्शन पा सकेंगे।

राजघाट काशी
सूरदास-जयन्ती
२१-४-५८

—जमनालाल जैन

यह तीसरा संस्करण

यह तीसरा संस्करण कुछ परिवर्धन तथा संशोधन के साथ प्रकाशित हो रहा है। पाठकों ने इस पुस्तक का उत्साहजनक स्वागत किया है, यह आनन्द की बात है। मराठी, उर्दू, पंजाबी आदि प्रादेशिक भाषाओं में भी इसके अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। अंग्रेजी अनुवाद भी हो रहा है।

राजघाट, काशी
७-१-६१

—प्रकाशक

उपोद्घात

लोग जब अपना इन्तजाम अपने-आप कर लेते हैं, तब उसे 'लोकशाही' या सार्वजनिक व्यवस्था' कहते हैं। सार्वजनिक व्यवस्था के सम्बन्ध में आम तौर पर तीन शब्द प्रचलित हैं लोकसत्ता लोकतन्त्र और लोकनीति। सत्ता' शब्द का अर्थ है, प्रतिष्ठापूर्ण अस्तित्व इज्जत की जिन्दगी। जिस इन्तजाम में साधारण नागरिक की इज्जत होती है और उसकी हैसियत समाज के किसी दूसरे व्यक्ति की बराबरी की होती है तब उसे 'लोकसत्ता' कहते हैं। सत्ता का असली अर्थ हुकूमत नहीं है बल्कि प्रतिष्ठा का जीवन है। जिस पद्धति में साधारण नागरिक की प्रतिष्ठा स्थापित होती है और बनी रहती है, उस पद्धति का नाम 'लोकतन्त्र' है। नागरिकों में एक-दूसरे के लिए जब इज्जत होती है और जब एक नागरिक दूसरे नागरिक की सुख सुविधा का विचार अपनी सुख-सुविधा के विचार से पहले करता है तब उस नागरिक व्यवहार को 'लोकनीति' कहते हैं। मतलब यह कि लोकनीति के बिना लोकतन्त्र ठहर ही नहीं सकता और न लोकसत्ता यथार्थ हो सकती है। नागरिक-चारित्र्य का आधार लोकनीति है।

क्या राज्य-व्यवस्था का और प्रशासन का कभी अन्त होगा ? यह प्रश्न अप्रस्तुत है। आज भी जब कोई कानून बनता है तो साधारण रूप से यह मान लिया जाता है कि कानून का पालन करनेवाले नागरिकों की तादाद ज्यादा होगी और कानून तोड़नेवालों की संख्या कम होगी। इसीलिए जेलखानों में थोड़े लोगों के रहने का इन्तजाम किया जाता है। और, अब तो यह कोशिश हो रही है कि उस इन्तजाम में भी सख्ती और हुकूमत की मात्रा कम होती चली जाय। कैदखानों का जो सुधार इधर हो रहा है, उसमें इन्तजाम ज्यादा है और बन्दोबस्त यहाँ तक हो सके कैदियों के हाथ में सौंपने की कोशिश है। अर्थात् हमारा रुख स्वतन्त्रता की तरफ है प्रशासन की तरफ नहीं। स्वतन्त्रता में स्वय-शासन आत्मनियन्त्रण अभिप्रेत है। यही अनुशासन या संयम कहलाता है। लोकनीति का यह प्राणभूत तत्त्व है।

लोगों में हम जिस प्रकार का सद्व्यवहार और शुभ व्यवहार कायम करना चाहते हैं उसको सामने रखकर कानून बनाते हैं। उन कानूनों के अनुसार लोकमत का निर्माण करना हर जिम्मेदार नागरिक का कर्तव्य है। मगर नागरिकों का कोई समुदाय या संस्था इस कर्तव्य को नहीं निभाती तो कानून का अमल दण्ड के भरोसे कराने की नौबत आती है। दण्ड-शक्ति से कानून का पालन कराने के अवसर जितने समाज में बढ़ेंगे उतनी लोकसत्ता और नागरिक स्वतन्त्रता क्षीण होती चली जायगी। जिन आदर्शों का और सदाचारों का समाज में हम विकास करना चाहते हैं उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं रहेगी। उदाहरण के लिए शराब-बन्दी ही ले लें। कांग्रेस प्रजा-समाजवादी केवल समाजवादी और कम्युनिस्ट—सभी यह चाहते हैं कि शराबखोरी और नशाबाजी समाज में न रहे। शराब-बन्दी का कानून बने या न बने इसके विषय में मतभेद भले ही हों लेकिन शराबखोरी न रहे इसके विषय में मतभेद नहीं है। कम्युनिस्ट देशों को तो इस बात पर गर्व है कि उन्होंने इस दिशा में आगे कदम बढ़ाया है। एक तरफ तो हम समाज से शराबखोरी का अन्त करना चाहें और दूसरी तरफ अगर शराब की मजलिसों और पार्टियों को सभ्य जीवन तथा आधुनिकता का चिह्न मानें तो शराब बन्दी के लिए जिस प्रकार के वातावरण की और जिस प्रकार के लोकमत की आवश्यकता है उस प्रकार का लोकमत किसी हालत में नहीं बन सकेगा। सामाजिक आदर्शों के अनुकूल लोकमत बनाने की जो कोशिश है वह राज्य नीति नहीं है, वह लोकनीति है।

अधिक संख्या का स्वार्थ वास्तविक लोकमत नहीं है। मान लीजिये कि किसी क्षेत्र में ९५ फीसदी स्पृश्य हैं और सिर्फ ५ फीसदी अस्पृश्य हैं तो क्या उस क्षेत्र में कभी कोई यह कह सकेगा कि सवर्णों का स्वार्थवाद ही वास्तविक लोकमत है? इसके विपरीत फर्ज कीजिये कि किसी इलाके में अस्पृश्यों की सरकार कायम हो गयी या उनका बहुमत है। अब वे परम्परा से उनको जो यन्त्रणाएँ भुगतनी पड़ीं उनका बदला लेना चाहते हैं तो क्या उनका यह प्रतिशोधवाद वास्तविक लोकमत माना जायगा? एक तीसरा उदाहरण लीजिये। गोरे जाति की एक भीड़ जोश से उन्मत्त होकर वहशिय

अफ्रीका या अमेरिका में किसी नीग्रो की चमड़ी उधेड़ना चाहती है, तो क्या उसका यह सामूहिक उन्माद यथार्थ लोकमत की संज्ञा का पात्र होगा ?

लोकतंत्र के लिए यह सब मर्म-प्रश्न हैं। इन पर लोकतंत्र का जीवन मरण निर्भर है। जो कमजोर हैं, जिनकी तादाद कम है या जो व्याधिग्रस्त हैं अथवा अपंग हैं, उनकी स्वतंत्रता जहाँ अबाधित रहती है और उनकी सुख सुविधा का जहाँ प्रबन्ध होता है, वहीं सुशासन या सुव्यवस्था कही जा सकती है। इसीलिए भीड़ की मनोवृत्ति या सामूहिक आवेश न तो लोकमत है न लोकनीति ही।

हरएक नागरिक की स्वतन्त्रता और अल्पमत की सुरक्षितता वास्तविक लोकतंत्र की कसौटी है। नागरिक व्यक्ति और अल्पसंख्य समुदाय के पास दोनों प्रकार के बाहुबल का अभाव होता है—न तो उसके पास हथियारों की ताकत होती है और न वोटों की। तब उसके अधिकारों का अधिष्ठान क्या हो सकता है ? बहुमत का सौजन्य और शुभ व्यवहार ही अल्पमत की स्वतन्त्रता का सहारा हो सकता है। यह दण्ड-निरपेक्ष है और सत्ता-निरपेक्ष है यही लोकनीति है।

दो व्यक्तियों के आपस के व्यवहार में जहाँ सौदा और कायदा दाखिल होता है वहाँ स्नेह और विश्वास नहीं रह सकता। जब परस्पर व्यवहार क्षीण होता है तभी दो व्यक्तियों के संबंध में सत्ता और विधान का प्रवेश होता है। दुनियाभर के सभी सुधारक यही चाहते हैं कि मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार का आधार सौदा और कायदा न हो। कोई नहीं चाहता कि उसके और उसकी माँ के बीच उसके और उसके बेटे के बीच उसके और उसके बाप के बीच तथा उसके और उसकी बीबी के बीच कानून का दखल हो। सौदे का तो क्या, वहाँ सवाल ही नहीं उठता। तामदानियत और कुलीनता की पहचान ही यह है कि कौटुम्बिक व्यवहार में सौदेबाजी और अदालतबाजी का नामोनिशान ही न हो। विनोबा का यही कहना है कि नागरिकों का आपस का व्यवहार सौजन्य और परोपकार की बुनियाद पर होना चाहिए। उसमें आज अगर कानून कहीं दखल देता है तो वह धीरे-धीरे कम होना चाहिए और आखिर में मिट जाना चाहिए। यही शासन-मुक्त समाज का

जाते हैं। शासन-मुक्त व्यवहार मनुष्यों का सहज व्यवहार है। जहाँ स्वार्थों में टक्कर आ जाती है, वहाँ कानून का प्रवेश होता है। इसका यही इलाज है कि व्यक्तियों के और व्यक्ति-समूहों के स्वार्थों में मुकाबला जिन कारणों से होता है वे कारण समाज में न रहें। स्वार्थों के मुकाबले के मौके कम हो जायँगे तो वो नागरिकों के बीच कानून के आने की जरूरत नहीं होगी। जहाँ सौदागिरी कम हो जाती है, वहाँ कौटुम्बिकता कायम होती है। इसका नाम है 'शोषणमुक्त समाज'। जहाँ विवादबाद और कानूनबाजी का अन्त होता है, वहाँ भी कौटुम्बिक रिश्तेदारियाँ कायम हो जाती हैं। इसका नाम है 'शासनमुक्त समाज'।

सवाल यह नहीं है कि क्या कभी ऐसी तारीख आवेगी जब कि समाज में हुकूमत के बिना बंदोबस्त होगा बल्कि सवाल यह है कि हमारा रुख किस तरफ होगा? क्या हरएक स्वतन्त्रतावादी और लोकतंत्रवादी नागरिक यह नहीं चाहता कि नागरिकों के जीवन में सीधे या तथा विधि-विधान का बोझ कम-से-कम हो? बस यही लोकनीति है।

नागरिकों में सांपत्तिक स्पर्धा न हो यह तत्त्व तो अब सर्वमान्य हो गया है। इसीलिए सभी लोग संग्रह, संपत्ति और स्वामित्व के राज्यीकरण राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण की बात कहने लगे हैं। दूसरे कई लोग संग्रह और स्वामित्व के निराकरण की तथा अपरिग्रह और ट्रस्टीदारी की बात करते हैं। आशय सभी का एक ही है कि आर्थिक क्षेत्र में व्यक्तियों के बीच स्पर्धा न हो। सेवा और दान के ही लिए क्यों न हो जो व्यक्ति संपत्ति की प्राप्ति और रक्षण में मग्न होता है, वह प्रायः ऐसे क्षेत्र और अवसर खोजता है जो अर्जन के लिए और संग्रह के लिए अधिक-से-अधिक अनुकूल हों। उसकी एक दृष्टि और मनोवृत्ति बन जाती है। उसी प्रकार जो व्यक्ति लोक-कल्याण या सार्वजनिक सुप्रबन्ध के उद्देश्य से सत्ता की प्राप्ति और रक्षण में व्यस्त रहता है वह भी ऐसे क्षेत्र और अवसरों की खोज करता रहता है, जो उसकी उम्मीदवारी के लिए और सफलता के लिए अधिक-से-अधिक अनुकूल हों। जनता के लिए प्रतिनिधित्व अधिक-से-अधिक सुलभ प्रत्यक्ष और उपयुक्त हो यह तो लोकतन्त्र का मूल विचार है। लेकिन इसके बदले वह यह सोचने लगता

है कि मैं या मेरी पार्टी चुनाव में 'सफल' कहाँ से और किस मौसम में हो सकते हैं। लोक-प्रतिनिधित्व की तरफ से यहीं का लोकक सत्ता-प्राप्ति की तरफ झुकता चला जाता है। उम्मीदवारी के लोकतंत्र में यह और एक गंभीर दोष है। हर पार्टी और उम्मीदवार अपनी हुकूमत का हुक्का चलाता है। लोकसत्ता के लिए यह भी आवश्यक है कि सत्ता के क्षेत्र में भी स्पर्धा न हो। सांपत्तिक स्पर्धा अगर मनुष्यों के बंधुत्व में बाधा पहुँचाती है, तो क्या सत्ता की स्पर्धा कम बाधा पहुँचाती है? आर्थिक प्रतियोगिता अगर अनर्थकारक है, तो लोकतंत्र में सत्ता की प्रतियोगिता भी लोक-क्षयकारक है। मुट्ठीभर लोगों के हाथ में संपत्ति और स्वामित्व का केन्द्रीकरण अगर सार्वजनिक अभ्युदय के प्रतिकूल है तो थोड़े से लोगों के हाथ में राज्य-शक्ति और दण्ड-शक्ति का केन्द्रीकरण भी सार्वजनिक स्वतन्त्रता में बाधक है। इसीलिए इन पृष्ठों में लोकनीति का एक लक्षण सत्ता का विकेंद्रीकरण और अधिकारों का विभाजन भी बतलाया गया है।

अब रही एक और बात। जहाँ वास्तविक लोकतंत्र होगा और यथार्थ स्वातंत्र्य होगा यानी जहाँ नागरिक एक-दूसरे के सुख का विचार करनेवाले संयमशील और अनुशासन-प्रिय होंगे वहाँ लौकिकता और पवित्रता में कोई अंतर नहीं रह जायगा। जो Secular है, वह Secred भी होगा। लौकिकता ही नैतिकता होगी। लोक-व्यवहार ही जब सदाचारमूलक और नीतिमय बन जाता है तब सर्वत्र यथार्थ लोकनीति विराजती है। लोकनीति के ये निष्कर्ष समाज में कायम करने के लिए उन व्यक्तियों का परामर्श उपयोगी सिद्ध होता है जिन्होंने अपरिग्रह का और सत्ता-निरपेक्ष जीवन का व्रत लिया हो। ये लोग सत्ता और दण्ड के प्रयोग के बिना सभ्य लोकमत का विकास करते हैं और लोक-चारित्र्य की नींव रखते हैं। ये लोकात्मा के वास्तविक उपासक होते हैं। यही लोकनीति के अभिभावक होते हैं।

लोकतंत्र का अधिष्ठान कुछ ऐसे लोकयम हैं जिनका उल्लंघन कोई सत्ताधारी पक्ष समूह और स्वयं सर्वजनता का स्रोत जनता भी नहीं कर सकती। भगवान् शंकराचार्य ने तो ईश्वर के ऐश्वर्य की भी यह मर्यादा बतलायी है

कि वह अपनी नियति का भंग स्वयं भी नहीं कर सकता इसीमें उसके ऐश्वर्य का गौरव है। उसी प्रकार लोकनीति के जो प्राणभूत मूल्य हैं उनका उल्लंघन सर्वसत्तासम्पन्न लोक-समुदाय सर्वसम्मति से भी नहीं कर सकता। यही लोकतंत्र की मर्यादा और प्रतिष्ठा है। सभी प्रगतिशील व्यक्तियों ने संसारभर में दो बातें शुद्ध लोक-व्यवहार के लिए आवश्यक मानी हैं। एक तो यह कि भक्त और भगवान् के बीच में कोई पुरोहित या उपाध्याय न हो और दूसरी यह कि चीज बनानेवाले के और बरतनेवाले के बीच में कोई बिचौली न हो। इन्हीं दो उद्देश्यों को लेकर आज तक दुनिया में धर्म-सुधार हुए हैं। अब एक कदम आगे रखना है। परलोक और व्यापार के क्षेत्र में जिस तत्त्व को हमने स्वीकार किया उसीको लोकसत्ता के और सार्वजनिक सुप्रबन्ध के क्षेत्र में भी स्वीकार करना है। नागरिक व्यवस्था में व्यवस्थापकों की और प्रतिनिधियों की संख्या अल्पतम होनी चाहिए। यही प्रत्यक्ष लोकसत्ता है साक्षात् लोकतंत्र है। इस दिशा में कदम बढ़ाने के लिए पारिवारिक भावना से अभिमंत्रित मर्यादित क्षेत्रों की आवश्यकता है। इसीका नाम 'ग्राम स्वराज्य' है।

सारांश यह कि राज्यनीति और लोकनीति की भूमिका में तथा प्रक्रिया में मूलभूत अंतर है

१ राजनीति से राज्यवाद पुष्ट होता है। लोकनीति से नागरिक के पुरुषार्थ को प्रोत्साहन मिलता है।

२ राज्यनीति राज्य-संस्था को लोक-कल्याण का मुख्य उपकरण मानती है, इसलिए वह लोगों को राज्यावलम्बी एवं सत्ताभिमुख बनाती है। लोकनीति नागरिकों को एक-दूसरे की स्वतन्त्रता के अभिभावक मानकर उनके अभिक्रम से स्थापित संस्थाओं के द्वारा लोकहित का मार्ग प्रशस्त करती है।

३ राज्यनीति में प्रशासन अधिक विस्तृत और तीव्र होता जाता है, लोकनीति में प्रशासन की जगह अनुशासन और आत्मसंयम लेता है।

४ राजनीति में सत्ता की प्रतिस्पर्धा और अधिकार-ग्रहण तथा प्रति-निविरण के लिए उम्मीदवारी होती है, लोकनीति में लोक-चारित्र्य के विकास के लिए सेवा की तत्परता होती है, उम्मीदवारी का निषेध होता है।

५. राजनीति में प्रत्येक नागरिक अपने-अपने अधिकार और स्वत्व के प्रति नित्य जागरूक रहता है, लोकनीति में हर नागरिक अपने कर्तव्य के प्रति और पड़ोसी के अधिकार के प्रति जाग्रत रहता है।

विनोबा ने अपने भाषणों में जगह-जगह अपनी अनुपम शैली में और अनुकरणीय विवेचन-पद्धति से निरूपण किया है। यहाँ हृदय की उदात्त भावनता विचारों की सूक्ष्मता और निरूपण की सम्यक्ता सभी गुण है। पाठक स्वयं ही रसास्वादन करें।

राजघाट काशी
२१४'५८

—दादा धर्माधिकारी

अनुक्रम

(खण्ड पहला)

(खण्ड दूसरा)

(खण्ड तीसरा)

परिशिष्ट

●

खण्ड पहला

ऋषि-अनुशासन १

तीन प्रकार के राज्य

बहुत प्राचीन काल में राजा तो थे किन्तु लोग उन्हें चुनते थे। वे ऋषियों की सलाह लेते थे। कोई भी बड़ी बात निकली सवाल पैदा हुआ कि वे ऋषि के पास जाते और उनकी सलाह से राज्य चलाते थे। उस समय ऋषि का राज्य था पर वह गद्दी पर नहीं बैठता था अपने आश्रम में ही रहता था। राजा ही बार-बार दौड़कर ऋषि के पास जाता था। ऋषि ध्यान एवं चिन्तन कर राजा के सवालों का जवाब देता और राजा उसकी बात सुनता। राजा दशरथ वशिष्ठ ऋषि के कहे अनुसार चलता था। जब विश्वामित्र ने दशरथ से लड़के माँगे तो उसे देने का मन नहीं हुआ क्योंकि लड़के छोटे थे। उसने देने से इनकार कर दिया। पर जब वशिष्ठ ने कहा "तुम कैसे बेवकूफ हो! जब विश्वामित्र तुमसे लड़कों को माँगता है, तो तुम्हारे देने में ही उनका कल्याण है।" बस ऋषि की आज्ञा होते ही राजा ने बात मान ली और लड़के सौंप दिये। वे ऋषि चुने नहीं जाते थे। वे आश्रम में ही बैठकर ध्यान चिन्तन करते और दुनिया की भलाई सोचते थे। वे इन्द्रिय-निग्रह एकान्त-तपस्या उपवास आदि करते कन्द-मूल खाते और काम क्रोध आदि को जीतने की कोशिश करते थे। ऐसे ऋषियों की बात राजा मानते और उनके कहे अनुसार राज्य चलाते थे।

राज्य तीन प्रकार के होते हैं १ ऋषि का राज्य २ राजा का राज्य और ३ ज्यादा लोगों का राज्य। बीच के जमाने में जब राजा का राज्य चलता था तब राजा भला हो तो जनता सुखी और भला न हो तो दुखी होती थी। माने वह तो नसीब का खेल था। पर अब लोगों की वजह से

राज्य चलता है। लोग मूर्ख हों तो चुने जानेवाले मूर्खों के सरदार होते हैं और लोग पढ़े-लिखे हों तो चुने जानेवाले अक्लवालों के सरदार होते हैं। इसीलिए लोग पढ़े-लिखे होने चाहिए। पर यह जब होगा तब होगा आज तो लोग मूर्ख ही हैं। तो लोगों का राज्य राजा का राज्य और ऋषि का राज्य—इनमें से आपको जो अच्छा लगे उसे चुन लें।

आज की पद्धति का खतरा

अक्सर कहा जाता है कि ऋषि की अक्ल का राज्य अच्छा होता है। पर ऋषि कौन है यह कैसे पहचाना जाय? इसलिए ऋषि का राज्य अच्छा होने पर भी चल नहीं सकता। राजा का राज्य तो खराब है ही। इसीलिए आज लोगों का राज्य चलता है। इसमें लोग शराब चाहते हों तो सरकार को शराब की दूकानें खोलनी पड़ती हैं और लोग नहीं चाहते तो बन्द करनी पड़ती हैं। लोग बाहर से अनाज मँगवाना चाहें तो सरकार को बाहर से लाना पड़ता है। इसका मतलब यह है कि लोगों की मर्जी की बात है। जो ज्यादा लोग जिस बात को मानते हों वह बात होती है। लेकिन ज्यादा लोग जिस बात को मानते हों, वह अच्छी ही होगी यह नहीं कहा जा सकता। इसीलिए ऋषि की सलाह में जाना पड़ता है और उनकी राय लेनी पड़ती है। कई बार सज्जनों की राय एक होती है और सामान्य लोगों की दूसरी। तो, इस समय किसकी राय मानें यह सोचने की बात है। आज की राज्य-पद्धति में यही सबसे बड़ा खतरा है।

मनु की कहानी

मनु महाराज तपस्या कर रहे थे। प्रजा राज्य-कारोबार चलाती थी। लेकिन अच्छा राज्य नहीं चलता था। इसलिए लोग मनु के पास गये और उनसे उन्होंने प्रार्थना की कि आप राजा बन जायें। मनु ने कहा कि "मैं तो तपस्या कर रहा हूँ। यह छोड़कर राजा का काम करूँगा तो आपको मेरी सब बातें माननी होंगी। फिर कभी यह मत कहना कि हम इस बात को नहीं मानते। जब प्रजा ने यह कबूल किया तब मनु महाराज राजा बने। मनु को यह हठ और चालीसवाला मामला मंजूर नहीं था। उन्होंने कहा कि सब

लोग चाहते हों तो हम आयेंगे नहीं तो राम-नाम लेंगे। मतलब मुझे 'सौ में से सौ' का मत मिलना चाहिए। केवल 'बहुमत' से मैं राजा बनना नहीं चाहता।

उपनिषद्कालीन राज्य का वर्णन

एक राजा उपनिषद् में अपने राज्य का वर्णन करता है :

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यः, न मद्यपः।
न अनाहिताग्निः न अविद्वान् ॥

अर्थात् मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, कोई कंजूस नहीं है। जहाँ कंजूस होते हैं, वहाँ चोर होते हैं। हमने कई दफा कहा है कि कंजूस चोरों का बाप होता है। कंजूस ही चोरी को बढ़ावा देते हैं। उसने यह भी कहा था कि मेरे राज्य में कोई भी मद्य नहीं पीता। उस समय हिन्दुस्तान में कोई भी मद्य नहीं पीता था। लेकिन अंग्रेजों ने शराब को फैशन बनाया और शहरों में शराब धड़ल्ले से चली। आज उसे रोकने में भी हमें डर लगता है। उस राजा ने यह भी कहा कि मेरे राज्य में कोई अविद्वान् नहीं है—ऐसा कोई नहीं है, जो पढ़ना-लिखना नहीं जानता। और मेरे राज्य में ऐसा भी कोई नहीं है, जो भगवान् की पूजा नहीं करता। माने बहुत ही प्राचीन काल से यहाँ विद्या चली आ रही है। किन्तु आज हमें आत्मज्ञान और विज्ञान दोनों का सम्मिलन करना है। प्राचीन काल से चला आनेवाला ज्ञान हासिल करना है और पश्चिम की ओर से विज्ञान भी लेना है। नालन्दा के खंडहर हमें यही सिखाते हैं। इसी तरह हमें अपने गुणों का विकास करना चाहिए।

नालन्दा (बिहार)
१०-८-'५१

तटस्थ सेवकों की आवश्यकता

जो चुनाव से अलग रहें और ठीक ढंग से चिन्तन-मनन करें, वे ही लोग शासक होने चाहिए। दुनिया का खेल तो चलता ही है, पर वह ठीक से चलता है या नहीं यह देखनेवाला खिलाड़ी नहीं हो सकता। खेल से दूर रहनेवाला ही यह पहचान सकता है। जो खेल से अलग खड़ा हो, वही जान सकता है कि खेल में कहाँ कौन-सी गलतियाँ हो रही हैं। इसीलिए कुछ लोग ऐसे

चाहिए, जो चुनाव के क्षेत्र से अलग रहें और शान्ति से चिन्तन, मनन और भक्ति करें। वे लोगों की हालत देखें। जहाँ लोगों की गलती हो वहाँ उन्हें बतायें और जहाँ राज्य चलानेवालों की गलती हो वहाँ उन्हें बतायें। फिर वे मानें या न मानें यह उनकी मर्जी की बात है। उनके कथनानुसार कोई चलता है या नहीं इसकी उन्हें परवाह न होनी चाहिए। उनका काम तो केवल अध्ययन, चिन्तन, मनन और दुनिया की सेवा ही होना चाहिए। राजा और प्रजा दोनों की गलती वे ही बता सकते हैं, जो केवल सेवा करते हों।

सर्वोदय-समाज के लोग

इसी कल्पना को लेकर हमने गांधीजी के जाने के बाद सर्वोदय-समाज बनाया। हमने चाहा कि इसमें केवल सेवा करनेवाले हों जो चुनाव में न पड़ें। भगवान् कृष्ण ने कहा था कि 'कौरव और पाण्डवों को लड़ना हो तो लड़ सकते हैं। मैं तो अर्जुन के रथ का सारथी बनूँगा लेकिन लड़ाई में हिस्सा नहीं लूँगा।' फिर भी उन्हें एक बार शस्त्र हाथ में लेना पड़ा पर व्यास मुनि तो अलग ही रहे। जब अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र फेंका और फिर अर्जुन ने भी फेंका तो दुनिया का संहार होने लगा। उस समय व्यास-मुनि बीच में आये और उन्होंने अर्जुन से कहा कि तुम ब्रह्मास्त्र रोको। अर्जुन ने उनका कहना मान लिया। इस तरह उन्होंने लड़ाई में तो हिस्सा नहीं लिया पर दुनिया को संहार से बचाने के लिए बीच में आ गये। ऐसे ही कुछ लोग होने चाहिए।

सर्वोदयी शासक और प्रजा की कड़ी

सर्वोदयवाले वे होंगे जो राजा और प्रजा दोनों के बीच खड़े होंगे। उनका काम होगा दोनों की गलतियाँ बताना, दोनों में प्रेम बढ़ाना, एक-दूसरे का सन्देश एक-दूसरे के पास पहुँचाना और प्रजा का बल बढ़ाना। वे न सरकार में शामिल होंगे और न भीड़ों में। वे दोनों से अलग रहेंगे और उनके सच्चे सेवक होंगे। वे दोनों के गुण-दोष वहाँ बीच खड़े बतायेंगे, सबसे प्रेम करेंगे, पर किसी भी दल में शामिल नहीं होंगे। पार्टियों के कारण गाँव के टुकड़े होते हैं, उनमें मार [illegible]

के नाते ही सबकी सेवा करेंगे। हिन्दुस्तान में तो पेड़ के पत्ते जैसी अनगिनत जातियाँ हैं। लेकिन सर्वोदय-समाज ने कहा है कि हम हजार प्रकार नहीं चाहते। क्या गंगा-जल कभी पूछता है कि तू गाय है या शेर या बकरी? वह तो यही कहता है कि तू प्यासा है तो तेरी प्यास बुझाना मेरा कर्तव्य है। जैसे गंगा-जल को भेद मालूम नहीं वह सबके साथ समान व्यवहार करता है, वैसे ही बापू ने हमें यह तालीम दी है कि सब पर प्यार करो। पार्टी जाति आदि मत देखो सत्ता हाथ में मत लो।

डौंग (उत्तर प्रदेश)
१७-५-५२

हमारी प्राचीन ग्राम-रचना

अंग्रेजी-राज आने के बाद यहाँ की पुरानी सभ्यता टूट गयी। पहले यहाँ ग्राम-सभाएँ होती थीं पंचायत का राज चलता था। गाँव की पैदावार गाँव की तालीम गाँव की रक्षा आदि गाँव का सारा महत्त्व का कारोबार पंचायत ही करती थी। पंचायत का मतलब है पाँचों जातियों का मिलकर काम करना। यह एक किस्म की सामुदायिक योजना थी। सारी जमीन पंचायत की थी और किसान को काश्त करने के लिए उसका एक हिस्सा दिया जाता था। वैसे ही धोबी नाई आदि सभीको एक-एक हिस्सा दिया जाता था। इस तरह सारा गाँव एक परिवार की तरह रहता था और गाँव में पंचायत का राज चलता था। इसीको असली स्वराज कहते हैं।

चकरी बरारी (बिहार)
२१-४-'५२

खण्ड दूसरा

शक्ति का अधिष्ठान २

स्वराज्य से पूर्व राजनीति में शक्ति

हम लोगों को कुछ दिशा-सूझ हो रही है। जब देश विदेशियों के हाथ में रहता है और आजादी हासिल करने का सवाल आता है, तब शक्ति का अधिष्ठान राजनीति में रहता है। इसलिए महात्मा लोग भी राजनीति में हिस्सा लेना अपना कर्तव्य समझते हैं। तिलक महाराज से पूछा गया कि स्वराज्य प्राप्त करने के पश्चात् आप क्या करेंगे तो उन्होंने कहा था कि "मैं तो ज्ञान की उपासना करूँगा विद्यार्थियों को पढ़ाऊँगा। उन्होंने ऐसा इसलिए कहा था कि अध्ययन-अध्यापन उनके जीवन की दृष्टि का आन्तरिक विषय था। दिनभर राजनैतिक काम करने के बाद रात को जब वे सोने जाते तो वेदाभ्यास कर लेते ऐसी उनकी ज्ञानपिपासा थी। फिर भी वे राजनीति में पड़े। वे जानते थे कि यदि इस वक्त राजनीति में नहीं पड़ते हैं तो किसी भी तरह की सेवा करना मुश्किल होगा। इसलिए उस समय उन्होंने राजनीति को 'परम धर्म' माना। तात्पर्य यह कि जिस पुरुष का प्रेम राजनीति में न हो उसे भी देश की परतन्त्रता की स्थिति में राजनीति में उतरना पड़ता है, क्योंकि वहाँ त्याग का अवसर होता है और त्याग में ही शक्ति का अधिष्ठान होता है।

शक्ति का अधिष्ठान समाज-सेवा में

लेकिन जब देश स्वतन्त्र हो जाता है तब शक्ति का अधिष्ठान बदल जाता है। तब शक्ति राजनीति में नहीं समाज-सेवा में रहती है क्योंकि फिर समाज का ढाँचा बदलना होता है आर्थिक विषमता मिटानी होती है। ये सारे काम सामाजिक क्षेत्र में करने पड़ते हैं। उसमें त्याग के प्रसंग आते हैं,

कष्ट सहन करने पड़ते हैं, भोग-लालसा को संयम में रखना पड़ता है, वैराग्य की जरूरत पड़ती है। इसलिए शक्ति इसी क्षेत्र में रहती है। लेकिन जिन्हें इसका भान नहीं होता वे गलतफहमी में रहते हैं कि शायद शक्ति का अधिष्ठान अब भी राजनीति में ही है और वे उसी क्षेत्र की ओर दौड़ जाते हैं। वहाँ सत्ता तो रहती है लेकिन शक्ति नहीं।

सत्ता और शक्ति में बहुत अन्तर है। थोड़ा विचार करने से ही इन दोनों का फर्क मालूम हो जाता है। सत्ता में एक पद तो प्राप्त होता है। और, जब देश स्वतंत्र हो गया और सत्ता हाथ में ले ली तो वहाँ जाना जरूरी हो जाता है। लेकिन वहाँ इने-गिने लोग ही जा सकते हैं। वहाँ एक सीमित क्षेत्र होता है, उसमें संविधान और कानून की सीमा होती है, उसके भीतर रहकर मालिक जिस तरह की सेवा चाहता है उस तरह की सेवा उसे करनी पड़ती है। लेकिन वहाँ भी मनुष्य को जाना पड़ता है और वहाँ मोह भी काफी है। कदम-कदम पर मोह, लोभ और लालच के अवसर आते रहते हैं। गिरने की सम्भावना रहती है। इसलिए वहाँ जनक महाराज जैसे निर्लिप्त वृत्तिवाले लोगों की आवश्यकता होती है। कम लोग ही वहाँ जा सकते हैं। उनकी तादाद बहुत कम होगी। बाकी अधिक लोग जो रह जाते हैं, उन्हें सामाजिक क्षेत्र में काम करना चाहिए और देश को आग से बचाने की शक्ति निर्माण करनी चाहिए।

आज समाज की जो स्थिति है उसे स्वीकार कर सेवा करना सत्तावालों के लिए भी सरल नहीं। मिसाल के तौर पर कोई भी सत्ताधारी सत्ता के आधार पर हिन्दुस्तान में बीड़ी बन्द नहीं कर सकता, क्योंकि आज का समाज इस बुरी आदत को छोड़ नहीं सकता। इस बुरी आदत से छुड़ाना उन लोगों का काम है जो सामाजिक क्षेत्र में सेवा करते हैं। समाज-सेवक इसके खिलाफ समाज को आगे ले जाने का काम कर सकता है और अनुकूल वातावरण बन जाने पर सत्ताधारी बीड़ी को बन्द करने का कानून बना सकते हैं। अमेरिका में आज शराबबन्दी नहीं हो सकती, क्योंकि वहाँ का समाज शराबबन्दी के लिए अनुकूल नहीं है। हिन्दुस्तान में शराबबन्दी हो सकती है, क्योंकि यहाँ की भूमि में उसके अनुकूल वातावरण मौजूद है।

राजनैतिक सत्ता में समाज को आगे ले जाने की अधिक शक्ति नहीं। वह शक्ति और वृत्ति सर्वबन्धनों से निर्लिप्त सर्वस्वार्थों से अलिप्त सेवापरायण वृत्ति से समाज की सेवा करनेवालों में ही हो सकती है क्योंकि इस वस्तु का भान राजनैतिक कार्यकर्ताओं को नहीं है वे उसी क्षेत्र में जाने का प्रयत्न करते हैं। अगर यह भान हो तो बहुत सारे लोग सामाजिक क्षेत्र में आने की कोशिश करेंगे।

गांधीजी ने इसीलिए दूर दृष्टि से 'लोक-सेवक-संघ' बनाने की सलाह दी थी जिसे हमने नहीं माना। उसके लिए किसीको दोषी नहीं ठहराया जा सकता। जिन्होंने कांग्रेस को कायम रखा उनके पीछे भी एक विचार था। चाहे उस विचार में गलती हो पर मैं उसे मोह नहीं कहूँगा। लेकिन अब कांग्रेस के सामने ऐसा कोई कार्यक्रम चाहिए, जिससे रोजमर्रा कुछ त्याग के प्रसंग आयें। जब तक कांग्रेस के सभासदों की कसौटी उस कार्यक्रम पर नहीं होगी तब तक कांग्रेस की शुद्धि मृगजलवत् होगी ऐसी मेरी नम्र राय है।

इसलिए मेरे जो मित्र आज कांग्रेस में हैं और जो किसान-मजदूर प्रजा पार्टी में या समाजवादी पार्टी में हैं, उन सबसे मेरा कहना है कि जो लोग राजनीति में जाना चाहते हैं उन्हें मैं 'ना' नहीं कहता परन्तु बाकी सबको समाज-सेवा में लग जाना चाहिए। वरना समाज की प्रगति कुण्ठित हो जायगी। इतना ही नहीं समाज नीचे भी गिर सकता है। इसलिए एक बड़ी जमात समाज में ऐसी होनी चाहिए, जो निरन्तर सेवा में लगी रहे जागरूकता के साथ सेवा करती रहे। उसे राजकाज का अनुभव भी रहे लेकिन सत्ता से अलग रहकर निर्भयता के साथ तटस्थ-बुद्धि से अपने विचार जाहिर कर सके, जिसका नैतिक असर सरकार और लोगों पर पड़ सके। वही ऐसी जमात हो सकती है जो सत्ता में न पड़े—सत्ता की मर्यादा समझकर—घृणा से नहीं बल्कि यह समझकर कि शक्ति का अधिष्ठान सत्ता में नहीं समाज सेवा में है।

सत्ता से अलग सर्वोदय-समाज

आजकल यह खयाल हो रहा है कि बहुमत के खिलाफ एक विरोधी दल होना चाहिए, नहीं तो लोकतन्त्र का रूपान्तर आधिपत्य (एकतन्त्र) में हो

सकता है। यह सारी पश्चिम की परिभाषा है और चूँकि हमने लोकतन्त्र का विचार पश्चिम से ही ग्रहण किया है, इसलिए यह परिभाषा भी रहेगी और यह विचार भी रहेगा। यह विचार गलत नहीं है। इसलिए बहुमत के अलावा अल्पमतवालों का भी आदर कर दोनों—चाहे राजनीति में विरोधी हों—मिलकर रहें और परस्पर प्रेम से काम करें प्रेम में कोई फर्क न आने दें। इससे कुछ नियन्त्रण रहेगा और सत्ताधारियों की शुद्धि होगी। वे गलतियाँ करने से बचेंगे।

लेकिन इतने से काम पूरा नहीं होता। देश की शुद्धि का और देश की उन्नति का काम तभी होगा जब सत्ता के दायरे से अलग रहकर सब तरह से विवेकशील अध्ययनशील त्यागशील सेवकों की एक जमात कायम होगी। हमने ऐसे समाज को 'सर्वोदय-समाज' का नाम दिया है। सर्वोदय कोई पंथ नहीं उसमें कोई काम अनिवार्य नहीं उसमें कोई कड़ा अनुशासन नहीं प्रेम से विचार समझकर सर्वोदय की सेवा करनी चाहिए।

राजघाट, (दिल्ली)
१४ ११ '५१

दण्डनिरपेक्ष लोक-शक्ति ३

श्रद्धा अहिंसा पर, क्रिया सेना-वृद्धि की

कुछ महीने पहले की बात है। दिल्ली में कुछ नामी विद्वान् एकत्र हुए थे और उन्होंने अहिंसा के दर्शन के बारे में कुछ चिन्तन-मनन और विमर्श किया। यह अखबारों में आता रहा और हम पढ़ते रहे। उसमें राजेन्द्रबाबू ने जिक्र किया था कि "आज कोई भी देश यह हिम्मत नहीं कर रहा है कि हम फौज के बगैर काम चलायेंगे।" उन्होंने इस बात पर दुःख भी प्रकट किया कि "बावजूद इसके कि बापूजी की सिखावन हमने उनके श्रीमुख से सीधी अपने कानों सुनी और उनके साथ कुछ काम भी किया है, हिन्दुस्तान

भी आज ऐसी हिम्मत नहीं कर सक रहा है। हमारे महान् नेता पंडित नेहरू कई बार कह चुके हैं कि दुनिया का कोई मसला शस्त्र-बल से हल नहीं हो सकता। हमारे वे भाई, जो देश का नेतृत्व कर रहे हैं और जिन पर यह जिम्मेवारी देश ने डाली है, अहिंसा को दिल से मानते हैं। उनका हिंसा पर विश्वास नहीं है। फिर भी हालत यह है कि सेना को बनाने-बढ़ाने और उसे मजबूत करने की जिम्मेवारी उनको माननी पड़ती है। विचित्र परिस्थिति है।

स्थिति यह है कि हमें भासता है श्रद्धा एक वस्तु पर है और क्रिया दूसरी ही करनी पड़ती है। हम चाहते तो यह हैं कि सारे हिन्दुस्तान में और दुनिया में अहिंसा चले। हम एक-दूसरे से न डरें, बल्कि एक-दूसरे को प्यार से जीतें। प्यार ही कामयाब हो सकता है और सबको जीत सकता है ऐसा विश्वास दिल में भरा है। फिर भी एक दूसरी चीज हममें है जिसे 'बुद्धि' नाम दिया जाता है। वैसे वह भी हृदय का एक हिस्सा है और हृदय भी उसका एक हिस्सा है यों दोनों मिले-जुले हैं फिर भी हृदय कहता है कि हिंसा से कोई भी मसला हल नहीं होगा। एक मसला हल होता-सा दीखेगा तो उसमें से दूसरे दसों नये मसले पैदा होंगे। लेकिन बुद्धि तो तीन गुणों से भरी है। उसमें कुछ विचार की शक्ति है और कुछ आवरण भी कुछ दर्शन है और कुछ अदर्शन भी। ऐसी सम्मिश्र बुद्धि हमसे कहती है कि "हम सेना को हटा नहीं सकते। जिस जनता के हम प्रतिनिधि हैं वह उतनी मजबूत नहीं है। उसमें वह योग्यता नहीं है। इसलिए उसके प्रतिनिधि के नाते हम पर यह जिम्मेवारी आती है कि हम सेना बनाये रखें और उसे मजबूत करें।

आज लगता है कि रचनात्मक कार्य करें, पर यह सिर्फ दिल की इच्छा है। बुद्धि कहती है कि "सेना बनानी होगी इसलिए सेना-तंत्र जिससे मजबूत बन सकेगा ऐसे धन्धों को स्थान देना होगा। जिनकी श्रद्धा चरखे पर कम है, उनकी बात छोड़ देता हूँ। लेकिन जिनकी चरखे पर पूरी श्रद्धा है, उनसे जब यह सवाल पूछा जाता है कि क्या चरखे और ग्रामोद्योग के जरिये आप युद्ध-तन्त्र मजबूत बना सकते या खड़ा कर सकते हैं? तो उनकी बुद्धि और हमारी भी बुद्धि—क्योंकि उनमें हम भी सम्मिलित हैं—कहती है कि नहीं इन छोटे-छोटे उद्योगों के जरिये हम युद्ध-तन्त्र खड़ा नहीं कर सकते।

सत्ता की कुर्सी जादू की कुर्सी है

यह मैं आत्मनिरीक्षण के तौर पर बोल रहा हूँ। जो आज वहाँ जिम्मेवारी के स्थान पर बैठे हुए हैं उनकी जगह अगर हम बैठते तो अभी वे जो कर रहे हैं उससे बहुत कुछ भिन्न हम करते ऐसा नहीं है। वह स्थान ही वैसा है। वह जादू की कुर्सी है। उस पर जो आसन्न होगा उस पर एक संकुचित सीमित बने-बनाये और अस्वाधीन दायरे में सोचने की जिम्मेवारी आती है। ऐसे दायरे में जिसे मैंने 'अस्वाधीन' नाम दिया है, लाचारी से दुनिया का झोंक जिस दिशा में बहता हुआ दीख पड़ता है उसी दिशा में सोचने की जिम्मेवारी उन पर आती है। अमेरिका रूस जैसे बड़े-बड़े राष्ट्र भी एक-दूसरे से डर जाते हैं और कम ताकतवर पाकिस्तान और हिन्दुस्तान जैसे राष्ट्र भी। इस तरह एक-दूसरे से डर जाते हुए, 'शस्त्र-बल से सैन्य-बल से कोई मसला हल नहीं हो सकता' ऐसा विश्वास रखते हुए भी हम शस्त्र-बल और सैन्य बल पर ही आधार रखते हैं उसका आधार नहीं छोड़ सकते।

दयनीय स्थिति

आज हम ऐसी विचित्र परिस्थिति में हैं। इस पर अगर कोई हमें दाम्भिक या ढोंगी कहेगा तो वह वैसा कहने का हकदार साबित होगा यद्यपि उसका कथन सही नहीं है। यदि हमारे दिल में कोई दूसरी बात है और उसे हम छिपाते हैं तो हम जान-बूझकर ढोंगी हैं। लेकिन जहाँ दिल एक बात को कबूल करता है और परिस्थितिजन्य बुद्धि दूसरी बात कहती है इसलिए लाचारी से कोई बात करनी पड़ती है तो वह दाम्भिकता की तो नहीं बल्कि दयनीयता की स्थिति है। आज हम ऐसी दयनीय स्थिति में पड़े हैं।

स्वतन्त्र लोक-शक्ति का निर्माण

कभी-कभी लोग पूछते हैं कि "आप बाहर क्यों रहते हैं? देश की जिम्मेवारी आप क्यों नहीं उठाते? मैं कहता हूँ कि दो बैल जब गाड़ी में जुत चुके हैं वहाँ मैं और एक तीसरा गाड़ी का बैल बन जाऊँ, तो उतने से गाड़ी को क्या मदद मिलेगी? अगर मैं वह रास्ता जरा ठीक बना दूँ,

ताकि गाड़ी उचित दिशा में जाय तो उसे अधिक-से-अधिक मदद पहुँचा सकता हूँ। हाँ एक बात जरूर है कि अगर मैं बैल ही हूँ तो मुझे बैल ही बनना चाहिए, वही काम करना चाहिए। मैं एक विशेष भाषा में बोल रहा हूँ और उम्मीद करता हूँ कि आप उसे सहन भी करेंगे। हमारी संस्कृति में बैल के लिए जितना आदर है उतना मनुष्य के लिए भी नहीं है। और उसी अर्थ में मैं बोल रहा हूँ। जो राज्य की धुरा उठाता है, उसे हम 'धुरन्धर' कहते हैं। 'धुरन्धर' के मानी होते हैं बैल! धुरन्धर हमें बनना पड़ता है। लेकिन जो लोग धुरन्धर बन चुके हैं वे कहते हैं कि अब आप वही काम मत कीजिये जो हम कर रहे हैं। उस काम में आप मत लगिये बल्कि जो कमियाँ हम महसूस करते हैं उनकी पूर्ति कर सकें तो करें। इसी आशा से वे लोग हमारी तरफ देखते हैं। तो यह हमें ठीक से समझना चाहिए और इस दृष्टि से स्वतन्त्र लोक-शक्ति निर्माण करनेवाले काम में लग जाना चाहिए। तभी हम आज की सरकार की सच्ची मदद और अपने देश की समुचित सेवा कर सकेंगे।

'हमें स्वतन्त्र लोक-शक्ति निर्माण करनी चाहिए'—इसका अर्थ यह है कि हिंसा-शक्ति की विरोधी और दंड-शक्ति से भिन्न लोक-शक्ति हमें प्रकट करनी चाहिए। आज की हमारी जो सरकार है, उसके हाथ में हमने दण्ड शक्ति सौंप दी है। उस दंड-शक्ति में हिंसा का एक अंश जरूर है फिर भी हम उसे 'हिंसा' नहीं कहना चाहते हिंसा से अलग वर्ग में रखना चाहते हैं। हम उसे हिंसा-शक्ति से भिन्न दंड-शक्ति कहना चाहते हैं क्योंकि यह शक्ति उनके हाथ में सारे समुदाय ने दी है। इसलिए यह निरी हिंसा-शक्ति नहीं बरन् दंड-शक्ति है। किन्तु उस दंड-शक्ति का भी उपयोग करने का मौका न आये ऐसी परिस्थिति देश में निर्माण करना हमारा फर्ज होगा। अगर हम यह करेंगे तो हमने स्वधर्म पहचाना और उस पर अमल करना जाना यह माना जायगा। अगर ऐसा नहीं करेंगे और दंड-शक्ति के उपयोग से ही हो सकनेवाली जन-सेवा का लोभ रखेंगे तो जिस विशेष कार्य की हमसे अपेक्षा की जा रही है उसे हम पूर्ण नहीं करेंगे बल्कि संभव है कि हम बोझ-रूप भी साबित हों।

निष्ठुरता के राज्य में दया

थोड़ा स्पष्टीकरण कर दूँ। दंड-शक्ति के आधार पर सेवा के कार्य हो सकते हैं और वैसा करने के लिए ही हमने राज्य-शासन चाहा और हाथ में लिया है। जब तक समाज को वैसी जरूरत है, उस शासन की जिम्मेवारी हम छोड़ना नहीं चाहते। सेवा तो उससे जरूर होगी पर वैसी सेवा नहीं जिससे दंड-शक्ति का उपयोग ही न करने की परिस्थिति निर्माण हो।

एक मिसाल लीजिये। लड़ाई चल रही है। सिपाही जख्मी हो रहे हैं। उन सिपाहियों की सेवा में जो लोग लगे हैं वे भूतदया से परिपूर्ण होते हैं। वे शत्रु-मित्र तक नहीं देखते अपनी जान खतरे में डालकर युद्ध-क्षेत्र में पहुँचते और ऐसी सेवा करते हैं जैसी माता अपने बच्चों की कर सकती है। इसलिए वे दयालु होते हैं इसमें कोई शक नहीं। यह सेवा कीमती है, यह हर कोई जानता है। लेकिन युद्ध को रोकने का काम वे नहीं कर सकते। उनकी दया युद्ध को मान्य करनेवाले समाज का एक हिस्सा है। जैसे एक यन्त्र में छोटे बड़े अनेक चक्र होते हैं, वे एक-दूसरे से भिन्न दिशाओं में काम करते होते फिर भी उस यन्त्र के ही अंग हैं। तो एक ही युद्ध-यन्त्र का एक अंग है, सिपाहियों को कत्ल किया जाय और उसीका दूसरा अंग है, जख्मी सिपाहियों की सेवा की जाय। उनकी परस्परविरोधी दोनों गतियाँ स्पष्ट हैं। एक क्रूर कार्य है तो दूसरा दयात्मक है, यह हर कोई जानता है। पर उस दयालु हृदय की यह दया और उस क्रूर हृदय की यह क्रूरता दोनों मिलकर युद्ध बनता है। दोनों युद्ध बनाये रखनेवाले दो हिस्से हैं। कठोर वैज्ञानिक भाषा में बोलना हो तो जब तक हमने युद्ध को कबूल किया है, तब तक चाहे हमने उसमें जख्मी सिपाही की सेवा का पेशा लिया हो चाहे सिपाही का हम दोनों युद्ध के गुनह गार हैं।

यह मिसाल इसलिए दी कि सिर्फ दयालु कार्य करने से यह न समझें कि हम दया का राज्य बना सकेंगे। राज्य तो निष्ठुरता का है। उसके अंदर दया रोटी के अंदर नमक-जैसी रुचि पैदा करने का काम करती है। जख्मी सिपाहियों की उस सेवा से हिंसा में ताकत पैदा होती है, युद्ध में रुचि पैदा

होती है परन्तु उस दया से युद्ध की समाप्ति नहीं हो सकती। अगर हम लोग इस तरह की दया का काम करें, जिससे निठुरता के राज में दया प्रजा के नाते यह काम निर्दयता की हुकूमत में दया चले तो हमने अपना असली काम नहीं किया। इस तरह जो काम दया के बीच पड़ते हैं, जो रचनात्मक भी दीख पड़ते हैं, उन्हें हम दया और रचना के लोभ से व्यापक दृष्टि के बिना ही उठा लें तो कुछ तो सेवा हमसे बनेगी पर वह सेवा नहीं बनेगी, जिसकी जिम्मेदारी हम पर है और जिसे हमने और दुनिया ने अपना स्वधर्म माना है।

प्रेम पर भरोसा

मैं दूसरी स्पष्ट मिसाल देता हूँ। हर कोई पूछता है कि "आपका वजन सरकार पर भी कुछ दीखता है। तो आप यह क्यों नहीं जोर लगाते कि सरकार कोई कानून बना दे और बिना मुआवजे के भूमि-वितरण का कोई मार्ग खोल दे। आप अपना वजन क्यों नहीं इस दिशा में इस्तेमाल करते ? मैं उनसे कहता हूँ कि भाई, कानून के मार्ग को मैं रोकता नहीं। अगर आप अपनी इच्छित दिशा में इससे ज्यादा और एक कदम मुझसे चाहते हैं तो मैं कहता हूँ कि जो मार्ग मैंने अपनाया है, उसमें यदि मुझे पूरा सोलह आने यश नहीं मिला बारह आने आठ आने भी मिला तो कानून के लिए सहूलियत ही होगी। इस तरह एक तो मैं कानून को बाधा नहीं पहुँचा रहा हूँ दूसरे, कानून को सहूलियत भी दे रहा हूँ। उसके लिए अनुकूल वातावरण बना रहा हूँ ताकि कानून आसानी से बनाया जा सके। पर इससे भी एक कदम आगे आपकी दिशा में जाऊँ और यही रटन रटूँ कि 'कानून के बिना यह काम नहीं होगा कानून बनाना चाहिए' तो मैं स्वधर्मविहीन साबित होऊँगा। मेरा वह धर्म नहीं है। मेरा धर्म तो यह मानने का है कि बिना कानून की मदद से जनता के हृदय में हम ऐसे भाव निर्माण करें, ताकि कानून कुछ भी हो, लोग भूमि का बँटवारा करें। क्या किसी कानून के कारण माताएँ बच्चों को दूध पिला रही हैं ?

मनुष्य के हृदय में ही कोई ऐसी शक्ति होती है जिससे उसका जीवन समृद्ध हुआ है। मनुष्य प्रेम पर भरोसा रखता है। वह प्रेम में से पैदा हुआ है

प्रेम में पलता है और आखिर जब दुनिया को छोड़कर जाता है, तब भी प्रेम की ही निगाह से जरा इधर-उधर देख लेता है। उस समय उसके प्रेमीजन अगर उसे दीख जाते हैं तो सुख से वह वह और दुनिया को छोड़कर जाता है। प्रेम की शक्ति का इस तरह अनुभव होते हुए भी उसको अधिक सामाजिक स्वरूप में विकसित करने की हिम्मत रखने के बजाय मैं अगर 'कानून-कानून' रट्टा रहूँ तो जन-शक्ति निर्माण करके सरकार जो हमसे मदद चाहती है, वह मैंने की ऐसा नहीं होगा। इसलिए दंड-शक्ति से भिन्न जन-शक्ति मैं निर्माण करना चाहता हूँ और हमें वही निर्माण करनी चाहिए। यह जन शक्ति दंड-शक्ति की विरोधी है ऐसा मैं नहीं कहता। वह हिंसा की विरोधी है। लेकिन मैं इतना ही कहता हूँ कि वह दंड-शक्ति से भिन्न है।

विचार-शासन

विचार-शासन याने विचार समझाना और समझना बिना विचार समझे किसी बात को कबूल न करना बिना विचार समझे अगर कोई हमारी बात कबूल करता है तो दुखी होना अपनी इच्छा दूसरों पर न लादना बल्कि केवल विचार समझा करके ही सन्तुष्ट रहना। कुछ लोग हमारे सर्वोदय-समाज की योजना की रचना को 'लूज आर्गनाइजेशन' माने 'शिथिल रचना' कहते हैं। रचना को अगर हम शिथिल करें, तो कोई काम नहीं बनेगा। इसलिए रचना शिथिल नहीं होनी चाहिए। पर यह 'शिथिल रचना' न होते हुए 'अरचना' है माने केवल विचार के आधार पर हम खड़े रहना चाहते हैं। हम किसीको आदेश नहीं देते जिसे कि वे बिना समझे-बूझे ही अमल में लायें। साथ ही हम किसीका आदेश कबूल भी नहीं करते जिस पर कि बिना सोचे और बिना पसन्द किये हम अमल करते जायें। बल्कि हम तो सलाह मशविरा करते हैं। कुरान में भक्तों का लक्षण गाया गया है कि उनका 'अम्र' याने काम परस्पर के सलाह-मशविरे से होता है। हम मशविरा करेंगे और तब बहुत खुश होंगे कि हमारी चीज हमारे सुननेवाले ने मान्य नहीं की और उस पर अमल नहीं किया जब कि उसको वह पसन्द नहीं आयी। उसके अमल न करने से हमें बहुत खुशी होगी। बिना समझे-बूझे अगर वह अमल करता है,

तो हमें बहुत दुःख होगा। मैं अपनी इस रचना में जितनी ताकत देखता हूँ उतनी और किसी कुशल स्पष्ट और अनुशासनबद्ध रचना में नहीं देखता। अनुशासनबद्ध बन्धयुक्त रचना में शक्ति नहीं होती यह बात नहीं। लेकिन वह शक्ति नहीं होती जो चित्त-शक्ति है और जो हमें पैदा करनी है। हमारे लिहाज से वह शक्ति नहीं है। इसीलिए विचार-शासन को हम मानना चाहते हैं। अगर यह ध्यान में आयेगा तो विचार का निरन्तर प्रचार करना हमारा एक कार्यक्रम बन जायगा जो हम नहीं कर रहे हैं और जो हमें करना चाहिए।

कर्तृत्व-विभाजन

दूसरा औजार है कर्तृत्व-विभाजन। सारा कर्तृत्व सारी कर्म-शक्ति एक केन्द्र में केन्द्रित न हो बल्कि गाँव-गाँव में कर्म-शक्ति कर्म-सत्ता निहित होनी चाहिए। इसलिए हम चाहते हैं कि हरएक गाँव को यह हक हो कि उस गाँव में कौन-सी चीज आवे और कौन-सी न आवे इसका निर्णय वह कर सके। अगर कोई गाँव चाहता है कि उस गाँव में कोल्हू चले और मिल का तेल न आवे आने वह अपने गाँव में मिल का तेल आने से रोके तो उसे रोकने का हक होना चाहिए। जब हम यह बात कहते हैं तो अधिकारी कहने लगते हैं कि इस तरह एक बड़ी स्टेट के अन्दर एक छोटी स्टेट नहीं चल सकती। इस पर मैं कहता हूँ कि अगर हम सत्ता और कर्तृत्व का विभाजन नहीं करते तो सेना-बल अनिवार्य है यह समझ लीजिये। फिर सेना के बगैर आज तो चलेगा ही नहीं कभी भी नहीं चलेगा। फिर कायम के लिए यह तय कीजिये कि सेना-बल से काम लेना है और सेना मुकम्मल रखनी है। फिर यह मत कहिये कि हम कभी-न-कभी सेना से छुटकारा चाहते हैं। अगर आप कभी-न-कभी सेना से छुटकारा चाहते हों तो परमेश्वर जैसा हमें भी करना होगा। परमेश्वर ने अक्ल का विभाजन कर दिया। हरएक को अक्ल दे दी—बिच्छू को भी और साँप को भी शेर को भी और मनुष्य को भी। कम-बेशी सही लेकिन हरएक को अक्ल दे दी और कहा कि अपने जीवन का काम अपनी अक्ल के आधार से करो। तब सारी दुनिया इतनी उत्तम चलने लगी कि वह विभाजित के पानी है यहाँ तक कि लोगों को शंका भी होती है कि परमेश्वर

है या नहीं ? हमें भी राज्य ऐसा ही बनाना होगा कि लोगों को यह शंका होने लगे कि आखिर यहाँ कोई राज्य-सत्ता है या नहीं ! हिन्दुस्तान में शायद राज्य-सत्ता नहीं है, ऐसा भी लोग कहें । तभी हमारा राज्य-शासन अहिंसक होगा ।

इसीलिए हम ग्राम-राज्य का उद्घोष करते और चाहते हैं कि ग्राम में नियंत्रण की सत्ता हो । अर्थात् ग्रामवाले नियंत्रण की सत्ता अपने हाथ में लें । यह भी एक जन-शक्ति का प्रश्न आया कि गाँववाले खुद यहीं ही बातें निर्णय करें कि अमुक चीज हमें पैदा करनी है और सरकार के पास माँग करें कि अमुक माल यहाँ नहीं आना चाहिए, उसे रोकिये । अगर वे रोकना चाहते हैं फिर भी मान लीजिये कि रोक नहीं सकते तो उसके विरोध में लड़ने होने की हिम्मत करनी होगी । इससे उस सरकार को अत्यन्त मदद पहुँचेगी क्योंकि इसीसे सैन्य-बल का छेद होगा । इसके बगैर सैन्य-बल का कभी छेद नहीं हो सकता । यह कभी नहीं हो सकता कि दिल्ली में ऐसी कोई अक्ल पैदा हो जाय—चाहे वह ब्रह्मदेव की अक्ल हो—जिसे चार दिमाग हों और जो चारों दिशाओं में देख सके । कितनी ही बड़ी अक्ल क्यों न हो, यह हो नहीं सकता कि उसके यहाँ से हरएक गाँव के सारे कारोबार का नियंत्रण और नियोजन हो और वह सारा-का-सारा सबके लिए लाभदायी हो । इसलिए 'नेशनल प्लानिंग' (राष्ट्रीय नियोजन) के बजाय 'विलेज प्लानिंग' (गाँवों का नियोजन) होना चाहिए । 'बजाय' मैंने कह दिया पर कहकर तो कहना यह होगा कि 'नेशनल प्लानिंग' का ही अर्थ विलेज प्लानिंग हो । उस विलेज प्लानिंग की मदद के लिए और जो कुछ करना पड़े उतना दिल्ली में किया जायगा । यह है हमारे कार्यक्रम का दूसरा अंग सम्पत्ति-विभाजन । हम जो कुछ करते हैं वह सारा सम्पत्ति-विभाजन की दिशा में ही । इसीलिए हम गाँवों में जमीन का बँटवारा करना चाहते हैं ।

तीसरी शक्ति

ये जो दूसरे काम हैं वे करेंगे, क्योंकि वे लोग उस उस काम पर काम करना चाहते हैं और उनकी उपयोगिता अलग है । लेकिन हमारा कोई नया

२

नहीं है। जिसे तीसरी शक्ति कहते हैं वे हम हैं। तीसरी शक्ति का मतलब आज दुनिया की परिभाषा में यह होता है कि जो शक्ति न अमेरिका के 'ब्लाक' में पड़ती है और न रूस के 'ब्लाक' में ही लोग उसे तीसरी शक्ति कहते हैं। लेकिन मेरी तीसरी शक्ति की परिभाषा यह होगी कि जो शक्ति हिंसा की शक्ति से विरोधी है अर्थात् हिंसा की शक्ति नहीं है और जो दण्ड शक्ति से भी भिन्न अर्थात् दण्ड-शक्ति भी नहीं है। एक हिंसा-शक्ति दूसरी दण्ड-शक्ति और तीसरी हमारी शक्ति। हम इसी शक्ति को व्यापक बनाना चाहते हैं। हमारा कोई अलग सम्प्रदाय नहीं बनना चाहिए, बल्कि हमें आम लोगों में घुल-मिलकर मानवमात्र रहना चाहिए।

चांडिल (बिहार)
७-३ ५३

सियासतवाले समझें

मंगलनगर हिन्दुस्तान के एक कोने में है, पर आपको तो समझना चाहिए कि दुनिया का हर गाँव दुनिया का मध्य बिन्दु है और दुनिया उसके इर्द गिर्द है। पुराने जमाने में प्रशान्त महासागर जापान और अमेरिका को अलग-अलग करनेवाला माना जाता था परन्तु अब विज्ञान के चरम विकास से वही तोड़नेवाला जोड़नेवाला बन रहा है। वही प्रशांत महासागर उन दोनों देशों को पड़ोसी बना रहा है। जब विज्ञान के विकास के फलस्वरूप जड़ शक्तियाँ जोड़नेवाली बन रही हैं तब आज का इन्सान और आज के सियासतदाँ (राजनीतिज्ञ) तोड़नेवाले बनते तो क्या टिकेंगे?

मैं इसीलिए राजनीतिज्ञों को 'नादाँ' कहता हूँ। वे समझते ही नहीं हैं कि काल-प्रवाह किधर जा रहा है। इसके लिए ही लड़ते हैं कि आबू गुजरात में रहना चाहिए या राजस्थान में। अरे, अब जमाना ऐसा आयेगा कि सारी दुनिया की दौलत सारी दुनिया की बनेगी। गुजरात का पेट्रोल गुजरात का नहीं भारत का भी नहीं दुनिया का होगा। इससे कम आधार पर यह दुनिया टिकनेवाली नहीं है लेकिन ये सियासतदाँ समझते ही नहीं। सामने खंभा होता है तो अंधे को तब मालूम होता है जब वह उससे टकरा जाता है, यह आज स्थिति है।

जवानों से अपील

आज राजनीति से कोई मसले हल होनेवाले नहीं हैं। वे तो बढ़ने ही वाले हैं। इसलिए जवानों से मेरी अपील है कि वे सियासत में न पड़ें। वे रूहानियत और विज्ञान की जोड़नेवाली शक्ति को पहचानें। विज्ञान के जमाने में हिंसा राजनीति चल नहीं सकेगी। यदि वह चली तो मानव खतम ही होनेवाला है। विज्ञान कह रहा है "या तो एक हो जाओ या मिट जाओ।

चन्द दिन पहले ख्रुश्चेव अमेरिका गये थे। उन्होंने ठीक उसी भाषा में प्रस्ताव रखा जिसमें बाबा बोलता है 'कुल शस्त्रास्त्र फेंक देने चाहिए, सेनाएँ खतम कर देनी चाहिए'। जिसके पास दुनिया की सबसे ज्यादा शक्ति है आज वह यह भाषा बोल रहा है, तो अब हृदय-परिवर्तन किसका बाकी है? हम लोगों का होना बाकी है, जो लाठियों से लड़ते हैं। गांधीजी के मरने के बाद जनरल मैकआर्थर ने, जो अभी-अभी शान्तिवादी बने हैं, कहा: "जब तक दुनिया गांधी की शरण नहीं जायगी, मसले हल नहीं होंगे।" इस सब पर से सोचना चाहिए कि दुनिया आज किधर जा रही है।

मुझे डर किससे है ?

ख्रुश्चेव ने जब प्रस्ताव रखा तो क्या वेद, उपनिषद्, धम्मपद या बाइबिल पढ़कर रखा? नहीं! उसने अनुभव से माना कि शस्त्रशक्ति विकासशील नहीं, मूढ़ शक्ति है, जिस किसीके पास चली जाती है, उसीकी हो जाती है। सज्जन दुर्जन का भेद उसे नहीं। यदि ख्रुश्चेव को यह विश्वास हो जाता कि वह शक्ति कम्युनिस्टों के पास ही रहनेवाली है, तो हिंसाशक्ति पर से उसका विश्वास कभी नहीं टूटता। ख्रुश्चेव का विश्वास अब हिंसाशक्ति से हिल गया है, उसे वे निरर्थक मानने लगे हैं। लोग पूछते हैं कि ख्रुश्चेव ऐसी भाषा तो बोलने लगे हैं, लेकिन आचरण? मेरा मानना है कि पहले मन में जो विचार आता है, वह वाणी द्वारा प्रकट होता है, फिर उससे कर्म निष्पन्न होता है। जो बात बोलने में आती, वह कर्म में आज ही आती है। अहिंसा पर श्रद्धा बैठी नहीं, पर हिंसा से उठ गयी है, ऐसी हालत में वे हैं। मैं अहिंसा का प्रेमी

होने के नाते एटम और हाइड्रोजन बमों का स्वागत करता हूँ क्योंकि वे अहिंसा के अधिक नजदीक हैं। संहार-शक्ति की जहाँ पर पराकाष्ठा हुई, वह फिर संहार-शक्ति का संहार होना ही बाकी रहता है। इसलिए उससे मुझे कोई डर नहीं है। मुझे तो डर लाठी तलवार, चाकू का है। जब तक मानव हृदय नहीं बदलेगा तब तक इनका उपयोग समाप्त नहीं हो सकता।

जमाने की गति

गौतम बुद्ध को २,५ वर्ष बाद जब जयन्ती मनाने का क्रम शुरू हुआ है। मालूम होता है गौतम बुद्ध कल ही पैदा हुए हैं। विश्व के अनन्तकाल में २ वर्ष तो बिन्दु के समान ही हैं। गौतम ने हमको अहिंसा की बात बतलायी। उनके जमाने में लोग तलवार से लड़ते थे। हार होती थी वह हिंसा शक्ति की नहीं उसकी कमी की मानी जाती थी। इसलिए अच्छे-से-अच्छे शस्त्र बनाने पर जोर दिया जाता था। इसीलिए लोग सेना और शस्त्रों की शक्ति बढ़ाते गये। यह क्रम बराबर बढ़ता गया और आज हम हाइड्रोजन बम और 'बैलेस्टिक वेपन्स' तक पहुँचे हैं। अब अहिंसा-शक्ति के चरम विकास के बाद यह स्थिति पैदा हुई है कि लोगों का हिंसा से ही विश्वास उठ रहा है माने बुद्ध ने जो अहिंसा की बात २५ वर्ष पहले कही थी उसकी ओर आज जमाना जा रहा है। बुद्ध ने कल जो कहा था आज हम उसे करने जा रहे हैं। इस पर से हमें समझना चाहिए कि अब राजनीति और हिंसा निकम्मी चीजें हैं। उनके स्थान पर प्रेम करुणा की ताकत प्रकट करनी है।

संगानेर (राजस्थान)
२९ ११ '५८

'अभय' और 'करुणा' ४

आज भारत का विशेष दायित्व

स्वराज्य के बाद हम लोगों की जिम्मेवारी सब प्रकार से बढ़ गयी। हमें स्वराज्य विशेष ढंग से हासिल हुआ है। इसलिए भी हमारी जिम्मेवारी कुछ विशेष बढ़ी है, क्योंकि उसीके कारण दुनिया में हमारे लिए कुछ आशा बनी है। इसके अलावा भारत की अपनी एक नित्यनूतन सभ्यता है। इसीको हम पुराण-सभ्यता कहते हैं। पुराण-सभ्यता की व्याख्या हम यह करते हैं कि जो देश पुराना होते हुए भी नवीन है। नित्य नूतनता पुरातनता का लक्षण है। जो सभ्यता नित्य नया रूप धारण कर सके, वही 'प्राचीन' कहलाती है। जिसमें यह शक्ति नहीं है वह सभ्यता छिन्न-विच्छिन्न हो सकती है। भारत की सभ्यता में एक विशेष दर्शन होता है। उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग रहते हैं। उन सबकी सभ्यताओं को इसने हजम कर लिया है। इसलिए भारतीय सभ्यता बहुत ही परिपुष्ट और मधुर हुई है। सबके साथ अविरोध साधन और सबसे प्रेम के साथ रहने की भारत की अपनी एक विशेष सभ्यता है। उसीके कारण हम पर एक जिम्मेवारी आती है।

इसके अलावा आज दुनिया की ऐसी स्थिति है, जिसमें बहुत देश डाँवाडोल हैं। मैंने तो कई बार कहा है कि ऐसी हालत में हम पर यह जिम्मेवारी आती है कि हम अपना दिमाग कायम रखें। उन लोगों के दिमाग आज बढ़ गये हैं। उन्होंने बहुत दिमाग चलाया और उत्तरोत्तर शस्त्रास्त्र बढ़ाते गये। शान्ति की जरूरत वे भी महसूस करते हैं। 'बैलेन्स ऑफ पॉवर' (शक्ति के संतुलन) से शान्ति स्थापित करने की उन्होंने कोशिश की पर उनका वह प्रयत्न चल न सका। दो विश्वयुद्ध हो चुके और तीसरा टालने की वे कोशिश कर रहे हैं। इसलिए जिस तरह पहले उनका हिंसा पर विश्वास था वैसा आज नहीं रहा। किन्तु इसके बदले में अभी उनका अहिंसा पर भी विश्वास नहीं बैठा। आज

वे ऐसी ही बीच की हालत में हैं। जब मनुष्य के मन में अस्वस्थता और अनिश्चितता होती है, तब उसका दिमाग काम नहीं करता। इस ओर या उस ओर, ऐसी निश्चित दिशा मनुष्य लेता है तभी वह कर्मयोग कर सकता है। किन्तु जहाँ व्यवसायात्मक बुद्धि है वहाँ संशय है। ऐसी हालत में चाहे वे चिंतन भला सकें पर उनकी बुद्धि काम न कर सकेगी। अभी पश्चिम में बहुत तत्त्व-विचार चलता है पर वहाँ किसी प्रकार की श्रद्धा नहीं दीखती। वे लोग अपने पुरुषार्थ की पराकाष्ठा कर चुके फिर भी उन्हें राह नहीं दीखती तो उनका दिमाग काम नहीं करता। ऐसी हालत में यही दीख रहा है कि हिन्दुस्तान की तरफ दुनिया की निगाह है। इसीलिए हिन्दुस्तान पर जिम्मेवारी भी आती है।

श्रद्धा में अभय हो

ऐसी हालत में हमारे राज्यकर्ताओं को गहरे चिंतन से ही हरएक कदम उठाना चाहिए। उत्तम 'एडमिनिस्ट्रेशन' (शासन) चलाना एक कर्तव्य माना गया है। जिसके राज्य में शान्ति और व्यवस्था रहती है और साधारण राज्यकर्ता भी यही सोचते हैं कि 'बहुत ज्यादा परिवर्तन न हो जितना हो सके उतना ही परिवर्तन किया जाय' वही उत्तम राज्य-व्यवस्था है। मेरी नम्र राय है कि हिन्दुस्तान के लिए अब इतना ही काफी नहीं। साधारण राज्य व्यवस्था चलती है लोगों को बहुत तकलीफ नहीं होती इतने से ही हमारा समाधान नहीं होना चाहिए। माने व्यवस्था और सामाजिक शान्ति इतना आदर्श अपर्याप्त है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि जिसे आजी लोग 'समृद्धि' कहते हैं—याने 'जीवनमान बढ़ाना' वह भी काफी नहीं। वे 'जीवनमान' बढ़ाने की बात जरूर करें पर इतना काफी नहीं। हिन्दुस्तान का जीवनमान बहुत गिरा है उसे ऊपर उठाना है यह ठीक है। किन्तु हमारे देश के सामने परमेश्वर ने जो कार्य रखा है उसे सोचते हुए यह बहुत ही छोटी चीज है ऐसा लगता है।

आखिर हमारे लिए कौन-सी मुख्य चीज होनी चाहिए? इस प्रसंग में मैं पुराना शब्द ही इस्तेमाल करूँगा 'अभयम्'। हमारे राज्य में अभय होना

चाहिए। हिन्दुस्तान के राज्यशास्त्र में यह एक बहुत ही महत्त्व का शब्द है। उसमें लिखा है कि प्रजा में अभय होना चाहिए। विशेष बात यह है कि हिन्दुस्तान की पारमार्थिक भाषा में भी 'अभय' शब्द महत्त्व का है। आपको मालूम होगा कि गीता में सबसे बढ़कर स्थान अभय को दिया गया है। पारमार्थिक दृष्टि यही रही कि मनुष्य को सदा निर्भय रहना चाहिए और यहाँ के राज्यशास्त्र की भी यही दृष्टि रही। साधारण शान्ति से थोड़ा-सा सुखवृद्धि का प्रयत्न हो रहा हो फिर भी जहाँ निर्भयता न हो, वहाँ हमने अपना काम नहीं किया ऐसा ही मैं कहूँगा। आज दुनिया जितनी भयभीत हुई है उतनी शायद कभी न हुई होगी। राष्ट्र-के-राष्ट्र भयभीत हैं। इसलिए दुनिया को वही बचायेगा जो व्यक्तिगत और सामाजिक तौर पर भी निर्भय बनेगा।

मेरी निगाह में राज्य और सरकार की कोई जरूरत नहीं, अगर हम सामाजिक अभय नहीं स्थापित कर सकते। मैं किसीको दोष नहीं दे रहा हूँ। आपने देखा कि स्वराज्य के बाद भारत में कितनी बार गोलियाँ चलीं। आप कह सकते हैं कि इससे भी ज्यादा चल सकती थीं, लेकिन हमने कम चलायीं। पर यह दूसरी बात है। जिन्होंने गोलियाँ चलायीं, उन्हें मैं दोष नहीं देता, उन्होंने कर्तव्यबुद्धि से और बहुत ही तटस्थ बुद्धि से काम किया। किन्तु गोली चलाने का मतलब यह है कि समाज में अभय नहीं है। इसलिए राज्यसंस्था का यह काम है कि अपने राज्य में भय-निराकरण करे।

देश के भयस्थान मिटाये जायँ

अपने देश में सबसे अधिक भय का स्थान कौन-सा है? पहला, प्रजा में अत्यन्त दारिद्र्य का होना और दूसरा, प्रजा में एकरसता का न होना। ये दोनों बड़े भारी भय के स्थान हैं। इसलिए राज्यसंस्था से यह आशा की जायगी कि वह इन दोनों भयस्थानों को दूर करे। इसलिए स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम यह दर्शन होना चाहिए था कि सबसे गरीब, सबसे नीचे स्तरवाले को मदद मिल रही है। जैसे पानी कहीं से भी दौड़ता है, समुद्र के लिए दौड़ता है—समुद्र को भरने के लिए ही वह बहता है। वैसे ही सारी सरकारी और जनता की संस्थाएँ दुखियों का दुःख निवारण कर रही हैं, ऐसा दीखना चाहिए था।

मैंने एक सहज प्रश्न पूछा और राज्यकर्ताओं के सामने रखा था कि मुझे यह बताइये कि जो भी अच्छा काम किया जा रहा है, उसमें से कितना हिस्सा गरीबों के पास जाता है? भगवान् को 'विश्वनाथ' और 'जगन्नाथ' कहते हैं, क्योंकि वह सबका संरक्षक है। फिर भी उसका विशेष नाम है 'दीनानाथ' दीनों का रक्षणकर्त्ता। हमारी राज्यसंस्था दीनानाथ होनी चाहिए, लेकिन होता उससे उल्टा है। गाँव में 'इलेक्ट्रिसिटी' आती है, तो वह आम लोगों के लिए नहीं रहती। कुछ लोगों का यह खयाल है कि 'बाबा गांधीजी का चेला है ग्रामोद्योग वगैरह चाहता है, वह बिजली नहीं चाहता होगा। मैं उनसे कहता हूँ कि मुझे तो 'एटोमिक एनर्जी' भी चाहिए। लेकिन यह सोचिये कि बिजली पहले किसके पास पहुँचती है। पहले बड़े शहरों में जाती है, उसके बाद दूसरे गाँवों में जाती है। गाँवों में भी उसे पहले मिलती है, जिसके पास पैसा हो और जो उसे ले सके। परिणामस्वरूप वह कुछ लोगों का धंधा बन जाता है। जो दूर-दूर के गाँव हैं, वहाँ तो बिजली पहुँचती ही नहीं। गरीबों के पास बिजली जायगी भी तो वह निरुपयोगी प्रकाश के रूप में उत्पादन के लिए न जायगी। किन्तु सूर्यनारायण इससे बिलकुल उल्टे काम करता है। वह उगता है, तो उसका प्रकाश उस झोपड़ी में प्रथम जाता है जिसके दरवाजे नहीं हैं फिर वह शहरों में प्रवेश करता है और सबसे आखिर में बड़े-बड़े महलों में जाता है। वहाँ लोग अपने भवन आदि छोड़कर खुले खेत में आते हैं तो सूर्यनारायण उनकी मदद में फौरन दौड़ता है। सूर्यनारायण नंगे की जितनी सेवा करता है उतनी पहने हुए की नहीं। यह उसकी खूबी है कि सबसे प्रथम जिसे उसकी आवश्यकता है उसे मदद देता है। इसी तरह बिजली हम चाहेंगे लेकिन प्रश्न है कि क्या बिजली उनके पास पहुँचती है?

अब तो मैं गाँव-गाँव घूमता हूँ और दीनों के दुःख अच्छी तरह जानता हूँ। कम्युनिटी प्रोजेक्ट चलानेवाले भी मुझसे मिलते हैं। हाल ही में [illegible] मिले थे। उन्होंने भी यही कहा कि हमारी मदद उन्हींको पहुँचती है जो मध्य [illegible] हैं। सरकार और कम्युनिटी प्रोजेक्ट की तरफ से भी मदद उन्हें मिलती है जिन्हें [illegible] होगी। शंकर के साथ शादी करने के लिए कौन तैयार है? वह तो सर्व प्रकार से दरिद्र है। उसके साथ शादी करने में जिन

पार्वती ही तैयार की। पर आज तो सब कन्याओं के पिता लक्ष्मीवान् देखकर अपनी कन्याएँ उन्हींके घर पहुँचाते हैं। जो दरिद्र गुणवान् है, उसके पास अपनी कन्या पहुँचाने के लिए कौन तैयार है ? पर जो तैयार होगा वही भय का एक स्थान टाल सकेगा। ऐसा दर्शन मुझे अपने देश में नहीं हो रहा है। मैं फिर से कहूँगा कि इसमें मैं किसीको दोष नहीं दे रहा हूँ लेकिन हमारा काम क्या है, इस ओर आपकी दृष्टि खींचना चाहता हूँ।

'पंचवार्षिक योजना' की नकल मेरे पास आयी है। मुझसे कहा गया है कि उस पर मैं अपना अभिप्राय दूँ। मैंने कहा "मैं उसकी भाषा नहीं समझ सकता मैं समझता हूँ वैसी अगर उसकी भाषा हो तो ठीक है। इस पर वे पूछने लगे कि "कौन-सी भाषा है ?" मैंने कहा कि 'बापू ने कहा था कि कस्तूरबा-ट्रस्ट का काम उन गाँवों में चलना चाहिए, जहाँ जनसंख्या दो हजार से नीचे हो। क्या शहर वालों से बापू का द्वेष था ? जो सबसे दुःखी अवयव है उसके पास पहले मदद पहुँचनी चाहिए। इसलिए मैंने कहा कि पंचवार्षिक योजना में यह बात होती कि इतनी सारी रकम ऐसे छोटे-छोटे गाँवों के लिए खर्च हो रही है, तब तो मैं यह भाषा समझ सकता। एक प्रसिद्ध कहानी है—पूछा गया था कि नदी में पानी कितना है ? चार फुट या तीन फुट ? कोई निर्णय नहीं होता था। यानी उसमें खतरा है या नहीं यह कोई नहीं कह सकता था।

हम जेल में थे तो राजनीतिक कैदियों का वजन बहुत घटा था। बहुत हो-हल्ला हो गया। ऊपर से पूछा गया कि इस तरह वजन क्यों घटा ? फिर जेलर की तरफ से सबका वजन लिया गया। ध्यान में आया कि औसत एक पौंड वजन बढ़ा। उसने लिख दिया कि दो हजार कैदियों का वजन औसतन एक पौंड बढ़ा। जाहिर था कि औसत एक पौंड बढ़ा लेकिन इसमें पचासों का वजन घटा था। इस तरह औसत से कोई निर्णय नहीं होता कि खतरा है या नहीं ?

सारांश दुःखियों को किस तरह मदद पहुँचायी जा रही है, यह ध्यान में आयेगा तभी ठीक होगा। यह जब तक नहीं होगा तब तक जनता में अभय नहीं होगा। अभी बंबई में इतने दंगे हुए, हमें उसका बिलकुल आश्चर्य नहीं लगा बल्कि आश्चर्य यही लगा कि इतने कम तादाद में दंगे क्यों हुए। बम्बई में

लाखों लोग फुटपाथ पर अपना जीवन बिताते हैं इसलिए आश्चर्य इस बात का होना चाहिए कि इतनी भी शान्ति यहाँ कैसे है। इसका उत्तर यही है कि हिन्दुस्तान की सभ्यता में ऐसी चीज है जिसके कारण यह शान्ति है। कोई भी निमित्त होता है तो दंगा हो जाता है। लेकिन निमित्त मुख्य नहीं मुख्य चीज तो यह है कि दुखियों को मदद मिलनी चाहिए। इसी तरफ हमारा ध्यान जाना चाहिए।

एकरसता के लिए नयी तालीम चाहिए

दूसरी बात यह है कि अपनी जनता में एकरसता नहीं है। इसके कई कारण हैं। यह देश अनेक मानव-वंशों का बना हुआ है। इसलिए इतनी एकरसता तो अभी आ नहीं सकती। फिर भी यह देश का एक मसला है इसलिए राज्य कर्ताओं को इसकी चिन्ता होनी चाहिए कि यह सारा भिन्न-भिन्न समाज एक कैसे बनाया जाय। इसका यही उपाय है कि देश की तालीम बदली जाय। मुझे इस बात का आश्चर्य होता है कि हमारे देश में राज्य बदला पर तालीम नहीं बदली। मैंने तो उसी दिन कहा था कि आज पुराना राज्य गया तो जैसे पुराना झण्डा एक क्षण के लिए भी नहीं टिक सकता वैसे ही पुरानी तालीम भी एकदम बन्द होनी चाहिए। किन्तु वह पुरानी तालीम आज तक चल रही है।

साराश आज अपनी व्यवस्था में जो अत्यन्त दुखी हैं उन्हें प्रथम मदद मिलनी चाहिए, सब प्रकार के ऊँच-नीच भाव मिटाने की कोशिश होनी चाहिए, शरीर-परिश्रम पर चलने की तालीम मिलनी चाहिए। इतना आप करेंगे तो जो दो मसले हैं वे दूर हो जायेंगे।

कर्नूल (आन्ध्र) —आन्ध्र विधान-सभा के सदस्य और मंत्रियों के बीच
१२-१ ५६

करुणा कैसे बढ़े ?

किसी भी देश की सरकार अपने देश को मजबूत बनाने की बात सोचती है, लेकिन यह नहीं सोचती कि देश में करुणा कैसे बढ़े ? देश की सैनिक शक्ति बढ़ाने की बात सभी सोचते हैं। यह नहीं सोचते कि अगर देश में अगर वात्सल्य

बढ़ेगा तो इस देश के जरिये दुनिया को शान्ति मिलेगी और सारी दुनिया की जनता करुणामूल से जीत ली जायगी। करुणा का प्रभाव मानव पर कितना पड़ता है, यह बात जाहिर है। करोड़ों लोग ईसामसीह का नाम लेते हैं, सिर्फ उसकी करुणा के कारण। बुद्ध भगवान् की जयजयकार करनेवाले चालीस करोड़ लोग दुनिया में हैं। उनकी करुणा के कारण ही वे उन्हें याद करते हैं। आज करोड़ों लोगों के मन जीवन और मरण पर अगर किसी चीज का अधिक-से अधिक प्रभाव है तो वह करुणा का है।

करुणा का प्रभाव छिपा नहीं है। फिर भी राष्ट्रों की सरकारें राष्ट्र की सम्पत्ति से जो राष्ट्र का नियोजन करती हैं और देश को मजबूत बनाने के लिए सोचती हैं, वे करुणा का प्रचार नहीं करतीं सैनिक-शक्ति का ही प्रचार करती हैं। पाकिस्तान की सरकार का ७ प्रतिशत खर्च सेना पर हो रहा है और वह समझती है कि इससे देश मजबूत बनेगा। हिन्दुस्तान के लोग भी सरकार से पूछते हैं कि आप हमारी रक्षा के और देश की मजबूती के लिए क्या कर रहे हैं? हमारे नेता समझाते हैं कि 'हम भी जागरूक हैं, इस प्रश्न के प्रति उदासीन नहीं हैं। किन्तु केवल तात्कालिक दृष्टि से काम करना उचित नहीं दूर दृष्टि भी रखनी पड़ती है। देश-सेवा के दूसरे भी काम हैं उनके प्रति भी दुर्लक्ष नहीं कर सकते। सेना की तरफ भी ध्यान देना पड़ता है। हमारे नायकों को इस तरह का उत्तर देना पड़ता है जो अपने मन में करुणा को बहुत आदर देते हैं।

अडोनी (आन्ध्र)
२४-१ ५६

'सेक्युलर स्टेट' का अर्थ ५

सेक्युलर स्टेट और दशविध धर्म

एक जगह एक भाई ने कहा "मनु महाराज ने धर्म के दशविध लक्षण बताये हैं लेकिन हमारी सरकार कहती है कि हम तो धर्म को नहीं मानते।

तब हमारा क्या कर्तव्य होता है? हम मनु महाराज की आज्ञा का अनुसरण करें या इस धर्म-विहीन सरकार की कल्पना का?

अक्सर देखा जाता है कि बहुत-से सन्देह शब्दमूलक होते हैं। शब्दों का ठीक प्रयोग नहीं किया जाता इसलिए बहुत-सी गलतफहमियाँ हुआ करती हैं। मनु महाराज ने दशविध धर्म बताया है। ईसा की दशविध आज्ञा क्रिस्ती और यहूदी-धर्म में मशहूर है। ये दस आज्ञाएँ और मनु महाराज के दशविध धर्म एक ही हैं। बल्कि यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो शायद ऐसा ही निष्कर्ष निकलेगा कि मनु महाराज की दशविध आज्ञाएँ रूपान्तरित होकर यहूदी और क्रिस्ती-धर्म में पहुँच गयी हैं। मनु एक प्राचीन ऋषि हो गये हैं। 'मनुस्मृति' तो उस हिसाब से बहुत अर्वाचीन ग्रंथ है लेकिन मनु स्वयं बहुत प्राचीन हैं। उनके वचनों का हमारे समाज में इतना असर था कि वैदिक-धर्म में एक स्थान पर कहा है 'यत् किंच मनुः अवदत् तद् भेषजम्'। मनु ने जो भी कहा है भेषज है हितकारी पथ्य है औषधि है। औषधि कड़वी मालूम पड़े तो भी परिणाम गुणकारी होता है इसलिए उसे जरूर सेवन करना चाहिए। ऐसा वाक्य मनुस्मृति में भी है। लेकिन यह आधुनिक मनुस्मृति को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि प्राचीन मनु-वचन को जो श्रद्धा से परम्परागत समाज में पहुँच गया है ध्यान में रखकर कहा गया है।

उसका एक-एक लक्षण ऐसा है जिसके बगैर न तो समाज का धारण हो सकता है और न व्यक्ति का जीवन ही उन्नत हो सकता है। उस आज्ञा में एक 'अस्तेय-व्रत' है यानी चोरी न करना। अस्तेय तो धर्मसंगत है। क्या हमारी धर्मातीत सरकार चोरी चाहेगी? उसमें 'शौच' भी एक धर्म है तो क्या हमारी सरकार सफाई और आरोग्य नहीं चाहेगी? उसमें 'विद्या' का उल्लेख है तो क्या सेक्युलर स्टेट में विद्या न रहेगी अविद्या रहेगी? और यहाँ धर्म को सत्य बताया है तो हमारी सरकार ने भी 'सत्यमेव जयते' यह बिरुद अपनाया है। यह बिरुद-वाक्य उपनिषदों से लिया है जो इस भारत-भूमि के मूल ग्रन्थों में से है।

तात्पर्य 'धर्म' शब्द इतना विशाल और व्यापक है कि उसके सारे अर्थ बतानेवाला शब्द मैंने अब तक किसी भाषा में नहीं देखा। सारे अर्थ तो जाने

दीजिये उसके बहुत-से अर्थवाला भी कोई शब्द मैंने नहीं पाया। इसलिए जो लोग सरकार को धर्म-विहीन कहते हैं वे तो मानो गाली देते हैं। और जो धर्म-हीन या धर्म के बाहर है, वह सिवा अधर्म के और क्या हो सकता है? बल्कि अगर हम इतना भी कहें कि सरकार 'सेक्युलर' यानी 'धर्म से असम्बद्ध' है, तो भी अर्थ ठीक नहीं हो पाता। अतः धर्म से असम्बद्ध, उससे विहीन अपनी सरकार को बताना एक निरा भ्रम प्रचार ही होगा। ऐसा भ्रान्त प्रचार काफी हुआ है और कुछ शासनवाले अच्छे लोगों ने भी इस तरह की टीका की है।

वेदान्ती सरकार, लोकयात्रिक सरकार

'सेक्युलर' शब्द का तर्जुमा अपनी भाषा में हम किस तरह करें, यह व्यर्थ का सवाल हमारे सामने पेश हुआ है। 'सेक्युलर' का अर्थ अगर हम पंथातीत या अपार्थिक करें तो भी ठीक अर्थ प्रकट नहीं होता। 'पंथ' याने मार्ग जिसे अंग्रेजी में 'पाथ' कहते हैं। तो 'पंथातीत' यान आर्ग-विहीन' सरकार हुई। किन्तु वह शब्द तो 'गुमराह' का पर्याय है। इसके लिए 'अपार्थिक' शब्द भी नहीं चल सकता।

इसलिए 'सेक्युलर' शब्द का अर्थ बताने के लिए मैंने 'वेदान्ती' शब्द चुन लिया। हमारी सरकार 'वैदिक' नहीं होगी बल्कि 'वेदान्ती' होगी। वेदान्त में किसी उपासना का निषेध नहीं है। जितनी उपासनाएँ हैं सबको वेद समान भाव से देखते हैं। फिर भी वेदान्त की अपनी निज की कोई उपासना नहीं रखी इसलिए अगर हम वेदान्ती सरकार कहें तो कुछ अच्छा अर्थ प्रकट होता है।

एक दफा रामकृष्ण-आश्रम के एक सन्यासी कहने लगे "हमारा देश किधर जा रहा है? अक्सर देखा गया है कि रामकृष्ण मिशन के लोगों में किसी प्रकार की साम्प्रदायिक भावना नहीं होती। फिर भी उन सन्यासी भाई ने वैसा सवाल किया। मैंने पूछा "किधर जा रहा है?" वे बोले "सेक्युलर स्टेटवाले तो आध्यात्मिक मूल्यों से इनकार करते हैं। मैंने कहा "अगर ऐसी बात होती तो सत्य को विधान न बनाया जाता। इसलिए मेरा तो कहना है कि अंग्रेजी शब्द के कारण ही सारी गड़बड़ी हुई है। मैंने सेक्युलर के

लिए 'वेदान्ती' शब्द का प्रयोग किया है। हमारी सरकार मेरी दृष्टि से 'वेदान्ती सरकार' है। जिस वेदान्त को आप मानते हैं उसे वे भी मानते हैं।

मैंने उनसे कहा कि हमारे यहाँ २१ वर्ष के बाद हरएक को वोट का अधिकार है। आप २१ साल की आयुवाली बात भूल जाइये। परन्तु हरएक को हमारे विधान में जो एक वोट का अधिकार दिया गया है, वह किस बुनियाद पर दिया गया है? अगर शरीर की बुनियाद पर दिया गया होता तो हरएक के शरीर में भेद है, एक का शरीर दूसरे के शरीर से भिन्न होता है, किसीका शरीर दूसरे के शरीर से तिगुना भी बलवान् हो सकता है। अगर शरीर की बुनियाद हो, तो एक को एक वोट दिया जाय तो दूसरे को दो तीन या चार भी देने होंगे। अगर बुद्धि की बुनियाद पर अर्थ लगाते हैं तो एक की बुद्धि दूसरे की बुद्धि से हजारगुना कम-बेश हो सकती है, क्योंकि बुद्धि में तो हजारगुना फर्क हो सकता है। फिर एक वोट का आधार इसके सिवा क्या हो सकता है कि हरएक में एक आत्मा विराजमान है। सिवा आत्म-ज्ञान की बुनियाद के इसका और कोई आधार हो नहीं सकता। हाँ २१ वर्ष उम्र की कैद है। मनुष्य को वोट है पशु को नहीं। फिर किस बुनियाद पर उसे 'सेक्युलर' कहा? एक तो यह कि हमारा विश्व 'सत्यमेव जयते' है और दूसरा यह कि सबको ही समान माना गया है। दोनों को मिलाकर स्टेट सेक्युलर बन सकता है। माने सेक्युलर स्टेट का आधार आत्मज्ञान ही है।

उन्होंने पूछा कि "क्या आप जाहिरा तौर पर कह सकते हैं कि सरकार वेदान्ती है?" मैंने कहा कि मैं जाहिरा तौर पर नहीं कहूँगा। आपको समझाने के लिए मैंने इस शब्द का प्रयोग किया है। हमारी सरकार नास्तिक नहीं है। वह आध्यात्मिक मूल्यों को मानती है, आत्मा को मानती है, उसकी समानता को मानती है। फिर भी वेदान्त जितनी गहराई में वह नहीं जा सकती। अब अगर हम एक शब्द सेक्युलर का तर्जुमा नहीं कर सकते और भाव तो प्रकट करना ही है तो 'निष्पक्ष न्यायनिष्ठ व्यावहारिक' सरकार कह सकते हैं। एक ही किन्तु कठिन संस्कृत शब्द में कहना हो, तो 'लोकव्यावहारिक' सरकार कह सकते हैं। माने वह सरकार, जो लोकव्यवहार के बल पर जनता को चलाना चाहती है। शब्द कठिन अवश्य है, लेकिन उससे कठिनाई कुछ दूर हो सकती है।

अंग्रेजी ही गलतफहमी की जड़

पर यह सारी आफत क्यों? इसलिए कि हमारी सरकार का सारा चिन्तन अंग्रेजी में होता है, फिर उसका तर्जुमा करना पड़ता है। किसी भाषा का अनुवाद दूसरी भाषा में एकदम ठीक नहीं होता। अगर हम अपनी भाषा में सोचते होते तो ये सारी गलतफहमियाँ टल जातीं जो आज हो रही हैं और जिसके कारण यह सब कठिनाई आ रही है।

अंग्रेजी भाषा को पन्द्रह साल का जीवन दे दिया गया है। इसका नतीजा यह हो रहा है कि *हमारी सरकार का कारोबार किस तरह चलता है*, उसका ज्ञान हमारे यहाँ के एक पढ़े लिखे किसान को भी उतना हो सकता है जितना कि इंग्लैण्ड और अमेरिका के लोगों को होता है। जनता को अँधेरे में रखना ठीक नहीं। ऐसी हालत में अंग्रेजी भाषा से जितने शीघ्र मुक्त हो सकते हैं, होने की आवश्यकता है और इस आवश्यकता को मैं कदम-कदम पर देख रहा हूँ। वेदान्ती शब्द इतना महान् है कि यह भारतीय जनता के लिए प्राण के समान है लेकिन अब उसे टालने की वृत्ति हो रही है।

सेक्युलर शब्द के कारण बड़े-बड़े लोगों में गलतफहमी होती है। अगर किसी स्कूल में वेद की प्रार्थना होती है तो पूछते हैं कि सेक्युलर स्टेट की सरकार में वैदिक मन्त्र कैसे पढ़ा जा सकता है? इस सप्ताह मैं अलीगढ़ विश्वविद्यालय में गया था। वहाँ के विद्यार्थियों और प्रोफेसरों ने बहुत ही प्रेम से मेरा स्वागत किया। मने उन्हें जो बातें बतायी वे साधारण नहीं थी गम्भीर थी। मैंने सब धर्मों की शुद्धि की बात कही थी और इस्लाम की शुद्धि की व्याख्या भी की थी। उन लोगों का रिवाज है कि आरम्भ में खड़े होकर 'कुरान' की आयत पढ़ें। आखिर हुसेन साहब ने मुझसे पूछा तो मैं बहुत खुशी से खड़ा हो गया। सारा कार्यक्रम बड़े प्रेम से हुआ। मुझे भी कुरान का कुछ अभ्यास है। इसलिए आयतें सुनकर खुशी हुई।

राजघाट (दिल्ली)
१५ ११ ५१

धम प्रेरणा को प्रधान पद देकर वासनाओं को उसके अंकुश में रखने की अक्ल मनुष्य को सूझनी चाहिए और उसे वह उत्तरोत्तर सूझेगी ही। मनुष्य की प्रेरणा ही उससे कहती है कि भोग-एश्वर्य की मानव में स्थित वृत्ति को प्रधानता न मिलनी चाहिए। उसे विकसित न होने देकर कुंठित करने का रास्ता ढूंढना चाहिए। आज मनुष्य को धर्म-बुद्धि का यह रास्ता सूझा है कि सत्ता बांट दें और भोग सबको समान रूप से मिले। वह ऐसी कोशिश करे, तो भोग-वासना नियमित और कुंठित हो जायगी। फिर उसे सत्ता की आकांक्षा भी न रहेगी। ये दोनों बातें आज की सरकार मानती है। इसीलिए उसने हरएक को वोट का अधिकार दिया है, इसका मतलब सत्ता सबमें विभाजित करने का आरम्भ कर दिया है। लोग जिसे चुनेंगे वह नौकरी करेगा और लोगों की सेवा करेगा। जो चाहे, वह सत्ताधारी कहलायेगा पर उसके हाथ में सेवा करने की ही सत्ता रहेगी ऐसा विचार लोकशाही में मान्य हुआ।

स्वार्थ-नियमन के लिए सुख-साधनों का वितरण

जिस तरह मनुष्य की सत्ता-वासना को नियमित और कुंठित करने का रास्ता है, सत्ता का विभाजित हो जाना और हरएक को इसका निश्चित विश्वास होना कि सत्ता का एक अंश हमारे पास पड़ा है, उसी तरह हरएक में विद्यमान स्वार्थ-बुद्धि को नियमित और कुंठित करने का उपाय है, मनुष्य के सुख के सामान्य साधन सबको समान रूप से मुहैया करने का प्रयत्न करना। मनुष्य के सुख स्वार्थ का आधार जमीन पर ही खड़ा है। इसीलिए हमने जमीन से शुरू किया और कह दिया कि हरएक बेजमीन को जमीन मिलनी ही चाहिए। उसका हक मान्य होना ही चाहिए। यह एक बिलकुल बुनियादी विचार है, जो हम समाज के सामने रख रहे हैं।

बालेश्वर (उत्कल)
६-२-५५

समाजशास्त्र में भारत यूरोप से आगे . ७

पाश्चात्यों की धारणा है कि 'समाज में आमूलाग्र परिवर्तन सत्ता के जरिये ही हो सकता है। राजनीति में एक पक्ष राज्य करता है, तो दूसरा विरोधी होता है। इस प्रकार एक-दूसरे को परिपुष्ट करते रहते हैं। इसी प्रकार सत्ता से परिवर्तन होगा। हम लोग भी उसीकी नकल करते हैं। पश्चिम का समाजशास्त्र बहुत पिछड़ा हुआ है। आज हिन्दुस्तान में मराठी, बंगाली, गुजराती, तमिलनाड, मलाबार आदि प्रान्त हैं। ऐसे ही यूरोप में भी भिन्न भिन्न भाषाभाषी देश हैं। हमारे देश में यद्यपि भाषावार प्रान्तों की माँग की जाती है, पर कोई भी अपना अलग देश स्थापित करना नहीं चाहता। कोई भी दिल्ली से अलग होने का विचार नहीं करता। इसके विपरीत यूरोप में स्विट्जरलैण्ड, जर्मनी, बेल्जियम, फ्रांस आदि छोटे-छोटे देश हैं। आज भी उनके यहाँ जातिवाद विद्यमान है। सारे यूरोप का राजनैतिक विभाजन जातिवाद पर ही हुआ है। किन्तु हमारे यहाँ ऐसी स्थिति नहीं है। भाषावार प्रान्त की माँग भी कामों की सहूलियत के लिए की गयी है। कोई अपना राज्य या सेना अलग नहीं चाहते। इस तरह स्पष्ट है कि समाज-शास्त्र की रचना में यूरोप हिन्दुस्तान से बहुत पिछड़ा है।

दूसरी मिसाल यह है कि यहाँ किसीको यह शंका नहीं होती कि स्त्रियों को मत देने का अधिकार देना चाहिए या नहीं ? मैं मानता हूँ कि हमारे यहाँ की स्त्रियाँ बहुत पिछड़ी हैं। हमें उन्हें उठाना और सामने लाना होगा। फिर भी हमने उन्हें मत देने का अधिकार बिना किसी संकोच के दे दिया है। इसके विपरीत यूरोप के कई देशों में आज भी स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त नहीं है। चालीस साल पहले इंग्लैण्ड में पुरुषों के विरुद्ध स्त्रियों का आन्दोलन हुआ। विधान-सभा में पत्थर फेंके गये, तब कहीं जाकर उन्हें मताधिकार प्राप्त हुआ। हमारे देश में ऐसा कोई झगड़ा नहीं हुआ। इस प्रकार भी स्पष्ट है कि दुनिया के अन्य देशों से हम समाजशास्त्र में आगे बढ़े हुए हैं।

हम अगर मानव-मानव में कोई भेद निर्माण न करेंगे तो यह 'गणतन्त्र' 'गुणतन्त्र' सद्गुणतन्त्र हो जायगा। तब सद्गुणों की कीमत की जायगी सिर्फ गुणों की नहीं। आज ५१ के विरुद्ध ४९ प्रस्ताव पास किये जाते हैं। इस 'गणतन्त्र' को तो हम 'अवगुणतन्त्र' कहते हैं। ४९ और ५१ मिलाकर १ हो जाते हैं और हम चाहते हैं कि सौ मिलकर काम करें। हमारे यहाँ पहले 'ग्राम-पंचायतें' होती थीं। यह इस देश की बहुत बड़ी देन है। आज दुनिया में जो राजनैतिक विचारधाराएँ चलती हैं उन सबमें हिन्दुस्तान की ग्राम-पंचायत अपनी एक विशेषता रखती है। इसमें 'पाँच बोले परमेश्वर' की बात चलती थी। उन दिनों सारे हिन्दुस्तान में यही बात चलती थी। पाँच मिलकर बोलते तो प्रस्ताव पास हो जाता। किन्तु अब हम कहते हैं 'चार बोले परमेश्वर, तीन बोले परमेश्वर' यानी तीन विरुद्ध दो हों, तो प्रस्ताव पास कर देते हैं। किन्तु हम कहते हैं कि ऐसा प्रस्ताव फेल है पाँचों मिलकर ही प्रस्ताव पास होगा। यह बात हिन्दुस्तान में पुनः लानी होगी। प्रेम और सहयोग से ही गणतन्त्र चलेगा। प्रेम और सहयोग से ही सारा कारोबार चलेगा। उसके बिना हिन्दुस्तान और दुनिया में अहिंसा न टिकेगी।

हिन्दुस्तान में चौदह भाषाएँ हैं। उन सबका एक देश बनाया गया है। जिन्होंने कन्याकुमारी से लेकर कैलास तक यह एक देश बनाया है, उन पर यह जिम्मेदारी आ जाती है कि वे यूरोप की नकल न करें। यूरोप पीछे है, तो हम आगे हैं। यूरोप का 'स्विट्जरलैण्ड' बाँकुड़ा और मेदिनीपुर जिले मिलाकर होता है। 'बेल्जियम' माने दो-चार जिले और जोड़ दीजिये। वहाँ ऐसे छोटे-छोटे राष्ट्र माने जाते हैं। यूरोप में एक ही लिपि है, एक ही धर्म है। एक-दूसरी भाषा में जरा-सा भेद है। कोई भी इटालियन फ्रेंच सीखना चाहे तो पन्द्रह दिन में सीख लेगा। वहाँ इतनी समानता है फिर भी अलग-अलग राष्ट्र बने हैं। हमने एक देश बनाया है। इस तरह सामाजिक चिन्तन में हम आगे हैं और यूरोप पीछे। इसलिए हमें यूरोप का अनुकरण नहीं करना है। हमें सर्वोदयवाली

लोकशाही सर्वगणतन्त्र बनाना होगा तभी अहिंसा की शक्ति बढ़ेगी। सारांश हमने पहली बात यह बतायी कि हमें निर्भय बनना होगा और दूसरी यह कि प्रेम और सहयोग के आधार पर सरकार का गठन करना होगा।

बांकुड़ा (बंगाल)
७-१ '५५

आज सजा में भी सुधार

पहले किसीने चोरी की तो उसे यह सजा दी जाती थी कि हाथ काट डाले जायँ। लेकिन आज ऐसी सजा देने की बात किसीको भी जँचेगी नहीं रुचेगी नहीं। आज तो इसे निरी मूर्खता और मानवता के विरुद्ध बड़ा भारी दोष माना जायगा। मनुष्य हाथों से सेवा कर सकता है। सेवा के बड़े साधन हाथ को काट डालने का अर्थ है उस मनुष्य का सारा भार समाज पर डालना। ऐसी योजना करना निरी मूर्खता है। आज मनुष्य-समाज को यह बात पसन्द नहीं आती। शूर्पणखा राक्षसी ने राम-लक्ष्मण के सामने आकर बेढंगी बातें कीं तो लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट डाले ऐसी कहानी रामायण में आती है। इस पर आजकल के पढ़नेवाले लड़के भी पूछते हैं कि यह काम लक्ष्मण ने कहाँ तक ठीक किया ? फिर उन्हें समझाना पड़ता है कि वह रूपक है, वह कोई मनुष्य की कहानी नहीं है। राक्षसी कामवासना है और उसे विरूप करने का मतलब है किसी तरह उसका आकर्षण न रहने देना। इतना ही इस कथा का मतलब है।

दुनिया में आज लोगों के मन में फाँसी की सजा रद्द करने की बात उठती है। यद्यपि इसके अनुकूल अभी तक मानव का निर्णय नहीं हुआ है, लेकिन शीघ्र ही हो जायगा और फाँसी की सजा मानवताहीन मानी जायगी।

सत्ताविभाजन द्वारा सत्तालिप्सा का नियन्त्रण

मनुष्य अपनी वृत्तियों का भी उत्तरोत्तर नियन्त्रण करता आ रहा है और करनेवाला है यह पहली समझने की बात है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य में जैसे भोग-ऐश्वर्य की वृत्ति है वैसे दूसरी वृत्तियाँ भी मौजूद हैं। केवल भोग ही नहीं धर्म-वासना और कर्म प्रेरणा भी मनुष्य में बड़ी बलवान होती है।

धर्म-प्रेरणा को प्रधान पद देकर वासनाओं को उसके अंकुश में रखने की अक्ल मनुष्य को सूझनी चाहिए और उसे वह उत्तरोत्तर सूझेगी ही। मनुष्य की प्रेरणा ही उससे कहती है कि भोग-ऐश्वर्य की मानव में स्थित वृत्ति को प्रधानता न मिलनी चाहिए। उसे विकसित न होने देकर कुंठित करने का रास्ता ढूंढना चाहिए। आज मनुष्य को धर्म-बुद्धि का यह रास्ता सूझा है कि सत्ता बंट दें और भोग सबको समान रूप से मिले। वह ऐसी कोशिश करे, तो भोग-वासना नियमित और कुंठित हो जायगी। फिर उसे सत्ता की आकांक्षा भी न रहेगी। ये दोनों बातें आज की सरकार मानती है। इसीलिए उसने हरएक को वोट का अधिकार दिया है, इसका मतलब सत्ता सबमें विभाजित करने का आरम्भ कर दिया है। लोग जिस चुनेंगे वह नौकरी करेगा और लोगों की सेवा करेगा। जो चाहे वह सत्ताधारी स्वदेशसेवक पर उसके हाथ में सेवा करने की ही सत्ता रहेगी ऐसा विचार लोकशाही में मान्य हुआ।

स्वार्थ-नियंत्रण के लिए सुख-साधनों का वितरण

जिस तरह मनुष्य की सत्ता-वासना को नियंत्रित और कुंठित करने का रास्ता है, सत्ता का विभाजित हो जाना और हरएक को इसका निश्चित विश्वास होना कि सत्ता का एक अंश हमारे पास पड़ा है, उसी तरह हरएक में विद्यमान स्वार्थ-बुद्धि को नियंत्रित और कुंठित करने का उपाय है, मनुष्य के सुख के सामान्य साधन सबको समान रूप से मुहय्या करने का प्रयत्न करना। मनुष्य के कुछ स्वार्थ का आधार जमीन पर ही खड़ा है। इसीलिए हमने जमीन से शुरू किया और कह दिया कि हरएक बेजमीन को जमीन मिलनी ही चाहिए। उसका हक मान्य होना ही चाहिए। यह एक बिलकुल बुनियादी विचार है, जो हम समाज के सामने रख रहे हैं।

बालेश्वर (उत्कल)
६-१-५५

समाजशास्त्र में भारत यूरोप से आगे ७

पाश्चात्यों की धारणा है कि 'समाज में आमूलाग्र परिवर्तन सत्ता के जरिये ही हो सकता है। राजनीति में एक पक्ष राज्य करता है, तो दूसरा विरोधी होता है। इस प्रकार एक-दूसरे को परिपुष्ट करते रहते हैं। इसी प्रकार सत्ता से परिवर्तन होगा। हम लोग भी उसीकी नकल करते हैं। पश्चिम का समाजशास्त्र बहुत पिछड़ा हुआ है। आज हिन्दुस्तान में मराठी बंगाली गुजराती तमिलनाड मलाबार आदि प्रान्त हैं। ऐसे ही यूरोप में भी भिन्न भिन्न भाषाभाषी देश हैं। हमारे देश में यद्यपि भाषावार प्रान्तों की माँग की जाती है, पर कोई भी अपना अलग देश स्थापित करना नहीं चाहता। कोई भी दिल्ली से अलग होने का विचार नहीं करता। इसके विपरीत यूरोप में स्विट्ज़रलैण्ड जर्मनी बेल्जियम फ्रान्स आदि छोटे-छोटे देश हैं। आज भी उनके यहाँ जातिवाद विद्यमान है। सारे यूरोप का राजनीतिक विभाजन जातिवाद पर ही हुआ है। किन्तु हमारे यहाँ ऐसी स्थिति नहीं है। भाषावार प्रान्त की माँग भी किसानों की सहूलियत के लिए की गयी है। कोई अपना राज्य या देश अलग नहीं चाहते। इस तरह स्पष्ट है कि समाज-शास्त्र की रचना में यूरोप हिन्दुस्तान से बहुत पिछड़ा है।

दूसरी मिसाल यह है कि यहाँ किसीको यह शंका नहीं होती कि स्त्रियों को मत देने का अधिकार देना चाहिए या नहीं? मैं मानता हूँ कि हमारे यहाँ की स्त्रियाँ बहुत पिछड़ी हैं। हमें उन्हें उठाना और सामने लाना होगा। फिर भी हमने उन्हें मत देने का अधिकार बिना किसी संकोच के दे दिया है। इसके विपरीत यूरोप के कई देशों में आज भी स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त नहीं है। चालीस साल पहले इंग्लैंड में पुरुषों के विरुद्ध स्त्रियों का आन्दोलन हुआ। विधान-सभा में अण्डे फेंके गये तब कहीं जाकर उन्हें मताधिकार प्राप्त हुआ। हमारे देश में ऐसा कोई झगड़ा नहीं हुआ। इस प्रकार भी स्पष्ट है कि दुनिया के अन्य देशों से हम समाजशास्त्र में आगे बढ़े हुए हैं।

भारत की सर्वोच चुनाव-पद्धति

आश्चर्य है कि फिर भी हम लोग आँख मूँदकर पाश्चात्य पद्धति स्वीकार कर लेते हैं। यह नहीं सोचते कि उसका परिणाम क्या होगा? जब कि हमारे यहाँ 'पाँच बोले परमेश्वर' और एकमत से काम होता था, पश्चिम में चार विरुद्ध एक तीन विरुद्ध दो प्रस्ताव पास हो जाते हैं। अदालत में खून के मुकदमे चलते हैं और वहाँ भी तीन विरुद्ध दो का फैसला लेकर खूनी अभियुक्त फाँसी पर चढ़ाये जाते हैं। इतना भी नहीं सोचते कि फाँसी के बदले कुछ हल्की सजा क्यों न दी जाय। सचमुच बहुमत का यह जो विचित्र विचार हम लोगों ने पश्चिम से स्वीकार किया वह बड़ा ही खतरनाक है।

नेहरूजी ने स्वयं कहा कि "यद्यपि चुनाव-पद्धति को हमने श्रद्धा से अपनाया फिर भी उसमें काफी दोष हैं। इसे सुधारना जरूरी है। इस तरह हम पश्चिम से जो भी चीज लेते हैं उसे सोच-समझकर लेना चाहिए। दुनिया के सब देशों में चुनाव का यह भूत सवार है और उससे बहुत कुछ हानि भी होती है। किन्तु हिन्दुस्तान के लिए तो इसका परिणाम बहुत ही दुःखद हुआ है। राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक ने जिस जातिभेद पर प्रहार किया और जिसकी कमर टूट चुकी थी वह इस चुनाव से फिर खड़ा हो उठा है।

क्रांति पक्षातीत ही होती है

सत्ता या 'पार्टी-पॉलिटिक्स' (दलगत राजनीति) के जरिये क्रांति कभी नहीं होती। वह तो जनमानस में ही होती है। इसलिए उसे पक्षातीत ही होना चाहिए। इसके लिए एक-दूसरे के सामने दिल खोलकर रखने चाहिए। लेकिन आजकल के पक्ष तो एक-दूसरे के अखबार तक नहीं पढ़ते। जैसे वैष्णव पन्थी शैवपन्थियों की कोई भी बात नहीं अपनाता वैसे ही ये पार्टियाँ एक-दूसरे से भारी नफरत करती हैं। उनके लिए उनकी पार्टी की पुस्तकें ही वेदवाक्य होती हैं। वे दूसरे के साहित्य को पढ़ते ही नहीं। उनके विचार संकुचित होते हैं। इस बाधा के कारण दलबन्दी ही नहीं दिलबन्दी फैल रही है, जो दलबन्दी से कहीं ज्यादा खराब है। ऐसी स्थिति में क्रांति रुक जाती है। लोग समझते ही नहीं कि हवा फैलाने के लिए अवकाश चाहिए। विचार प्रचार के लिए

चुके दिल होने चाहिए। पार्टी की सभाओं में खास जमातें ही आती हैं और वे क्रांति को आगे बढ़ने नहीं देतीं।

मई, १९५४

'पॉवर पॉलिटिक्स' और 'स्ट्रेंग्थ पॉलिटिक्स' ८

कानून से जनशक्ति पैदा नहीं होती

जापान से एक पत्र आया है जिसमें उन्होंने जापान का वर्णन किया है। उसमें पाँच मनुष्य के हस्ताक्षर हैं। दूर से जो जापान की प्रशंसा सुनते हैं मगर नीचे जाने पर उन्हें वहाँ का सच्चा चित्र देखने को मिल सकता है। वहाँ कानून से जमीन बाँट दी गयी है, लेकिन मालिक और मजदूरों में कटुता पैदा हुई है। उससे ताकत नहीं बनती। किन्तु हमारा तो उद्देश्य है कि समाज में ताकत निर्माण हो। स्वराज्य के बाद लोग ज्यादा परतंत्र बने हैं। हर बात में हम सरकार पर ही निर्भर रहने लगे हैं। सामाजिक, धार्मिक या पारिवारिक—किसी भी प्रकार के काम छूत-अछूत भेद, हर बात सरकार ही करे और हम कुछ न करें, ऐसी हालत हो गयी है। जो जनता सरकार पर इतनी निर्भर रहेगी वह शक्तिमान् कैसे बनेगी? कानून से मसला हल होगा लेकिन शक्ति न बढ़ेगी। वास्तव में लोगों को आत्म-शक्ति का भान होना चाहिए। यह तभी होगा जब लोग एक मसला हल करेंगे।

'पॉवर पॉलिटिक्स' और 'स्ट्रेंग्थ पॉलिटिक्स'

कुछ लोग हमसे कहते हैं कि आपके भूदान में जितने लोग लगे हैं, उन सबकी परीक्षा १९५७ के चुनाव में हो जायगी। तब मालूम होगा कि कितने लोग टिकते और कितने लोग चुनाव में जाएँगे। चुनाव में जाना पाप नहीं, वह काम बुरा नहीं। फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि जो लोग इसमें से उसमें जायेंगे वे जनशक्ति का पहलू खो देंगे। समझने की बात है कि 'पॉवर पॉलिटिक्स' एक बात है और 'स्ट्रेंग्थ पॉलिटिक्स' दूसरी। ये लोग 'पॉवर पॉलि

टिक्स' के पीछे जाते हैं लेकिन 'पॉवर' में 'स्ट्रेंथ' का क्षय होता है। 'स्ट्रेंग्थ' निष्काम सेवा से बढ़ती है। देखिये उत्तम-से-उत्तम सेवक भी जो पॉवर में गये हैं शक्ति बढ़ी है या घटी है? शास्त्र में लिखा है तपस्या करने पर इन्द्र-पद प्राप्त होता है तो उसी दिन से उसके क्षय की शुरूआत हो जाती है। 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' पुण्य का क्षय हो जाने पर उसे लात मारकर मृत्युलोक में भेज दिया जाता है। इसलिए अगर हम जनता की शक्ति निर्माण करेंगे तो वास्तव में वह 'स्ट्रेंग्थ पॉलिटिक्स' होगा।

एक जमाना था जब रूस में लोग स्टालिन की स्तुति करते थे। इतिहास उसकी स्तुति से भरा पड़ा था। लेकिन आज स्टालिन के मरने के बाद उसके हाथ के नीचे काम करनेवाले ही उसकी निंदा करने लगे हैं। अब वे कहते हैं कि चन्द दिन इतिहास न पढ़ाया जायगा क्योंकि नया इतिहास लिखना है। वे नये इतिहास में यही लिखेंगे कि पहला इतिहास गलत था। सोचिये कि अब इसमें लोगों की क्या ताकत बनी? जो सरकार करेगी वही वहाँ होगा। इसीलिए हम कहना चाहते हैं कि उस देश में आजादी नहीं बुद्धि की स्वतन्त्रता नहीं है। इंग्लैण्ड या अमेरिका ने सब देश अपनी प्रजा का कल्याण कर लें पर वहाँ जन-शक्ति निर्माण नहीं हो सकती।

भूदान-यज्ञ जन-शक्ति बढ़ाने का आन्दोलन है। इसलिए इसमें राजनीति का अभाव नहीं है। फिर भी यह आन्दोलन आज की राजनीति का खंडन करनेवाला है। हम आज की प्रचलित राजनीति से अलग रहकर नयी राजनीति निर्माण करना चाहते हैं। उस नयी राजनीति को हम 'लोक-नीति' कहते हैं। हम राजनीति का खंडन कर लोकनीति बनायेंगे।

समुद्र का विरोध नदी नहीं कर सकती

हम पर पूछा जाता है कि आप लोकनीति स्थापित करने की बात करते हैं, पर उसका भी विरोध करने की वृत्ति यहाँ-वहाँ दिखाई देती है। उस हालत में हम क्या करेंगे? इस पर मेरा उत्तर यही है कि लोकनीति ऐसी व्यापक नीति है कि उसका विरोध करनेवाला ही गिर जायगा। उसीकी हानि होगी। समुद्र का विरोध नदी नहीं कर सकती। जो नदी ऐसा करेगी वह सूख जायगी।

इसलिए यह डर रखने की जरूरत नहीं कि जो काम हम करेंगे उसके विरुद्ध दूसरे लोग खड़े होंगे। लोकनीति की स्थापना अभावात्मक (निगेटिव) नहीं। उसका मतलब यह नहीं कि आज की राजनीति का खंडन कर उसके दोष दिखाये जायें। समझने की बात है कि 'आज की राजनीति' यद्यपि 'लोकनीति' नहीं फिर भी 'लोकमान्य' अवश्य है। इसलिए जब लोग बदलेंगे तभी वह बदलेगी। इसलिए हम राजनीति के दोष ही दिखाते चले जायेंगे तो अपनी शक्ति व्यर्थ खर्च करेंगे।

मान लीजिये कि हम कोई स्कूल चलाते हैं। वह स्कूल आकर्षक हुआ तो वहाँ पालक अपने लड़के भेजेंगे और उसी गाँव के सरकारी स्कूल में लड़के कम जायेंगे। फलतः सरकारी स्कूल वहाँ न चलेगा। लोग अपने बच्चे ही न भेजें तो सरकार क्या करेगी? वह अपना स्कूल वहाँ से उठा लेगी और मेरा कब्जा करने के लिए एक युक्ति सोचेगी। वह मुझे एक चिट्ठी लिखेगी कि आपका स्कूल बहुत अच्छा चलता है। हमारी तरफ से आप दस हजार रुपया लीजिये। अगर मैं वह पैसा लूँगा तो खतम हो जाऊँगा। इसलिए मैं उसे पत्र लिखूँगा कि "हमारी सरकार हमसे प्रेम करती है इसलिए हम उसका शुक्रिया अदा करते हैं पर हम जो काम करते जा रहे हैं वह सरकार-निरपेक्ष है। इसलिए आप मदद देंगे तो हमारे काम को क्षति ही पहुँचेगी। इसलिए हम आपकी 'ऑफर' स्वीकार नहीं कर सकते। जरूरत होगी तो सलाह जरूर लेंगे।" इस तरह हम पत्र लिखेंगे तभी जन-शक्ति बढ़ेगी। नहीं तो हम अपनी शक्ति खो देंगे।

मद्रास (मद्रास राज्य)
१८-५-५९

राजा मिटे नहीं . ६

आज के मुख्यमंत्री और राजाओं में ज्यादा फर्क नहीं है। पहला फर्क तो यह है कि पहले राजा मृत्यु तक राज्य चलाता था अब मुख्यमंत्री पाँच साल तक राज्य चलायेंगे। पाँच साल के बाद आप अगर चाहें फिर से चुनेंगे तो फिर से पाँच साल तक वे राज्य चलायेंगे। दूसरा फर्क यह है कि पहले राजा

का बेटा गद्दी पर बैठता था पर अब राज्यकर्ता का बेटा उसी तरह राज्य नहीं चला सकता। बस इतना ही फर्क है और ढाँचे में कोई फर्क नहीं हुआ। पाँच साल तक वह पूरी हुकूमत चला सकता है। वह जो करेगा सो बनेगा।

आज के जमाने की गति

इस जमाने के पाँच साल पुराने जमाने के पचास साल के बराबर हैं। पुराने जमाने में राजा हुक्म देता था तो उसे देश में पहुँचते-पहुँचते ही दो-चार साल बीत जाते थे। इस बीच परिस्थिति बदल जाती तो राजा द्वारा दूसरा हुक्म भेजा जाता। पहले हुक्म का अमल नहीं हो पाता था कि दूसरा हुक्म निकल जाता। उसे भी गाँव-गाँव पहुँचने में एक साल लग जाता। इसलिए वे केवल नाममात्र के राजा रहते थे। वे प्रजा के जीवन का बहुत ज्यादा नियमन नहीं कर पाते थे। लोगों को बहुत-कुछ आजादी थी। आज हालत दूसरी है। आज दिल्ली से हुक्म निकला तो उसी दिन सारे हिन्दुस्तान में पहुँच जाता है। रेडियो वगैरह ऐसे साधन हैं कि जो हुक्म दिया जायगा उसके अमल के लिए दो घंटे में हिन्दुस्तान में तैयारी हो जायगी। यही हालत दूसरे देशों की है। इसलिए जिसे राजा बनाते हैं फिर वह पाँच साल के लिए ही क्यों न हो, वह इतना काम कर सकता है, जितना पहले के राजा पचास साल में भी नहीं कर सकते थे। आज के पाँच वर्ष याने पुराने राजाओं को मरने के लिए जितना समय लगता था वह कुल समय जो। बीस साल में पुराना बादशाह जितने हुक्म चला सकता होगा उतने हुक्म आज आपका मुख्यमंत्री भी चलाता होगा। इसलिए वे अगर प्रजा का भला करना चाहें तो भला कर सकते हैं और बुरा करना चाहें, तो बुरा भी कर सकते हैं। प्रजा के हाथ में कुछ न रहेगा।

इस भ्रम में मत रहिये कि पाँच साल के बाद राज्य हमारे ही हाथ में है। पाँच साल में तो इधर का उधर हो जायगा। आज प्रजा को चुनने का सिर्फ नाटक होता है। उसके परिणामस्वरूप राज्य चलानेवाले कहते हैं कि हम जो कुछ करते हैं वह प्रजा की सम्मति से ही करते हैं। पुराने राजा यह नहीं कह सकते थे कि हम जो करते हैं वह प्रजा की सम्मति से करते हैं। आजकल तो बम्बई, कलकत्ता, पटना और कई जगह सरकार की ओर से कोठी बनायी जाय

तो वे कहेंगे कि लोगों की सम्मति से हम गोली चलाते हैं। लोगों ने हमें राज्य चलाने की आज्ञा दी है, इसलिए हमें ऐसा करना पड़ता है। पुराने राजाओं के सरदार यह नहीं कह सकते थे कि हमने गोली चलायी तो लोगों की सम्मति से चलायी। इसलिए वे जो पुण्य-पाप करते थे, वह राजा का पुण्य-पाप होता था और उसका बोझ उसीको उठाना पड़ता था। लेकिन आज के राजा जो पुण्य पाप करेंगे उसकी जिम्मेवारी आप पर है और पुराने जमाने के राजा से शत गुणित सत्ता अभी आपके मुख्यमंत्री के पास है। इसलिए गाँव-गाँव के लोगों को जाग जाना चाहिए। अपना भला-बुरा करने की सत्ता किसीको नहीं देनी चाहिए। न पाँच साल के लिए और न पाँच दिन के लिए।

आज के समाज का अन्तिम शब्द 'लॉ एण्ड ऑर्डर'

अभी तक लोकनायकों की बहुत-सी ताकत और बुद्धि हिंसा के विकास में लगी है। सारा-का-सारा विज्ञान हिंसा का दास बना है। वैज्ञानिक को आज्ञा होती है कि वह इस प्रकार की खोज करे। पूँजीवादी समाज में ही नहीं, उसके पहले के समाज में भी विज्ञान की खोज की गयी है। आप देखेंगे कि मामूली धनुष-बाण से लेकर एटम और हाइड्रोजन बम तक जितनी खोज हुई, उसके पीछे कितना दिमाग लगा, कितने प्रयोग हुए और हिंसा के कितने अलग्य औजार तैयार किये गये! इसके अलावा हिंसा के लिए अनेक प्रकार के तत्त्वज्ञान भी बनाये गये। पूँजीवाद, साम्यवाद आदि बहुत-से वाद (इज्म) क्या बता रहे हैं? विशिष्ट विचार समाज पर लादने के लिए ही ये तत्त्वज्ञान पैदा हुए हैं। इस तरह इधर तो हिंसा के औजारों के लिए बहुत खोज हुई और उधर हिंसा को पढ़ानेवाले तत्त्वज्ञान बनाये गये।

इसके अलावा पेनल कोड, लॉ कोर्ट, सारा-का-सारा कानून का ढाँचा क्या बताता है? उसका अन्तिम शब्द क्या है? जैसे शंकराचार्य से पूछा गया कि आपका अन्तिम शब्द क्या है, तो उन्होंने कहा, 'ब्रह्म'। वैसे ही आधुनिक समाज को इन सब कानूनों से पूछा जाय कि तुम्हारा आखिरी शब्द क्या है, तो वे कहेंगे, 'लॉ एण्ड ऑर्डर' (कानून और व्यवस्था)। याने यह आज के समाज का 'ब्रह्म' है, आज का अन्तिम शब्द है। उसके बाद इससे ऊँचा शब्द

नहीं। कानून और व्यवस्था का मतलब है, अभी तक जो समाज-रचना बनी है उस रचना में जिनके-जिनके जो अधिकार हैं, वे कायम रह सकें।

चारापुरम् (मद्रास)
८ ११ ५६

वेलफेअर नहीं, इलफेअर

जहाँ सारी सत्ता केन्द्रित हो वहाँ लोकशाही नहीं चल सकती। उसमें चन्द लोग चुने जाते हैं जिनके हाथों में सब कुछ रहता है। राजा-महाराजाओं के जमाने में भी कोई राजा अकेला राज्य न करता था चन्द लोगों के सलाह-मशविरे से ही वे राज्य करते थे। राजा के सरदार, मंत्री आदि होते थे। राजा और उसके दो-चार सलाहकार अच्छे होते तो देश का राज अच्छा चलता अन्यथा मामला ही खराब हो जाता था। आज भी वही हालत है, यद्यपि लोकशाही का नाटक चलता है। आज की यह परिस्थिति बदलने का एक ही उपाय है कि जगह-जगह लोगों के हाथों में लोगों का जीवन आये। आज 'वेलफेअर स्टेट' (कल्याणकारी राज्य) के नाम से बहुत-सी सत्ता केन्द्र के हाथ में रहती है। चाहे उसके कारण जनता को कुछ सुख प्राप्त होता हो फिर भी हम उसे 'वेलफेअर' नहीं 'इलफेअर' ही कहेंगे। चन्द लोगों के हाथ में सत्ता रखना कोई 'वेलफेअर' नहीं। इसलिए अहिंसा का विचार तभी चलेगा जब सत्ता गाँव-गाँव में बँटेगी। इसके लिए क्या ग्राम-ग्राम को अधिकार दिया जाय? नहीं अधिकार देने से नहीं मिलता लेना पड़ता है। ग्रामवालों के हाथ में अधिकार तभी आयेगा जब उनमें अपने गाँव का कारोबार चलाने की सूझ आयेगी। हम समझते हैं कि इस दिशा में सर्वोत्तम कदम अगर कोई हो सकता है तो ग्रामदान ही है।

चारापुरम् (मद्रास)
११ ११ ५६

क्रान्ति की बुनियाद : विचार-प्रवचन

सरकार को तो अपना कर्तव्य करना ही है, पर क्रान्तिकारी विचार को फैलाने का काम सरकार नहीं कर सकती। जब विचार लोकमान्य होगा तभी सरकार वह काम करेगी और उसे वह करना होगा। नहीं करेगी तो सरकार बदल जायगी। जहाँ लोकसत्ता चलती है, वहाँ सरकार नौकर है। अगर आपको कोई बात समझानी हो तो नौकर को समझाते हैं या मालिक को? मालिक को समझाने पर उसको वह बात जँच गयी तो वह अपने मुनीम को हुक्म देगा कि कागज तैयार करो। इसलिए मैं मालिक की जगह आपको समझा रहा हूँ।

लोकसत्ता में सरकार को 'शून्य' कहा जाता है। शून्य की अपनी कोई कीमत नहीं होती। अगर वह एक के अंक पर चढ़ गया तो १ हो जाता है, दो पर चढ़ा तो २ और तीन पर चढ़ा तो ३। परन्तु १ २ ३ बनाने की शक्ति शून्य में नहीं है। आप उस शून्य को दस बीस बना सकते हैं। स्वतन्त्र रूप से उस शून्य की कोई कीमत नहीं। लोकसत्ता में लोग ही सब कुछ हैं, सरकार कुछ नहीं। जो सरकार के जरिये काम करने की बात करते हैं, वे जानते ही नहीं कि विचार-परिवर्तन कैसे होता है। बुद्ध भगवान् ने लात मारकर राज्य छोड़ दिया और ज्ञान-प्राप्ति के बाद पहली दीक्षा एक राजा को याने अपने पिता को दी। उसके बाद सम्राट् अशोक आये और फिर हिन्दुस्तान में एक राज्य-क्रान्ति हुई। जिन राजाओं ने उस विचार को नहीं माना वे गिर पड़े।

आजकल हर कोई फल चाहता है। पर यह नहीं जानता कि उसके लिए बोना भी पड़ता है। बिना बोये कैसे फल पायेंगे? फ्रान्स में राज्य-क्रान्ति हुई, तो उसके पीछे रूसो और वाल्टेयर के विचार थे। मार्क्स ने एक विचार का प्रचार किया और फिर लेनिन ने उस विचार के आधार पर क्रान्ति की। विचार प्रचार के बाद ही राज्य क्रान्ति होती है। मेरा विश्वास है कि आज की *हमारी सरकार इतनी विचारहीन नहीं है कि समाज में एक विचार को लोग* पसन्द करते हैं तो भी उस पर अमल न करें। अगर वह अमल नहीं करती है, तो वह टिक नहीं सकती।

डाल्टनगंज (बिहार)
११. ११. ५२

सरकार हमसे भी गरीब

आखिर सरकार में कौन-सी ज्यादा ताकत है जो हममें नहीं है ? वह जबरदस्ती से या सेना की ताकत से कोई काम करा सकती है या सम्पत्ति के जरिये करा सकती है। सम्पत्ति भी कौन-सी है उसके पास ? हमारे पास का एक हिस्सा टैक्स के रूप में दे दिया जाता है। सरकार स्वतन्त्र उद्योग तो नहीं करती। हम जो देते हैं वही उसे मिलता है। हम गरीब हैं परन्तु हमारी सरकार हमसे भी गरीब है। क्योंकि कितना भी हुआ तो भी हमारी सम्पत्ति का हिस्सा ही उसके पास है। हम कुआं हैं और सरकार बाल्टी है। ४ करोड़ लोग दो हाथों से पैदा करते हैं वह ज्यादा होगा या सरकार का हम जो कर देते हैं वह ज्यादा होगा ? हां सरकार का धन दीख पड़ता है क्योंकि वह इकट्ठा हुआ है। हमारा दीख नहीं पड़ता क्योंकि वह घर घर में बँटा हुआ है।

हर आदमी पीछे केवल पाँच पैसे !

सरकार की पंचवर्षीय योजना है। उसमें चार-पाँच हजार करोड़ रुपया पाँच साल में खर्च होगा। हर साल करीब १ करोड़ यानी महीने में ८ करोड़ खर्च होगा। देश में ४ करोड़ लोग हैं। तो हर मनुष्य के लिए महीने में दो-सवा दो रुपये यानी हर मनुष्य पर एक दिन में ५ पैसा सरकार खर्च करेगी। यह हुई सरकार की बड़ी योजना। एक बच्चा सूत कातकर एक घंटे में ५ पैसा कमा लेता है। तो सरकार की योजना से बच्चा भी ज्यादा पैदा कर लेता है। अच्छा उस ५ पैसे से सरकार क्या करेगी ? रेलवे, तालीम, खेती, व्यापार की वृद्धि, कारखाने, लायब्रेरी, विज्ञान की खोज होगी, साहित्य को उत्तेजन मिलेगा, भाषा का प्रचार होगा। यह सारा उस ५ पैसे में होगा। लोग एक घंटा काम करें तो इससे अधिक कर सकते हैं। सम्पत्ति कैसे होती है ? परिश्रम से। परिश्रम कौन करता है ? लोग करते हैं। इसलिए सरकार की पैसे की शक्ति जनता की शक्ति के बराबर नहीं हो सकती।

कानून की शक्ति !

अब रही कानून की शक्ति। क्या आप समझते हैं कि सरकार का कानून है इसलिए चोरियाँ नहीं होतीं ? दण्ड देने से क्या देश में अमन रहने से

क्या समाज बदल सकता है ? समाज में जो सद्भावना है—समाज नीति पर चल रहा है—वह कानून के कारण नहीं। सज्जनों ने समाज को धर्म सिखाया है, इसके लिए समाज को अच्छे-अच्छे ग्रन्थ दिये हैं। मान लो सज्जन न होते तो हम सब जानवर बनते। सरकार का कानून तो कोई पढ़ता नहीं। बस लोगों में जो सज्जनता है, वही समाज की सम्पत्ति है। सरकार के पास ऐसी शक्ति नहीं है, जो समाज को अच्छी नीति पर ले जायगी न उसके पास कोई प्रेरणा-शक्ति है, जो सत्कर्म की प्रेरणा देगी। कर्मप्रेरक शक्ति जितनी समाज में है, उतनी सरकार में नहीं है। भौतिक सम्पत्ति भी समाज का एक अंश सरकार के पास है। तो इस हालत में सरकार सब करेगी ऐसा जो हम सोचते हैं वह ठीक है क्या ? यह आप लोगों को सोचना है। अगर हम पुरुषार्थहीन बन जायेंगे सरकार सब कुछ करेगी ऐसा मानेंगे तो हमारा समाज उन्नति नहीं करेगा। जो हमारा समाज है, समूह है, वह स्वयं अपने लिए कुछ करे। समाज के लिए हरएक व्यक्ति त्याग करे, तभी हम प्रगति कर [illegible]गे। इसलिए सर्वोदय में सब लोग उठ खड़े हो जाते हैं और अपनी उन्नति के [illegible] के लिए तत्पर होते हैं। गोवर्धन पर्वत उठाने में वृन्दावन के कुल बच्चों, बूढ़ों [illegible] ग्वालबालों बहनों का हाथ लगा था। भगवान् ने एक अंगुली का ही सहारा दिया [illegible] था। यह भगवान् की खूबी है। भगवान् कुछ स्वयं कर देते हैं। काम तो [illegible] मारे होता है परन्तु उससे कहते हैं तुम सब करो, फिर हम मदद करते हैं। [illegible] आलस में रहें, तो भगवान् कुछ नहीं करता। इसलिए उसका हाथ लगना चाहिए [illegible]। उसमें बच्चे भी क्यों छूटें ? बच्चे भी आते हैं न ? क्या वे देश के लिए कुछ [illegible] नहीं दे सकते ! जो हाथ भगवान् ने दिये हैं। सूत कातेंगे तो महीने की दो पूनी दे [illegible] सकते हैं। आज हमें पाँच सिक्खों ने सम्पत्तिदान दिया। सिक्खों को स्वर्ग मिलेगा तो उनके बच्चे नहीं चाहेंगे उनके साथ जाना ? लेकिन वे कब जा सकेंगे ? स्वयं पुण्यकर्म करेंगे तब। हरएक को देश के लिए कुछ-न-कुछ करना है।

आज दुनिया में दो प्रकार की संस्थाएँ बहुत मजबूत बनी हैं। एक है धर्म संस्था और दूसरी है शासन-संस्था। दोनों संस्थाएँ लोकसेवा के ख्याल से बनायी गयी हैं। समाज को दोनों संस्थाओं की आवश्यकता महसूस हुई और वह आज भी इनका उपयोग कर रहा है। जब ये दोनों संस्थाएँ बनीं तब तो समाज को ये बहुत ही जरूरी मालूम हुईं इसलिए उनका कुछ उपयोग भी हुआ।

धर्म-संस्था और शासन-संस्था से मुक्ति की जरूरत

लेकिन अब ऐसी हालत आ गयी है कि इन दोनों से छुटकारा पाना समाज के लिए जरूरी हो गया है। मैं यह नहीं कहता कि धर्म से छुटकारा पाने की जरूरत है बल्कि यही कह रहा हूँ कि धर्म-संस्था से छुटकारा पाने की जरूरत है। मैं यह भी नहीं कहता कि लोगों का कुछ इन्तजाम समाज-सेवा की योजना न हो बल्कि यही कह रहा हूँ कि सेवा के नाम पर जो शासन चलता है, उससे छुटकारा पाना जरूरी है। जितना-जितना सोचता हूँ उतना-ही-उतना मेरा यह दृढ़ विश्वास होता जा रहा है कि ये दोनों संस्थाएँ अच्छे उद्देश्य से शुरू हुईं और अब उन उद्देश्यों की पूर्ति हो गयी इसलिए अब उनके जारी रहने में लाभ होने के बदले नुकसान ही होगा।

धर्म का जीवन पर असर नहीं

आज दुनियाभर में धर्म की क्या हालत है? ईसाई-धर्म इस्लाम-धर्म हिन्दू-धर्म और बौद्ध-धर्म काम करते हैं। मैंने चार बड़े धर्मों का नाम लिया। इनके अलावा दूसरे छोटे-छोटे धर्म भी हैं। इन सब धर्मवालों ने अपनी-अपनी संस्थाएँ बनायी हैं। यूरोप में पोप काम करता है और चर्च की अच्छी मजबूत रचना बनी हुई है। जैसे जिले-जिले के लिए जिलाधीश होते हैं, वैसे ही वहाँ हर जिले के लिए चर्च का भी अधिकारी होता है। इसी प्रकार की रचना इस्लाम में भी है। जगह-जगह उनकी मस्जिदें हैं जहाँ मुल्ला होते हैं। उनकी तरफ से कुछ धर्म प्रचार की योजना होती है और कुछ उत्सव वगैरह भी चलते हैं। हिन्दुओं में भी ऐसा ही चलता है। मन्दिरों के जरिये यह सारा कार्य

होता है। यही हालत बौद्धों की है। ये सारे धर्म अहिंसा शान्ति प्रेम आदि माननेवाले हैं फिर भी आप देख रहे हैं कि दुनिया में शान्ति-स्थापना के काम में इन सभी संस्थाओं का कोई असर नहीं हो रहा है। कोई देश दूसरे देश पर हमला करता है तो पोप से पूछता नहीं कि हमला करना ठीक है या बेठीक। वह समझता है कि पोप का अधिकार अलग है और हमारा अधिकार अलग। अपने व्यवहार में वे धर्म का कोई असर नहीं मानते। इतना ही नहीं बल्कि लड़ाइयाँ चलती हैं तो उनमें पक्षविशेष की विजय की प्रार्थनाएँ भी चर्चों में चलती हैं। समाज के व्यवहार में इन संस्थाओं का कोई खास असर नहीं। इतना ही होता तो भी गनीमत थी पर आज समाज पर उनका बहुत बुरा असर भी हो रहा है।

श्रद्धावानों ने धर्म समाप्त किया

श्रद्धावानों पर इन संस्थाओं का बुरा असर हो रहा है। उन्होंने यह मान लिया है कि धर्म का अर्थ कुछ कार्य है उसे करने की जिम्मेवारी इन पुरोहितों की है जिन्हें हमने इस काम के लिए चुना है। धर्म के लिए हमें कुछ नहीं करना है। वे समझते हैं कि पहाड़ी में एक सुन्दर मन्दिर बना दिया उसके लिए कुछ जमीन सम्पत्ति आदि भी दे दी पूजा-अर्चा का इन्तजाम ठीक से हुआ है तो हमारा धर्म-कार्य खतम हो गया। यहाँ कार्तिकस्वामी का बड़ा उत्सव होता। लोग मन्दिर में दर्शन करने के लिए आयेंगे परमेश्वर के सामने कुछ दक्षिणा रखनी हो, तो उसे भी रखेंगे। किन्तु धर्म के लिए हमें कुछ भी करना होता है यह विचार श्रद्धावानों ने छोड़ दिया है। जो श्रद्धावान् नहीं वे न तो पुरोहितों को पूछते हैं और न धर्म को ही। लेकिन जो श्रद्धावान् हैं वे धर्म की धर्म-प्रचार की आचरण की और चिन्तन-मनन की जिम्मेवारी पुजारी एवं पुरोहितों पर छोड़ देते और अपने को मुक्त समझते हैं। फिर वे गुरु कहते हैं कि तुम लोग भस्म लगाओ, तो लोग गुरु की आज्ञा समझकर भस्म लगाते हैं और समझते हैं कि धर्म-कार्य समाप्त हो गया।

जो श्रद्धा नहीं रखते वे तो रखते ही नहीं पर जो रखते हैं उनकी वह श्रद्धा भी निर्वीर्य बन गयी है। एक व्यापारी है जिसने व्यापार चलाने के लिए एक

मुनीम रखा है। सारा काम मुनीम ही करता है और वह खुद बेवकूफ बनकर कुछ नहीं करता। उसने घर में पूजा करने के लिए एक ब्राह्मण रखा है और घर में 'पळनी आंडवन्' (भगवान् कार्तिकेय) की मूर्ति है। उस पूजा का कुछ पुण्य उसे हासिल होता है। यात्रा के लिए भी उसने ब्राह्मण को भेज दिया और उसका कुछ खर्च खुद किया। ब्राह्मण को घूमने का व्यायाम हुआ और उस व्यापारी को यात्रा का पुण्य मिला। सारांश जो श्रद्धाविहीन है, उन्होंने धर्म समाप्त किया इसकी मुझे कोई शिकायत ही नहीं करनी है। किन्तु यही बड़ी शिकायत है कि जो श्रद्धा रखते हैं उन्होंने धर्म-कार्य चन्द लोगों को सौंपकर अपने को उससे मुक्त रखा और धर्म को समाप्त कर दिया।

धर्म पुजारियों को सौंपा गया

मैं एक मिसाल देता हूँ। हिन्दू-धर्म में एक बहुत बड़ी बात है वानप्रस्थाश्रम। शास्त्रों ने कहा कि मनुष्य को अपनी विषय-वासना को मर्यादित रखना चाहिए। जैसे वह संस्कारपूर्वक गृहस्थ बना वैसे ही उसे एक अवधि के बाद संस्कारपूर्वक गृहस्थाश्रम से मुक्त भी होना चाहिए। हिन्दू-धर्म की यह बात पूरी मानी जायगी। शास्त्रग्रंथों में इसकी महिमा का बहुत वर्णन है, पर आज उसका कहीं अमल नहीं है। श्रद्धावान् हिन्दू इसके बारे में चिन्ता नहीं करते हैं। उन्होंने यह सारी चिन्ता पुरोहितों पर सौंप दी है।

श्रद्धालुओं की यह 'गोपाल-सीढ़ी' !

आज सुबह हम पळनी-स्वामी के दर्शन के लिए पहाड़ पर गये थे। हमने देखा कि लोगों ने रास्ते में सीढ़ियाँ और कुछ मण्डप भी बनाये हैं। एसा उन्होंने समझ लिया कि इससे हमारा कर्तव्य पूरा हो गया है। ऊपर किसी मिलवाले ने एक मण्डप बनाया है। उस पर मिल का नाम बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है। हमने देखा कि जगह-जगह जैसे धर्मवचन और पळनी-स्वामी के नाम लिखे गये हैं, वैसे ही सीढ़ियाँ आदि बनानेवाले मिलवालों वगैरह के नाम भी अंकित हैं। लोग समझते हैं कि हमने मंदिर बनवाया और वहाँ प्रभु की सेवा में अपना नाम भी अर्पण कर दिया है। कितना धर्म-विहीन कार्य है यह ! लेकिन लोगों को इतनी सादी अक्ल भी नहीं है। वे समझते हैं कि हमने मण्डप सीढ़ियाँ

बनवायीं तो हमारा कर्तव्य पूरा हो गया। वानप्रस्थाश्रम की स्थापना की चिन्ता तो मंदिर का पुजारी करेगा। हमने एक बार नागपुरम् में घूमते समय किसी मकान पर एक धार्मिक विज्ञापन देखा। वहाँ एक बड़ा सुन्दर चित्र था। बाल-कृष्ण मुरली बजा रहे थे और नीचे लिखा था 'गोपाल-बीड़ी'। अब इन सबको कौन रोकेगा? क्या यह कोई धर्म-कार्य है? लेकिन कोई भी श्रद्धावान् हिन्दू इसके बारे में न सोचेगा। वह इसमें अपनी जिम्मेवारी ही नहीं समझता। इतने बड़े अक्षरों में भगवान् के नाम के साथ बीड़ी का विज्ञापन दिया जाय और किसीको कुछ भी दुःख न हो। मिलवाले ने ऊपर पहाड़ पर मण्डप बनाया यह तो अच्छा किया। लेकिन उसके लिए मिल का नाम बड़े अक्षरों में लिखने की क्या जरूरत थी? वहाँ जाकर हम पक्षी-स्वामी का स्मरण करें या मिलवाले का? इस तरह श्रद्धावान् लोगों ने कुछ धर्म की हानि की है।

सेवा की जिम्मेवारी चन्द प्रतिनिधियों पर

हम चन्द लोगों को चुनकर देते और फिर वे हमारे प्रतिनिधि के नाते समाज-सेवा के सब कार्य करते हैं। उनके हाथ में नौकर-वर्ग रहता है। इन चुने हुए लोगों पर हमने शासन और सेवा की जिम्मेवारी सौंपी है। अब हमें उस बारे में कुछ नहीं करना है, ऐसा लोग सोचते हैं। किन्तु अगर धर्म-कार्य पुजारियों पर और समाज-सेवा का कार्य चुने प्रतिनिधियों पर सौंपा तो आपने अपने ऊपर कौन-सी जिम्मेवारी ली है? आप कहेंगे कि हम खायेंगे-पीयेंगे सोयेंगे। यही जिम्मेवारी हमने उठायी है। किन्तु आपने ऐसी जिम्मेवारी दूसरों पर सौंपी जिससे आप ठीक तरह से खा-पी नहीं सकते। यह शिकायत इसलिए होती है कि आपने जिन्हें काम सौंपा वे वह काम ठीक तरह नहीं करते। पर वे वह काम अच्छी तरह करते तो भी मेरा उस पर आक्षेप है। जो लोग अपना शासन और सेवा-भार चन्द प्रतिनिधियों पर सौंपेंगे धर्म और चिन्तन की जिम्मेवारी चन्द लोगों पर सौंपेंगे वे बिल्कुल निस्सार होंगे। उनके जीवन में कोई प्राण-तत्त्व न रहेगा। लोग इसे अभी समझ नहीं रहे हैं। बल्कि उलटा बाबा से ही पूछते हैं कि तुम गाँव-गाँव क्यों घूमते हो, जमीन हासिल करने और बाँटने की तकलीफ क्यों उठा रहे हो सरकार के जरिये यह काम क्यों नहीं

करना कैसे ? लोगों का यह सवाल वाजिब है। वे कहते हैं कि हमने सेवा के लिए नौकर रखे हैं तो आप क्यों तकलीफ उठाते हैं ? आपको जमीन चाहिए, तो हम १२ एकड़ दे देंगे उसमें खेती कीजिये और मजे में खाइये-पीजिये लाखों एकड़ जमीन हासिल करते हुए क्यों घूमते हैं ? याने लोग स्वयं तो अपनी सार्वजनिक सेवा की जिम्मेवारी मानते ही नहीं लेकिन बाबा यह काम कर रहा है, तो उसीसे पूछते हैं कि नाहक काम क्यों करते हो ?

इंग्लैण्ड का उदाहरण

लोकशाही चलानेवाली संस्था का उत्तम नमूना इंग्लैंड और उसकी पार्लमेण्ट माना जाता है। किन्तु वहीं के लोगों ने जिनके हाथों में सत्ता सौंपी है, उन्होंने अभी-अभी मिस्र पर हमला कर दिया। इंग्लैंड की जनता के लिए यह बड़े गौरव की बात है कि उसने इस आक्रमण के विरोध में जोरों से आवाज उठायी फिर भी वे उसे रोक न सके। वहाँ इतनी उत्तम लोकशाही चलानेवाले भी कमजोर साबित हुए आगे जब चुनाव होंगे तब वे असर डालेंगे यह दूसरी बात है लेकिन इस वक्त जो बुरा काम हुआ हो रहा है और होगा उसे रोकने के लिए आवाज उठाने पर भी उनकी कुछ न चली। सारी दुनिया की आवाज इस आक्रमण के खिलाफ उठी 'यू एन ओ' का प्रस्ताव भी रहा। इसलिए आखिर उन्हें यह आक्रमण रोकना पड़ा।

जब हम अपने शासन का भार चन्द लोगों पर सौंपते हैं तो यही हालत होती है। क्या रूस क्या इंग्लैंड क्या चीन और क्या अमेरिका हर देश में यही हालत है कि उन्होंने अपना कारोबार चन्द लोगों के हाथों में सौंप दिया है और उन्हींका अनुसरण दूसरों को करना पड़ता है। कम-बेशी परिमाण में सारी दुनिया की यही हालत है। पर हिन्दुस्तान की विशेष है, क्योंकि यहाँ की जनता में उस प्रकार की जागृति नहीं है जैसे इंग्लैंड आदि देशों की जनता में है। हमने अपना धर्म और अपनी व्यवस्था का काम भी चन्द लोगों के हाथों में सौंपा है। लोगों और ने हम पुरुषार्थहीन बन गए हैं। सर्वोदय-समाज हर व्यक्ति से कहता है कि अपने शासन का इन्तजाम तुम शुरू करो अपने धर्म का आचरण तुम शुरू करो।

सुशासन में अधिक खतरा

आज मैं जब पहाड़ पर मन्दिर में जा रहा था तो रास्ते में मन में जो विचार आये वे आपके सामने रखे। मुझे अच्छा लगता है कि ऐसे स्थान बने हैं इसलिए लोगों में कुछ-न-कुछ श्रद्धा बनी है। इन लोगों ने जो अच्छे-अच्छे काम किये उनकी हम कद्र करते हैं। अगर हमने उसकी संस्था बनाकर ये काम चन्द लोगों के हाथ में सौंपे न होते तो इनसे बहुत ज्यादा अच्छे काम होते। हमारी सरकार भी कुछ अच्छा काम करती है और कुछ गलत। पुराने राजाओं ने भी कुछ अच्छे काम किये और कुछ गलत। जो गलत काम पुराने राजाओं ने किये या आज की सरकार कर रही है उनके बारे में मुझे कोई शिकायत नहीं करनी है। जो गलत काम हैं, वे और उनके परिणाम दुनियाभर जाहिर हो जाते हैं। चिन्ता की बात तो यह है कि दुनिया का भला करने की जिम्मेवारी चन्द लोगों पर सौंपी गयी और वे दुनिया का भला करें, ऐसा हम सोचते हैं।

मुझे मुख्य शिकायत इसीकी करनी है कि राज्यसंस्था कभी-कभी अच्छे काम करती है उन अच्छे कामों से समाज के दिमाग पर उसका और असर होता है। अगले साल चुनाव होंगे उस वक्त वे लोग आपके पास वोट माँगने आयेंगे और कहेंगे कि "देखो हमने इतने-इतने अच्छे काम किये। अगर सचमुच उन्होंने अच्छे काम किये हों तो लोग उनके उपकार के बोझ के नीचे दब जायेंगे। इसीका मुझे दुःख होता है। कुछ लोग उपकार करें और बाकी सब लोग उनके बोझ के नीचे दबें यही गलत है। यह ठीक है कि छोटे बच्चों की जिम्मेवारी माता-पिता पर हो। पर क्या दस-दस हजार साल की संस्था के बाद भी हम बच्चे ही रहे हैं? अब हमें समझना चाहिए कि विज्ञान इतना पैना है और हमारी ज्ञान की आग की रफ्तार बढ़ती जाती है तो हरएक मनुष्य अपना-अपना ज्ञान और अपने अपने धर्म का कारोबार अपने हाथ में ले सकता है।

कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि सरकार गलत काम करती है तो आप उसके खिलाफ जोरदार आवाज क्यों नहीं उठाते? हम उसके खिलाफ जोरदार आवाज नहीं उठाते कभी-कभी मौके पर कह देते हैं। किन्तु जब हम देखते हैं

कि सरकार कोई अच्छा काम कर रही है तभी जोरदार आवाज उठाते हैं। सरकार के गलत काम के खिलाफ आवाज उठाने के लिए हमारी जरूरत नहीं लेकिन उसके अच्छे कामों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए हमारी जरूरत है। लोगों से यही कहने की जरूरत है कि "तुम भेड़ बन रहे हो। तुम लोग भेड़ होकर बोलने लगे कि "गड़ेरियों ने बहुत अच्छा इन्तजाम किया" तो क्या यह खुश होने की बात है? मैं उस पर क्या बोलूँ? मुझे लगता है कि गड़ेरिये अच्छा काम नहीं करते तो कम-से-कम उससे भेड़ तो समझ जाते हैं कि हम भेड़ बन रहे हैं। उन्हें अपनी स्थिति का कुछ भान हो जाता और वे समझते हैं कि हम भेड़ नहीं मनुष्य हैं, हम अपना कारोबार अपने हाथ में क्यों नहीं रखते? इसलिए हमारी आवाज सुशासन के खिलाफ उठती है। दुःशासन के खिलाफ तो महाभारत में व्यास ही आवाज उठा गये हैं। लोग जानते हैं कि खराब शासन नहीं होना चाहिए। खराब शासन चलता है तो लोग टीका करते हैं। यह कार्य तो दुनिया में चल ही रहा है। किन्तु हम पर कोई अच्छा शासन चलाये और हम शासित हो जायें यही हमें बुरा लगता है।

पलनी (मद्रास)
१७-११-५६

लोकनीति की निष्ठा

आज की परिस्थिति पर मैंने निम्नलिखित तीन बातें सामने रखी हैं। पहली बात है अहिंसा सत्य अस्तेय की। दूसरी बात है, निष्काम सेवा और सकाम वृत्ति सहन करने की और तीसरी बात है लोकनीति की निष्ठा। यह हमारे सेवकों की निष्ठा का एक महत्त्वपूर्ण अंग होना चाहिए। इस बार सर्व-सेवा-संघ ने जो प्रस्ताव किया वह बहुत ही सुन्दर प्रस्ताव है। ऐसा प्रस्ताव कभी होता है तो मुझ जैसे को बड़ा उत्साह आता है कि समझाने के लिए कोई चीज मिल गयी। वह प्रस्ताव ऐसा है कि उस पर बहुत बहस हो सकती है यानी चर्चा को उत्तेजन देनेवाला प्रस्ताव है। "हम अगर वोट नहीं देंगे तो क्या नागरिक के कर्तव्य की हानि नहीं होगी? अगर बहुत लोग हमारी बात मानें तो

क्या सम्पन्न आदमियों के हाथ में कारोबार नहीं आयगा ? आदि कई प्रश्न आते हैं। उन सबके बावजूद यह प्रस्ताव हमारे लिए बड़ा कल्याणकारी है। लोकनीति के विषय में जितना मैं सोच रहा हूँ उससे इतना निश्चय हो जाता है कि जो आज की राजनीति को उसे तोड़ने के लिए भी मान्य करेंगे वे उसे तोड़ न पायेंगे क्योंकि तोड़ने के लिए उसके बाहर रहना पड़ता है। आप वृक्ष के बाहर रहकर ही उसे काट पाते हैं उस पर चढ़कर उसे तोड़ना चाहें, तो नहीं तोड़ सकते। इसलिए तोड़ने के बहाने से भी जिसके साथ जो सम्बन्ध जोड़ने की इच्छा हो वह अत्यन्त सूक्ष्मतम मोह है। आज जिस हालत में दुनिया है, उसे देखते हुए मैं उसे निर्दोष मानने के लिए भी तैयार हो जाऊँगा। कल एक आस्ट्रिया के भाई को हमने कुछ समझाया पर उन्हें यह मुश्किल रह गयी कि बाकी का तो सारा ठीक है, किन्तु सारे समाज के परिवर्तन के लिए अगर कहीं-न-कहीं सत्ता के केन्द्र पर हमारा अंकुश न रहे, तो कैसे चलेगा ? इस अंकुश की बात को तो हम बराबर मानते हैं। पर हमारे मन की यह सफाई होनी चाहिए कि जब हम उससे अलग होंगे तभी उस पर ज्यादा अंकुश रख सकेंगे।

पलनी (मद्रास)
२०-११-'५६

दुनिया सरकाररूपी रोग से पीड़ित

मेरे मन में और एक बात है जो मैं आपके सामने रख देना चाहता हूँ, क्योंकि इस छोटी-सी जिन्दगी में हम अपने विचार छिपाना नहीं खोल देना चाहते हैं। हमारा मुख्य विचार है कि सारी दुनिया को सरकारों से मुक्ति मिले। इसलिए यदि हम सरकारी मदद पर ही निर्भर रहेंगे तो यह चीज नहीं बनेगी। आज सारी दुनिया अगर किसी रोग से पीड़ित है तो वह इस सरकाररूपी रोग से पीड़ित है। आज राम-नाम की जगह 'सरकार' नाम ने ले ली है। १९४७ से हम लोग ज्यादा गुलाम बन गये हैं। उसके पहले लोग समझते थे कि हमें सरकार की मदद न मिलेगी। जो कुछ करना है हमें ही करना होगा। लेकिन स्वराज्य-प्राप्ति के बाद लोग समझने लगे हैं कि सरकार ही

मतलब तो हमें निकम्मापन ही है। अगर ऐसा सोचकर वे पहले से दसगुना परिश्रम करते तो हिन्दुस्तान बहुत आगे बढ़ता। पर लोग आज उल्टा ही समझने लगे हैं। वे समझते हैं कि हमें कुछ करना-धरना तो है नहीं जो कुछ करना है, सरकार को ही करना है। लोग समझते हैं कि अंग्रेजों के राज्य में आकाश से पानी बरसता था और अब भी सिर्फ पानी ही बरसेगा तो ज्यादा क्या हुआ? अब स्वराज्य हो गया है, तो मृग नक्षत्र में आसमान से कपड़ा नीचे गिरेगा आर्द्रा नक्षत्र में केला गिरेगा और पुनर्वसु में सारा अनाज गिरेगा। वे कहते हैं कि "स्वराज्य के पहले भी हमें काम करना पड़ता था और अब भी करना पड़ता है, तो हम सुखी तो नहीं हुए। पर मैं कहता हूँ कि स्वराज्य के बाद आपने क्या छोड़ा? उससे पहले आप आपस में लड़ते थे क्या अब वह छोड़ दिया? पहले आप झूठ बोलते थे एक-दूसरे को ठगते थे क्या अब वह सब छोड़ दिया? अगर आपने वे सारे दुर्गुण नहीं छोड़े तो परिस्थिति में क्या फर्क होगा?

पैरिम्पुर (मद्रास)
२४ १२ '५१

स्वराज्य के बाद त्याग की जरूरत

स्वराज्य आया तो परिस्थिति के कारण आया, गांधीजी के कारण आया और कुछ गफलत में भी आया ऐसा समझ लो क्योंकि लंका और ब्रह्मदेश ने कौन-सा बड़ा प्रयत्न किया जो उन्हें स्वराज्य मिला? इसलिए हमने कोई बहुत बड़ा पराक्रम किया और इसलिए हमें स्वराज्य मिला इस भ्रम में न रहें। हाँ हमने स्वराज्य के पहले इतना पराक्रम किया कि एक-दूसरे के बहुत से गले काटे। हिन्दू, मुसलमान सिख आदि के जो झगड़े चले उसका पराक्रम बहुत हुआ। आखिर गांधीजी ने कह दिया कि लोगों ने जो अहिंसा रखी वह वीरों की अहिंसा नहीं लाचारों की अहिंसा थी। अगर वीरों की अहिंसा होती तो ११ साल के अन्दर सारे भारतभर में एक चमत्कार देखते। लेकिन उसके लिए हमें निराश नहीं होना है। हमें समझना चाहिए कि आगे हमारा कर्तव्य क्या है। बीच-बीच के लोगों को अपने पाँव पर खड़े होना चाहिए त्याग

की मात्रा बढ़नी चाहिए। हरएक को समझना चाहिए कि मुझे अपने गाँव के लिए त्याग करना है। ये सारे गुण गाँव-गाँव में आने चाहिए और गाँव-गाँव को अपनी शक्ति का भान होना चाहिए।

आईने में अपना ही प्रतिबिम्ब दीखता है

आज सारी दुनिया में एक भ्रम पैदा हुआ है कि सरकारों के कारण हम बचते हैं अगर सरकार न होती तो बच न पाते। आज ही हमने सुना कि जापान की सरकार सेना की बात कर रही है और वहाँ की जनता को वह जँच नहीं रही है। पाकिस्तान के जो मित्र हमसे मिले उन्होंने भी कहा कि वहाँ की सरकार का किया हुआ सैनिक समझौता वहाँ की जनता पसन्द नहीं करती। उधर फ्रांस की सरकार फ्रेन्च लोगों को दो-चार महीने से ज्यादा पसन्द नहीं आती साल भर में दो-तीन बार सरकार बदला करती है। फिर भी दुनिया के लोगों को यह भ्रम है कि सरकार के बिना हमारा काम चल नहीं सकता। हम यह समझ सकते हैं कि लोगों का काम खेती के बिना न चलेगा उद्योगों के बिना न चलेगा प्रेमभाव के बिना न चलेगा धर्म के बिना न चलेगा। हम यह भी समझ सकते हैं कि यदि शादी की विधि न हो कुटुम्ब-व्यवस्था न हो तो लोगों का काम न चलेगा। लेकिन ऐसी वस्तुओं में हम सरकार की गिनती नहीं करते।

वास्तव में जनता को सरकार की कोई जरूरत नहीं। वह तो एक समाज के प्रवाह में बीच बन गयी। समाज में एकरसता निर्माण करने में हम समर्थ सिद्ध न हुए। समाज में अनेकविध भेद पड़ गये। हमें अविरोध से काम करने का पूरा शिक्षण नहीं मिला। उसके बदले में हम राज्यसत्ता से काम लेना चाहते हैं। जो काम लोगों को शिक्षित करने से हो सकता है उसे हम दण्डशक्ति से करना चाहते हैं। हरएक सरकार तालीम के लिए जितना खर्च करती है उससे कई गुना खर्च सेना पर करती है। पाकिस्तान की सरकार कहती है कि "हिन्दुस्तान के डर के कारण हमें सेना और शस्त्रास्त्र बढ़ाने पड़ते हैं, उस पर खर्च करना पड़ता है। हिन्दुस्तान की सरकार कहती है कि "पाकिस्तान का रुख अच्छा नहीं है इसीलिए हमें सेना पर जोर देना पड़ता है।

उधर रूस कहता है कि "अमेरिका का सवाल गम्त है, इसलिए उसके डर से हमें शस्त्रास्त्र बढ़ाने पड़ते हैं। अमेरिका भी रूस के लिए वही बात कहता है। आखिर सही बात क्या है? पाकिस्तान के डर से हिन्दुस्तान को डरना पड़ता है या हिन्दुस्तान के डर से पाकिस्तान को? अपना प्रतिबिम्ब ही आईने में दीखता है। वहाँ वह तलवार लेकर खड़ा है। हमें उसका डर मालूम होता है। हम अपनी तलवार मजबूती से पकड़ते हैं, तो वह आईनेवाली तस्वीर भी वैसा ही करती है। हमें यह पहचानना है कि सामने जो दीख रहा है वह हमारा ही प्रतिबिम्ब है। अगर हिन्दुस्तान कम-से-कम सेना रखने की हिम्मत करेगा तो हम समझते हैं कि वह सारी दुनिया में नैतिक शक्ति प्रकट करेगा।

जब तक हम दुनियाभर के सब लोग ये सारी सरकारें अपने सिर पर उठाये रहेंगे तब तक यह काम न बनेगा क्योंकि आज चन्द लोग समझते हैं कि हम करोड़ों लोगों के लिए जिम्मेदार हैं और वे करोड़ों लोग भी समझते हैं कि ये लोग ही हमारी रक्षा करते हैं। इसीलिए उनके चित्त सदा भयभीत रहते हैं। जहाँ चित्त भयभीत होता है वहाँ सारा दारोमदार सेना पर आ जाता है और सेना पर जितना भार रखा जाता है, उतना भय बढ़ता है।

सरकार के कारण हम असुरक्षित

लोकशाही का सबसे बड़ा दोष यह है कि हमारा सारा दारोमदार चन्द लोगों पर है। उसमें लोग अपने हाथ में अपना जीवन नहीं रखते। उसमें कुछ लोगों के हाथ में सत्ता दी जाती है और सभी आशा रखते हैं कि सरकार हमारी रक्षा करेगी। इसमें लोकमत का कोई सवाल नहीं मुख्य व्यक्ति की अक्ल के अनुसार ही काम चलता है। यह बहुत ही शोचनीय बात है। आज कांग्रेस की सरकार चलती है कभी दूसरी भी चलेगी। दूसरे देशों में दूसरी सरकारें चलती हैं। हमें इन सरकारों में कोई दिलचस्पी नहीं। हमें किसी खास सरकार के खिलाफ नहीं कुल सरकारों के खिलाफ कहना है। हम मानते हैं कि जब तक हम यह सरकाररूपी सत्ता अपने सिर पर उठाये रहेंगे और उससे सुख को सुरक्षित मानते रहेंगे तब तक हम अत्यन्त असुरक्षित हैं।

पेरियापुर (मद्रास)
२४ १२ '५६

भारतीय राजचिह्न का संकेतार्थ ! १२.

हमारे राजचिह्न में चार सिंह हैं। सामने से तो तीन ही सिंह दीखते हैं, पर हैं चार। यही अशोक का राजचिह्न था जो हमने भारतीय गणतन्त्र के लिए स्वीकार किया। इस चिह्न का मतलब है कि भेड़ें इकट्ठी होकर रहती हैं भेड़ इकट्ठे होकर रहते हैं लेकिन वे डरपोक हैं इसीलिए इकट्ठे रहते हैं। यह अहिंसा नहीं है, डर है। उसमें बहादुरी नहीं है। भेड़ों के इकट्ठा होने में क्या बहादुरी है? उधर सिंह बहादुर है, लेकिन वह कभी इकट्ठा नहीं रहता। वह सारे जंगल का बादशाह कहलाता है, लेकिन उसका अर्थ यह है कि वह प्रजा का भक्षण करता है। उसकी बहादुरी प्रजा को खाने की है। जंगल के सारे प्राणियों को जो खा जायगा उसका नाम है राजा! इस तरह सिंह वीर है लेकिन वे हिंसक हैं। इसलिए वे अलग-अलग रहते हैं। तब अशोक ने युक्ति की। उसने चार सिंहों को इकट्ठा कर दिया यानी बहादुर होते हुए भी प्रेमपूर्वक इकट्ठा रहनेवाले सिंह वे बन गये। भेड़ इकट्ठे रहते हैं, लेकिन उनमें बहादुरी नहीं है। सिंह में बहादुरी है लेकिन प्रेम नहीं है। प्रेम और बहादुरी जब इकट्ठा होती है, तब अहिंसा बनती है। अहिंसा की ताकत तब बनती है जब शौर्य और प्रेम दोनों एक साथ रहते हैं। इसलिए अशोक ने चार सिंह इकट्ठा करके अपना राजचिह्न 'अहिंसा का प्रतीक' बनाया क्योंकि वह स्वयं चण्ड-अशोक से धर्म-अशोक बन गया था।

हम चाहते हैं कि हरएक भारतीय 'सिंह' के समान बहादुर बने लेकिन सिंह के मुताबिक अलग-अलग न रहे, इकट्ठा रहे। यह अगर हिन्दुस्तान में होगा तो सचमुच शान्ति होगी। ग्रामदान में यही हो रहा है।

नातम (मद्रास)
२५-९-५७

हमसे पूछा गया कि 'आप राज्य पर मशीन नहीं रखते और कहते हैं कि फौज पुलिस वगैरह की जरूरत नहीं है। उस हालत में अगर देश पर बाहरी हमला होगा तो देश का बचाव कैसे किया जायगा ? हम कहते हैं कि दूसरा देश हम पर हमला करेगा ही क्यों ? अगर हमारे देश में जमीन बहुत ज्यादा है और दूसरे देश के पास कम इसलिए वह हमला करेगा तो हम उसे प्रेम से जमीन दे देंगे। आस्ट्रेलिया में जमीन बहुत ज्यादा है और वे दूसरों को वहाँ जाने नहीं देते इसलिए उन पर हमला हो सकता है। लेकिन हिन्दुस्तान पर हमला नहीं हो सकता है क्योंकि हमारे पास जमीन कम ही है।

बात यह है कि हिन्दुस्तान पर अमेरिका या रूस कभी हमला न करेगा। अगर हमला होगा तो पाकिस्तान से होगा। माने भाई-भाई के झगड़े का सवाल है। दुनिया में जितने झगड़े होते हैं, सब भाई-भाई के ही झगड़े हैं, दुश्मनों के नहीं। भाइयों में ही एक-दूसरे पर दावा किया जाता है, जो मित्रों पर नहीं किया जाता। किसी मित्र ने एक-आध बार कुछ एहसान किया तो आप उसे जिन्दगीभर याद रखते हैं। किन्तु भाई हमेशा आपका काम करता हो और कभी एक-आध बार वह आपकी बात न माने तो आप उतना ही याद रखते हैं। इसलिए ये सारे झगड़े भाईचारे से मिटेंगे फौज से नहीं। अगर हम फौज बढ़ायेंगे तो पाकिस्तान भी बढ़ायेगा और फिर विश्व-युद्ध का भी खतरा खड़ा हो जायगा। लेकिन आज अगर हिन्दुस्तान हिम्मत करके अपनी सेना विसर्जित कर दे, तो हिन्दुस्तान की ताकत बहुत बढ़ जायगी। फिर पाकिस्तान भी फौज पर नाहक खर्च न करेगा।

लेकिन इसके लिए हिम्मत चाहिए। यह डरपोक का काम नहीं है। हम डरपोक हैं डरपोक में कल्पना-शक्ति नहीं होती। सोचने की बात है कि हम पर हमला किसका होगा। उधर तो एटम और हाइड्रोजन बम बन रहे हैं जो हमारे पास नहीं हैं। फिर भी हम कहते हैं कि हमारे पास एक चाकू तो होना ही चाहिए। मैं मानता हूँ कि अगर हिन्दुस्तान अपनी फौज को विसर्जित कर देगा तो वह दुनिया में सबसे शक्तिशाली राष्ट्र बन जायगा इससे

इसकी नैतिक प्रतिष्ठा बहुत बढ़ जायगी। वह पाकिस्तान की जनता का दिल जीत लेगा और 'यू एन ओ' में भी उसका वजन बहुत बढ़ जायगा।

तिरूर (मद्रास)
१८-१०-५६

चुनाव का खेल १४

चुनाव खेलो

इन दिनों बहुत से लोगों को हर बात में 'फाइट' करने की आदत पड़ गयी है। कहा जाता है कि अगले साल १९५७ में चुनाव की 'फाइट' होगी। हमने कई बार कहा है कि तुम लोग चुनाव लड़ते क्यों हो? चुनाव तो खेलना चाहिए। कुश्ती खेलते हैं या नहीं? दो मनुष्यों के बिना कुश्ती नहीं होती। इसलिए कांग्रेसवालों को इस वक्त बड़ी मुश्किल हो रही है। उन्हें फिक्र है कि सामने कुश्ती के लिए मल्ल ही नहीं दिखाई देता। विरोधी दल के बिना लोकशाही का कारोबार अच्छा नहीं चलता, यह सिद्धान्त हमने बनाया ही है। आप अगर विरोधी दल चाहते हैं, तो आपको चुनाव खेलना चाहिए, न कि लड़ना। कुश्ती में जो जीतता है, उसे इनाम मिलता ही है। लेकिन जो हारता है, उसे भी सम्मानपूर्वक नारियल दिया जाता है। क्योंकि अगर वह न हारता तो दूसरे को ( ) इनाम मिलता ही नहीं। इसीलिए चुनाव को एक खेल समझें तो आज जो उसमें बुराइयाँ होती हैं, वे न होंगी। जिसने चुनाव जीत लिया, उसे राज्य-कारोबार चलाने का इनाम मिल गया और जो चुनाव हार गया, उसे सार्वजनिक सेवा का नारियल! दोनों को दोनों ओर से लाभ है। उसमें अपना क्या बिगड़ता? वे हारे तो भी हमारी जीत होती है।

पक्षभेद के कारण प्रेम न घटे

चुनाव में हम खेल के समान वृत्ति रखनी चाहिए। उसमें यह होना चाहिए कि हम सभी भाई-भाई हैं। एक ही आश्रम या एक ही घर में रहते हैं, प्रेम से

मिल-जुलकर काम करते हैं, एक साथ खाते-पीते हैं, अपनी कमाई दोनों बाँट लेते हैं। उनमें एक सोशलिस्ट पार्टी का है तो दूसरा कांग्रेस-पक्ष का। फिर भी एक-दूसरे से दोनों अत्यन्त प्रेम करते हैं। चुनाव में ये दोनों जायेंगे तो एक कहेगा कि दूसरे को वोट मत दीजिये क्योंकि वह अच्छा कारोबार न चलायेगा क्योंकि उसकी कल्पना अच्छी नहीं है। दूसरा भी इसी तरह लोगों से कहेगा कि वह अच्छी लोकशाही न चलायेगा क्योंकि उसका विचार ठीक नहीं है। इस तरह एक-दूसरे के विरुद्ध प्रचार करेंगे। लोगों में अपने विचार का प्रचार करेंगे। कोई भी हारे और कोई भी जीते लेकिन घर पर जाकर दोनों एक साथ खायेंगे-पीयेंगे और प्रेम से रहेंगे। इस तरह आनन्द और विनोद के बीच चुनाव होना चाहिए। फिर दोनों में से कोई भी हार जाय तो कोई भी हर्ज नहीं।

हमने बिहार में यह खूब देखा है। बिहार के कई कुटुम्बों में एक-आध कांग्रेसी होता है, दूसरा कम्युनिस्ट, तीसरा सोशलिस्ट, तो चौथा सर्वोदयवादी। बाप अगर कांग्रेसी रहा तो बेटा जरूर कम्युनिस्ट होगा। लेकिन वे लोग कहते हैं कि किसी भी पक्ष का राज्य चले अपने कुटुम्ब का नुकसान न होगा क्योंकि कुटुम्ब में हरएक पार्टी के लोग होते हैं। यही आनन्द प्राचीनकाल में हिन्दुस्तान में था। बाप हिन्दू होता था तो बेटा बौद्ध और उसका एक भाई जैन होता था। सभी एक ही परिवार में प्रेम से रहते और अलग-अलग अपने-अपने धर्म में विश्वास रखते थे। लेकिन धर्म-विश्वास अलग है, तो प्रेम तोड़ना चाहिए, इसकी कोई जरूरत नहीं। इसी तरह राजनैतिक पद्धति अलग होने पर भी प्रेम तोड़ने की जरूरत नहीं। इसलिए चुनाव में लड़ने की वृत्ति 'टु फाइट इलेक्शन' यह शब्द बहुत बुरा है। यह शब्द अंग्रेजी भाषा से यहाँ आया है। अपने देश में तो चुनाव खेल होना चाहिए।

घर्षण में तेल डालिये

मशीन में 'घर्षण' तो होता ही है। अगर बिना 'घर्षण' की मशीन बनायें तो वह काम ही न देगी। बिना घर्षण के मशीन ढीली पड़ जायगी। उसमें गति ही न आयेगी। इसलिए कितना भी हँसते-हँसते चुनाव लड़ो फिर भी उसमें कुछ-न-कुछ घर्षण होगा ही। ऐसे समय आप तेल की क्रिया

लेकर तैयार रहिये। ज्योंही बर्तन की स्थिति मालूम पड़े त्योंही उसमें तेल डालिये। मगर यह कला आपको सध जाय तो लोग शिकायत न करेंगे कि आप चुनाव से अलग रहे। बल्कि यही कहेंगे कि अगर ऐसे थोड़े लोग अलग न रहते तो तेल ही कौन डालता !

परीक्षक जनता

दूसरी बात हमें आपसे यह कहनी थी कि हिन्दुस्तान के लोग बड़े परीक्षक हैं। मैंने बराबर पहचान लिया है कि गाड़ी चलानेवाला ठीक है या नहीं। उसे तुरत पता चल जाता है कि गाड़ी चलानेवाला शिक्षित है या अशिक्षित। हम कहते हैं कि सारी जनता मूर्ख है लेकिन वह बहुत अक्ल रखती है। वह हम लोगों की बराबर परीक्षा करती है। हिन्दुस्तान के गरीब लोगों की सेवा संतों ने की है इसलिए जब उसे मालूम होता है कि हम सेवक हैं, तब वह हमें संत की कसौटी पर कसती है। लोगों का जीवन-स्तर गिरा है लेकिन चिंतन का स्तर ऊँचा ही है। वे कार्यकर्ता और सेवक की छोटी-छोटी बात भी देखते हैं। इसलिए हमारा व्यक्तिगत आचरण जितना निर्मल और स्वच्छ रहेगा उतना ही हमारा कार्य असरी होगा।

गांधीनगर (मद्रास)
१८।१०-'५६

आज का धोगस जनतन्त्र १५

आज सब देशों में सरकारी सत्ता है। वह चुनी हुई सरकार है, पर जन शक्ति से काम नहीं होता। वह प्रातिनिधिक लोकशाही है यानी सारा सेवा-कार्य हमने प्रतिनिधियों को सौंप दिया है। अपने सारे महत्त्व के काम हम प्रतिनिधियों को सौंप दें तो हम शक्तिहीन बन जाते हैं। फिर तो हमको अपना दिमाग की भी जरूरत नहीं। नौकरी के लिए १८ नौकर (एम एल ए) चुने हैं परन्तु वे ही अपनी मालिक बनते हैं और जनता आममात्र की मालिक रह

जाती है—बिलकुल गुलाम की हैसियत में। क्या यह लोकशाही है? आज अमेरिका की कुल सत्ता आईक और उसके चन्द साथियों के हाथ में है। वे चाहें, तो देश को या दुनिया को भी आग लगा सकते हैं अगर उनकी अक्ल चक्कर खिा न गयी। इतनी भयानक शक्ति प्रतिनिधियों के हाथ में हमने दे रखी है। हमारे कुल जीवन पर हमारा काबू नहीं रहा है। शादी का कानून, तालीम का कानून, जमीन का कानून, व्यापार का कानून! कौन-सा कानून सरकार नहीं बना सकती? जीवन की हरएक शाखा में सरकार कानून बना सकती है। यह अत्यन्त भयानक दशा है—केवल इस देश की ही नहीं, कुल दुनिया की! इसीलिए प्रतिनिधियों से जो कार्य चलता है, उसे हमको गौण बना देना है और अपने जीवन के जो महत्त्व के काम हैं, वे अपनी निज की शक्ति से जनता को करने हैं। ग्रामदान से यह हो सकता है। इस वास्ते सेवा-सेना खड़ी करनी है। लोग स्वयं ऐसी सेवा-सेना खड़ी करें।

आज क्या स्थिति है? मान लो कि १ मतदाता हैं। उनमें से ६ लोगों ने मत दिया और ४ ने नहीं। उसमें से फिर ३ मत जिसे मिले वह पार्टी राज चलाती है और बाकी ३ मत भिन्न पक्षों में बँट गये हैं। इसका मतलब यह हुआ कि ३ लोगों की सत्ता १ पर चलेगी!

जब एक बिल असेम्बली में आता है तो उन चुने हुए ३ लोगों की पार्टी-मीटिंग होती है। उसमें उस बिल का मानो १५ सदस्य विरोध करते हैं। वे मीटिंग में अपना विरोध तो बतायेंगे परन्तु असेम्बली में वे अनुकूल ही मत देंगे। अब जो १५ सदस्य हैं, उनमें भी उनका जो नेता होता है या एक-दो जो मंत्री होते हैं उनकी बात माननेवाले वे सदस्य होते हैं। इस तरह दो-तीन मनुष्यों का राज १ मतदाताओं पर चलता है।

बोगस मामला

इस प्रकार देखा जाय तो सारा मामला बोगस लगता है। इनमें जनशक्ति प्रकट नहीं होती, बल्कि पुराने राजा जितना नुकसान कर सकते थे उससे ज्यादा नुकसान ये कर सकते हैं, क्योंकि ये 'लोकमत अनुकूल है' ऐसा दावा कर सकते हैं। अलावा इसके पुरानी राजसत्ता 'वेलफेयर' नहीं थी, इस वास्ते जीवन के

कुछ विभागों पर उनकी सत्ता भी नहीं थी। राजा अच्छा हो तो राज अच्छा चलता था, नहीं तो वह खराब चलता था। आज भी वही हालत है। इसी वास्ते बम्बई में शराब-बन्दी हो सकती है, परन्तु गोवध-बन्दी नहीं हो सकती और बिहार में गोवध-बन्दी हो सकती है, परन्तु शराब-बन्दी नहीं हो सकती। यह सब क्या 'लोकमत' से चल रहा है? जैसे राजा अपने सरदारों से काम चलाते थे वैसे ही आज कैबिनेट बनती है, उसमें प्रधान मंत्री अपने साथी चुन लेता है। कहते हैं ऐसा नहीं करेंगे तो 'टीम' नहीं बनेगी। राजसत्ता के प्रतिबिम्बस्वरूप आज की यह डेमोक्रेसी बनी है। इस तरह पहले के दोष इसमें आ ही जाते हैं। इस प्रकार सब सत्ता सरकार के हाथ में है। यह क्या स्वराज्य है, जहाँ जनता अपनी ताकत ही महसूस नहीं करती? पुरानी राजसत्ता और आज की सरकार में फर्क भी क्या है? इतना ही हुआ कि जो पत्थर मेरे सिर पर दूसरों द्वारा लादा जाता था, वह मैं स्वयं अपने हाथों से अपने सिर पर लाद रहा हूँ! पहले मुझे यह अधिकार प्राप्त नहीं था, अब पत्थर स्वयं लाद लेने का अधिकार प्राप्त हुआ है! पर वह है तो बोझ ही न?

स्वराज्य कहाँ नहीं

इसलिए आज दुनिया में आजादी नहीं है। जो है, वह केवल भ्रम है। आजादी तब तक नहीं होगी, जब तक हरएक मनुष्य, हरएक गाँव अपनी शक्ति महसूस नहीं करता। अपने गाँव का इन्तजाम हम करते हैं, गाँव के झगड़े हम मिटाते हैं, तालीम की पद्धति हम तय करते हैं, गाँव की रक्षा हम करते हैं, गाँव का व्यापार हम करते हैं, इस तरह गाँव के लोग अपना कारोबार स्वयं देखेंगे तब गाँव की ताकत बढ़ेगी और फिर राज्य चलाने का अनुभव गाँव-गाँव के लोगों को होगा। फिर पण्डित नेहरू के बाद क्या होगा, यह सवाल खड़ा नहीं होगा। परन्तु आज गाँव में अक्ल नहीं है, क्योंकि वहाँ स्वराज्य ही नहीं है! सब पराधीन बने हैं।

एक मिसाल देता हूँ। पचीस साल पहले बिहार में बहुत बड़ा भूकम्प हुआ था। लोगों के मन प्रथम दौड़ पड़े वहाँ के लोगों की मदद में। बाद में सरकारी मदद पहुँची। अब स्वराज्य की सरकार है, तो उसका यह कर्तव्य ही है, पर

क्या लोगों का कुछ भी कर्तव्य नहीं है? सभी काम क्या सरकार ही करेगी? फिर हुआ भी यह कि सरकार की जो भी मदद आयी, वह गरीबों तक पहुँची ही नहीं! बीच में ही बड़े-बड़े लोगों ने उसका लाभ उठा लिया!

इससे भी बड़ी एक बात और है। सरकार उस क्षेत्र की मदद करना चाहती थी। पर उसके अधिकारी कम पड़ते थे। उसने जनता से सहायता माँगी। पर उस वक्त सोचा गया कि यहाँ पी. एस. पी. का जमाव है, तो यह मदद अगर उनके जरिये बाँटी जाय तो उस पार्टी का बल बढ़ेगा। इसलिए तय हुआ कि उस पार्टी के जरिये मदद नहीं बँटनी चाहिए, एक ही पार्टी के जरिये मदद बँटनी चाहिए। धिक्कार है ऐसी लोकशाही को! इस वास्ते हम कहते हैं, अभी स्वराज्य की स्थापना करना बाकी है। अपने देश में ही नहीं, दुनिया में ही आज स्वराज्य नहीं है।

ऐसे स्वराज्य का एक नमूना हम केरल में करना चाहते हैं। ऐसी आशा से यहाँ सर्वोदय-मण्डल बनाया है। उसमें सब लोग मदद दें। पर यह पार्टी का खयाल छोड़ दें। 'पार्टी' माने 'अखण्ड' को 'खण्ड' करना। इससे देश की ताकत फूटती है, टूटती है। अतः पार्टी से मुक्ति उतनी ही जरूरी है, जितनी कि जाति से। तो सब लोग पार्टियों से मुक्त होकर सर्वोदय-मण्डल में ताकत लगायें। हमें सम्पत्ति-दान, श्रम-दान, ग्रामदान और ग्रामराज्य करना है। शान्ति-सेना का कार्य भी शुरू करना चाहिए। लेकिन ध्यान रहे कि यह कार्य प्रतिनिधियों से नहीं होगा, आपको स्वयं करना होगा। मुख्य काम आप ही करेंगे। आपकी मदद में एक सेवक भी होगा। इस तरह पाँच हजार लोगों के लिए एक सेवक होगा और उसके पोषण आदि का भार पाँच हजार लोगों को वहन करना है। फिर गाँव में अशान्ति ही नहीं रहेगी। फिर भी अगर एकाध कोई ऐसा शख्स है, जो समाज में अशान्ति निर्माण करता है, तो उस समय हमारी सेवा-सेना ही शान्ति-सेना बन जायगी।

कालीकट (कोझीकोड)
२२-७-'५७

कानून से काम नहीं होता

दुनिया में काम करने के तीन ही रास्ते हैं (१) कत्ल (२) कानून और (३) करुणा। पहला तरीका कत्ल का होता है। कत्ल के जरिये कोई काम करने में किसीका कल्याण हो सकता है? किसीका नहीं। दूसरा तरीका है कानून का। मैं कानून ऐसा चाहता हूँ जिसे सर्वसाधारण माने। कोई काम कानून बनाकर जबरदस्ती से नहीं कराया जा सकता। जो विचार जनता को मान्य नहीं, वह कानून से अमल में नहीं आ सकता। कानून बनाने का अर्थ तो यह होता है कि लोग उसे खुशी से मानें और उससे अमन-चैन कायम हो।

आखिर कानून का बनाना या बिगाड़ना आपके ही हाथ में होता है। मान लीजिये कि सरकार एक कानून बनाती है और आप उसे नहीं मानते तो उस कानून का मतलब ही क्या रहा? सरकार ने एक कानून बनाया कि चौदह साल से कम उम्रवाले बाल-बच्चों की शादी नहीं होनी चाहिए। लेकिन हम तो बीस-बीस बरस की उम्र में बच्चों की शादियाँ चाहते हैं। माने कानून अधिक नहीं बल्कि कम-से-कम बनता है। सरकार को कानून के जरिये लोगों की सेवा करनी है। सरकार जब कानून बनायेगी तो वह उसे अपने देश के हर हिस्से में लागू करेगी। यही तो कानून की खूबी है। लेकिन कोई कानून के जरिये क्रांति नहीं कर सकता। बुद्ध के जमाने में क्या हुआ? अगर वह राज्य में रहकर क्रांति कर सकता तो राज्य क्यों छोड़ता? क्रान्तिकारी काम कानून से नहीं बनता।

बिलासपुर (उत्तर प्रदेश)
१६-१०-'५१

क्या यही सच्ची आजादी है?

आज कौन देश आजाद है? क्या अमेरिका आजाद देश का नाम है? इंग्लैण्ड भारत पाकिस्तान चीन जापान क्या आजाद हैं? जो देश आजाद है, वह अपना नियोजन स्वतन्त्र रूप से करता है। कौन-सा देश अपनी योजना स्वतन्त्र रूप से करता है? इन सब बातों को जानने के लिए अध्ययन करना चाहिए? क्या अमेरिका के पास पैसा की कमी है? फिर भी वह कमी महसूस

करता है। वह कहता है कि रूस की दृष्टि से हमारी सेना कम है। उसे और बढ़ाना पड़ेगा। वह अपनी कांग्रेस के सामने बिल पेश करता है कि सेना के लिए बजट बढ़ाना पड़ेगा। तो क्या अमेरिका अपने देश की योजना अपने ढंग से करता है? उसकी योजना रूस करता है। यह कैसी आजादी है? क्या रूस अपनी योजना स्वतन्त्र बुद्धि से करता है? वह कहता है कि हमारे चारों ओर अमेरिका ने अड्डे बनाये हैं, तो अपने देश के रक्षण के लिए हमें नये-नये शस्त्र बढ़ाने पड़ेंगे। इसलिए रूस में सेना के पीछे कितना खर्च करना चाहिए, यह अमेरिका तय करता है।

वाचपामेरे (मदूर)
२१ ११ ५७

अहिंसा या हिंसा के चुनाव का समय १६

अब जब कि एक राज्य जाकर दूसरा राज्य आया है यह सोचने का समय है कि हमें किस प्रकार अपनी समाज-रचना करनी चाहिए। माने यह सन्ध्या का समय है, ध्यान का समय है। हमारे सामने आज पचासों रास्ते खुले हैं। लेकिन उनमें से कौन-सा रास्ता लें यह हमें तय करना है।

गांधीजी के जमाने में हमने अहिंसा का तरीका आजमाया था लेकिन उसमें हमारी कोई विशेषता नहीं थी क्योंकि तब हम लाचार थे। अगर हम उस रास्ते नहीं जाते तो मार खाते। दूसरा कोई हिंसक रास्ता हमारे लिए खुला नहीं था। इसलिए जो कुछ हमने अख्तियार किया वह मजबूरन की शरण थी अगतिकता की गति थी। अनाथ का आश्रय था। परन्तु गांधीजी का नेतृत्व हमें मिला। हमने सोचा कि यह तरीका हम आजमायें। हिंसा में हम जितने ताकतवर थे उससे ज्यादा ताकतवर हमारे दुश्मन थे। लेकिन अहिंसा में हम उनसे ज्यादा ताकतवर थे। इसलिए हमारे सामने एक ही रास्ता था— या तो आजादी हासिल करने की अभिलाषा छोड़कर चुपचाप गुलामी स्वीकार करें या अहिंसक प्रतिकार के लिए तैयार हो जायें। अब समय हमारे सामने

पसन्दगी का सवाल नहीं था। लेकिन अब बात दूसरी है। अब हम चुनाव कर सकते हैं। अगर हम चाहें तो हिंसा का तरीका चुन सकते हैं चाहें तो अहिंसा का चुन सकते हैं। चाहें तो सेना में आदमी बढ़ा सकते हैं गोलाबारूद और बन्दूकें भी बढ़ा सकते हैं और देश को खाना-पीना भले ही न मिले, पर देशवासियों को इस सेना के लिए त्याग करने को कह सकते हैं और चाहें तो अहिंसा के रास्ते भी जा सकते हैं। चुनाव करने की यह सत्ता आज हमारे हाथ में है। पहले लाचारी थी आज वैसी लाचारी नहीं है।

हिंसा का नतीजा : गुलामी या दुनिया को खतरा

और फिर आज जब कि गांधीजी चले गये हैं, हम लोग मुक्त मन से और खुले दिल से बिना किसी दबाव के निर्णय कर सकते हैं। मानो इसीलिए गांधीजी को भगवान् हमारे बीच से उठा ले गया। अब उनका दबाव हम पर नहीं है अगर हम हिंसा के तरीके को मानते हैं, तो हमें रूस या अमेरिका को गुरु मानना होगा। किसी एक गुरु को मानकर, उसके शागिर्द बनकर स्वतंत्रतापूर्वक उनमें से किसीका गुलाम बनना होगा। सवाल यह है कि क्या स्वतंत्र इच्छा से हम उनके शागिर्द बनना चाहते हैं? क्या उनके 'कैम्प-फालोअर' बनकर उनके पीछे-पीछे जाकर हमारी ताकत बढ़ेगी? उनकी ताकत से ताकत लेने में हमें पचासों वर्ष लग जायेंगे और संभव है, फिर भी हम उनसे ज्यादा ताकतवर न हो सकें। नतीजा यह होगा कि हिन्दुस्तान को फिर से गुलाम होकर रहना पड़ेगा। अगर हम अमेरिका तथा रूस दोनों से भी ताकतवर बन जायें तो दुनिया के लिए एक खतरा साबित होंगे। अब सवाल हमारे सामने यह है कि स्वतंत्रता के नाम पर हम गुलाम बनना चाहते हैं या दुनिया के लिए एक खतरा बनना? हमें गहराई से इस पर सोचना होगा।

हिंसा के मार्ग से भारत के टुकड़े होंगे

आज हिन्दुस्तान स्वतंत्र है फिर भी अनाज या कपड़ा बाहर से मँगाना पड़ता है। विशेषज्ञ लोग बाहर से बुलाने पड़ते हैं। हमें शास्त्र और सेनापति बाहर से ही बुलाने पड़ते हैं। तालीम के लिए भी हमें बाहर के देशों पर निर्भर

रहना पड़ता है। तो क्या आज़ादी के साथ-साथ हम स्वतंत्रतापूर्वक गुलाम बने रहना चाहते हैं? भगवान् ने हिन्दुस्तान का नक्शा ऐसा बनाया है कि या तो उसे अहिंसा के रास्ते से मज़ापूर्वक चलना चाहिए या जो लोग हिंसा में पटित हैं, उनकी गुलामी मंजूर करनी चाहिए क्योंकि हिन्दुस्तान एक पचरंगी दुनिया है एक अप्पराय देश है। इसमें अनेक धर्म अनेक भाषाएँ, अनेक प्रान्त और उनके अनेक रस्मोरिवाज हैं। उसका एक-एक प्रांत यूरोप के बड़े-बड़े देश की बराबरी का है। क्या ऐसी अनेकविध जमातों को हम हिंसक तरीके से एकरस रख सकते हैं? एक-एक मसला नित्य हमारे सामने उपस्थित होता जा रहा है। कुछ लोग स्वतन्त्र प्रान्त चाहते हैं तो क्या स्वतन्त्र प्रदेश-रचना की माँग आज हिंसक तरीके से पूरी हो सकती है?

अगर हिंसात्मक तरीके को हम ठीक मानते हैं, तो हमें मानना होगा कि गांधी का हत्यारा पुण्यवान् था। उसका विचार भले ही गलत हो पर वह प्रामाणिक तो था ही। अगर हम अच्छे विचार के लिए हिंसात्मक तरीके अख्तियार करना ठीक समझते हैं तो आपको मानना होगा कि गांधीजी की हत्या करनेवाले ने भी बड़ा भारी त्याग किया है। अगर हम ऐसा मानें कि प्रामाणिक विचार रखनेवाले अपने विचारों के अमल के लिए हिंसक तरीके अख्तियार कर सकते हैं तो मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि फिर हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे वह मजबूत नहीं रह जायेगा। हिंसा से एक मसला तय होता दिखाई देगा लेकिन दूसरा उठ खड़ा होगा। मसले कम होने के बजाय नये-नये पैदा होते ही रहेंगे। आज भी हरिजनों को मन्दिरों में प्रवेश नहीं मिलता। छुआछूत का वह भेद नहीं मिट पाया तो क्या हरिजन अपने हाथ में शस्त्रास्त्र लें? अगर अच्छे काम के लिए हिंसा जायज़ है, तो हरिजन भाइयों का शस्त्र उठाना भी जायज़ मानना होगा। यह दूसरी बात है कि वे शस्त्र न उठायें।

इसलिए मैं सब बातें ध्यान में रखकर तय करना होगा कि आज जो महत्त्व के मसले हमारे सामने हैं उन्हें हल करने के लिए कौन-से तरीके जायज़ हैं और कौन-से नाजायज़? अगर हम अच्छे उद्देश्य के लिए बुराय साधन इस्तेमाल करते हैं तो हिन्दुस्तान के सामने मसले पैदा होते ही रहेंगे। लेकिन अगर हम अहिंसक तरीके से अपने मसले हल करेंगे तो दुनिया में मसले रहेंगे ही नहीं।

देशों की दीवारें विचारों की निरोधक नहीं

मैं मानता हूँ कि यह भूदान का कार्य धर्म-चक्र-प्रवर्तन का कार्य है। बमौत तो मेरे पास कब की पहुँच चुकी है। आप जिस तरीके से चाहें उस तरीके से यह समस्या हल कर सकते हैं। आपको तय करना है कि भी के डिब्बे को आग लगानी है या वेद-मन्त्रों के साथ यज्ञ में उसकी आहुति देनी है। आप यह मत समझिये कि बाहर से हमारे इस देश में केवल मानसून ही आते हैं, बल्कि क्रान्तिकारी विचार भी आते हैं। जिस तरह हवा बेरोक-टोक आती है, उसी तरह क्रान्तिकारी विचार भी बिना रोक-टोक और बिना किसी तरह के पास-पोर्ट के आते रहते हैं। लोगों ने बड़ी दीवारें नहीं थीं वहाँ बनायीं। चीन की यह बड़ी दीवार देख लीजिये। भगवान् ने जर्मनी और फ्रांस के बीच कोई दीवार नहीं खड़ी की थी लेकिन उन्होंने 'सीगफ्रिड' और 'मेजिनो' लाइनें बनाकर क्षेत्र संकुचित कर दिया। ये दीवारें लोगों को केवल इधर-से-उधर जाने-आने से ही रोक सकती हैं, पर विचारों के आवागमन को नहीं रोक सकतीं। उसी तरह यहाँ भी दुनिया के हरएक देश से विचार आयेंगे और यहाँ से बाहर भी जायेंगे। इसीलिए हमें तय करना चाहिए कि भूमि की समस्या हमें शान्ति से हल करनी है या हिंसा से? मेरे मन में इस बारे में सन्देह नहीं है कि यह समस्या शान्ति से हल हो सकती है। इस सम्बन्ध में इतना स्पष्ट दर्शन मेरे मन में है इसीलिए मैं निःसन्देह होकर बोल रहा हूँ।

मैं यह अभिमान से नहीं नम्रतापूर्वक बोल रहा हूँ। हम लोग सभी ऊँचे उठ सकेंगे। मनु महाराज ने भविष्य किया रखा है "इस देश में जो महान् पुरुष पैदा होंगे उनमें ऐसी शक्ति होगी कि उसके द्वारा सारी दुनिया के लोग अपने जीवन के लिए आदर्श सीखेंगे।

लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

१-५-५२

हम रोज देखते हैं कि पक्षी अपनी जीविका की खोज में आसमान में इधर उधर घूमते-दौड़ते उड़ते हैं और आखिर श्रांत होकर विश्राम के लिए घोंसले में वापस आ जाते हैं। वेद कहता है कि इसी तरह सभी जीव संसार में विविध कर्मों को करते हुए, अनेक प्रयोगों का संपादन करते हुए, कर्म-फल का भी उपभोग करते हुए थक जाते हैं और फिर कुछ शांति के लिए, नये उत्साह की प्राप्ति के लिए और कुछ आत्म-परीक्षण के लिए एक स्थान में आ जाते हैं। यत्र विश्वं भवति एक नीडम्' एक ऐसा स्थान होता है।

महात्मा गांधीजी के प्रयाण के बाद अहिंसा के विचार को माननेवाले उस आकाश में संचार करनेवाले पक्षियों के लिए सर्वोदय-समाज का एक विश्राम स्थान हो गया है। अगर ऐसा स्थान न होता—सालभर में एक दफा हम लोगों के एकत्रित होने की योजना अगर न होती तो यथायोग्य आसमान में हम संचार जरूर करते लेकिन यह सम्भव था कि जाने-अनजाने हमारी शक्तियाँ एक-दूसरे से टकरातीं और अहिंसा का नाम जपते हुए भी हम हिंसा-मार्ग में भी खिंच जाते।

फिर भी हमारी परस्परविरोधी जो भी विचारधाराएँ क्यों न हों वे सब हम यहाँ रख सकते हैं। जिस प्रकार कोई नदी पूर्व दिशा में जाती है तो कोई पश्चिम दिशा में पर परस्परविरुद्ध दिशा में जाती हुई भी आखिर वह समुद्र में एकरूप होती है इसी तरह भिन्न-भिन्न विचारधाराएँ और कभी-कभी परस्पर विरोधी विचारधाराएँ भी जो परस्परविरुद्ध दिशा में बहती हैं, वे सारी चर्चा में लीन हो सकती हैं और होनी चाहिए। इसलिए अभी जो विचार मैं आपके सामने प्रकट करूँगा उनके प्रति मेरी व्यक्तिगत कितनी भी निष्ठा हो, मेरा आग्रह नहीं। चिन्तन के लिए, जीवन के लिए जैसी बातें सूझती हैं या आभास होते हैं, वे हम आपके सामने रखेंगे।

साम्यवादियों का विचार

हममें से बहुत-से लोग मानते हैं कि समाज के विकास में ऐसा एक मुकाम आ जाना चाहिए जब कि दण्ड के आधार पर शासन चलाने की जरूरत न रहे।

उस तरह का शासन सर्वाधार-शासन न रहेगा। इस अन्तिम ध्येय को साम्य-वादी भी मानते हैं। किन्तु उनका विश्वास है कि उस ध्येय की प्राप्ति के लिए इस समय अधिक-से-अधिक मजबूत केन्द्रीय सत्ता होनी चाहिए और उसी आधार पर हम दूसरी सारी अस्थायी सत्ताएँ कम्पित कर सकेंगे। उसके बाद जिस प्रकार काष्ठ को खतम कर ज्वलन्त अग्नि खुद भी खतम हो जाती है, वैसे लोगों की तरफ से प्रकट हुई यह केन्द्रित सत्ता दूसरी वैसी ही सारी सत्ताओं को हिंसा से—अर्थात् अगर जरूरत पड़ी तो—नष्ट करेगी और फिर स्वयमेव नष्ट हो जायगी। उसकी शान्ति के लिए और कुछ करना न पड़ेगा। सिर्फ यही करना पड़ेगा कि उसके खिलाफ जितनी शक्तियाँ हैं, उन सबका खात्मा किया जाय। जब यह कार्य हो जायगा तब उसके लिए अवकाश न रहेगा और वह शक्ति स्वयं शान्त हो जायगी। यह बिलकुल थोड़े में एक विचार मैंने यहाँ रखा। उसपर उन लोगों ने बहुत विस्तार किया है, उसका एक खासा अच्छा शास्त्र ही बनाया है। उसका भी चिन्तन-मनन हमें करना चाहिए।

क्या कांग्रेस अहिंसक रचना में बाधक है?

इसके अलावा कुछ बीच के लोग हैं, जो मानते हैं कि शासन हर हालत में कुछ-न-कुछ रहेगा। शासन यानी दण्डयुक्त शासन। समाज में दण्ड की आवश्यकता कायम है, क्योंकि सत्त्वगुण-रजोगुण-तमोगुण तो चलते हैं। कोई एक अवस्था ऐसी नहीं आती कि जहाँ रजोगुण और तमोगुण का लोप ही हो जाय। इसलिए हर हालत में दण्ड की आवश्यकता रहेगी, भले ही वह कम-बेशी हो—दण्ड का स्वरूप भी कुछ सौम्य बने यह दूसरी बात है। किन्तु दण्ड की आवश्यकता रहेगी यह माननेवाले भी कुछ लोग हैं। इस तरह के भिन्न-भिन्न विचार उस अन्तिम लक्ष्य के विषय में होते हैं। परन्तु सभी लोग यह जानते और समझते हैं कि आज की परिस्थिति में दण्डयुक्त सत्ताएँ हैं और वे अभी रहेंगी। हिंसक समाज-रचना में तो आज और आगे भी दण्ड-शक्ति कायम रहेगी उसका आधार भी उस समाज पर रहेगा पर अहिंसक समाज में आज की हालत में दण्ड-शक्ति रहेगी ऐसा हमें मानना [illegible]। पड़ता है। परिस्थिति देखते हुए दण्ड-श[illegible]

फिर भी अहिंसक समाज का यह स्वरूप रहेगा कि उस समाज में सबसे बड़ी संस्था सेवा की होगी। उसमें दंड और सत्ता का स्थान होगा उसके लिए अवकाश रहेगा पर वह बहुत गौण रहेगा। सबसे बड़ा स्थान सेवा का होगा सबसे बड़ी संस्था सेवा-संस्था होगी। इस दृष्टि से कभी-कभी हम अपने मन में सोचते हैं, तो हमें खयाल है कि इस देश की अहिंसक रचना के लिए क्या सबसे अधिक बाधा देनेवाली वस्तु आज की कांग्रेस न होगी? यह संस्था देश की सबसे बड़ी संस्था है और आज की हालत में वह चुनाव-प्रधान है। माने उसका मुख्य ध्यान चुनाव पर रहता है। चुनाव के जरिये सत्ता सत्ता के जरिये सेवा, यह उसका सिलसिला है।

तो जिस देश की सबसे बड़ी संस्था चुनाव-प्रधान हो उस देश में अहिंसा की प्रगति के लिए एक बाधक प्रश्न खड़ा हुआ ऐसा आभास होता है। चर्चा के लिए, विचार करने के लिए ये बातें मैं पेश कर रहा हूँ। मन में भी कोई अपना फैसला मैंने इस पर नहीं दिया है। आप इस पर सोचिये। इसका उपाय भी वे बतला गये हैं, जो हमारे राष्ट्रपिता थे। वे द्रष्टा थे और उप द्रष्टा भी। दूर और समीप दोनों प्रकार का उन्हें दर्शन था। उन्होंने सोच रखा था कि हमारी सबसे बड़ी जमात कांग्रेस जिसने इस देश के सिर पर का सबसे बड़ा बोझ जो सारे देश को दबा रहा था हटाया वह इतना कार्य समाप्त होने पर 'लोक-सेवक-संघ' बन जाय। हम सोचते हैं कि उसमें कितनी दूरदर्शी बुद्धि थी। अगर वह चीज बनती तो देश की सबसे बड़ी संस्था 'सेवक-संस्था' होती। अब जब कि वह हालत नहीं है तो सोचा जाता है कि सेवा के लिए एक 'भारत-सेवक-समाज' बनाया जाय। भारत-सेवक-समाज सेवा करेगा लेकिन जिस परिस्थिति में सबसे बड़ी ताकत सत्ताभिमुख है चुनाव प्रधान है उस परिस्थिति में भारत-सेवक-समाज को बहुत ज्यादा बल नहीं मिल सकता। वह गौण ही रहेगा। सेवा करनेवाली गौण संस्थाएँ हिंसक समाज में भी होती हैं, क्योंकि चाहे समाज हिंसाश्रित हो चाहे अहिंसाश्रित जहाँ समाज का नाम लिया जाता है वहाँ सेवा की जरूरत उपस्थित होती है। इसलिए उस समाज में भी सेवाएँ चलती हैं सेवा करनेवाली संस्थाएँ होती हैं। लेकिन अहिंसक समाज में सबसे बड़ी संस्था वह होनी चाहिए जो 'सेवाश्रय' हो।

'सेवा-प्रधान' कहने से भी मेरा समाधान नहीं हुआ, इसलिए मैंने 'जो सेवामय हो' ऐसा कहा।

लोक-सेवक-संघ

दूसरी बात लोक-सेवक-संघ की जो कल्पना थी, उसमें सत्ता पर सत्ता चलाने की बात थी। एक सत्ता रहती, जो काल की आवश्यकता के मुताबिक राज्य शासन करती। उसके हाथ में दण्ड होता और उसके हाथ में दण्ड देकर बाकी का सारा समाज दण्ड-रहित बनता। पर चूँकि वह भी दण्ड-सत्ता हाथ में रखनेवाली संस्था होती, इसलिए उस पर भी उससे अलिप्त रहनेवाले समाज की सत्ता रहती। याने सेवा सार्वभौम होती और सत्ता सेविका बनती, सत्ता का नियन्त्रण करने की शक्ति उस समाज में रहती। लोग उसका आशीर्वाद प्राप्त करके ही चुनाव में खड़े होते और समाज-सेवा देखकर सज्जनों का चुनाव करता। इस तरह सारी बात बन जाती। लेकिन कई कारणों से वह चीज नहीं हुई और कांग्रेस प्रधानतः 'इलेक्शनिअरिंग बॉडी' (चुनाव करनेवाली संस्था) रही। परिणाम यह हुआ, जैसा कि मैंने विनोद में कहा था, सारे समाज में भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों का परिवर्तन 'इलेक्शन-पीरियड' 'प्रि-इलेक्शन-पीरियड' और 'पोस्ट-इलेक्शन-पीरियड' में होने लगा। याने कुल कालात्मा इन तीनों कालों में समाप्त हो गया।

अब जिन कारणों से यह किया गया उनकी चर्चा मैं नहीं करना चाहता। नेताओं ने जिस ढंग से सोचा, उसके लिए कोई आधार ही नहीं था, ऐसा भी मैं नहीं कहता। उन्हें लगा कि जो ताकतवाली संस्था बन चुकी है, वह अगर चुनाव के क्षेत्र में नहीं रहती है तो शायद नवीन राज्य के लिए अधिक दुरवस्था होती, क्योंकि भिन्न-भिन्न पक्षों को जोड़कर एक राज्य-समाप्ति के बाद फौरन उस राज्य पर कब्जा करने के लिए दूसरे भी तैयार हो सकते हैं। इतिहास में देखा गया है कि ऐसा कभी-कभी होता है। इसलिए उसके प्रतिकार के लिए योग्य समझ करके उस समय यह किया गया होगा। उसका कुछ समर्थन भी किया जा सकता है। उसकी परीक्षा मैं नहीं करना चाहता। किन्तु यह एक घटना ऐसी है, जिसके कारण हमारे देश में अहिंसा के मार्ग में पचासों उलझनें खड़ी हुई हैं, यह हमें समझ लेना चाहिए।

नयी सेवा-संस्था की जिम्मेवारी

इसीलिए हम पर एक नयी संस्था बनाने की नाहक जिम्मेवारी आती है जो गांधीजी के बाद नहीं आनी चाहिए थी। इस देश में हम एक ऐसी संस्था बनायें जो सेवामय और सबसे बड़ी हो बहुत कठिन समस्या है। एक संस्था जो ५०-६० साल से बन चुकी जिसमें हम सब लोगों ने भक्तिपूर्वक योग दिया जिसने इतिहास में अंकित रहनेवाला एक बड़ा भारी कार्य किया उसे समाप्त समझकर कोई आगे बढ़े यह असंभव है। फिर भी यह जिम्मेवारी नाहक छोटे छोटे सेवकों पर डाली गयी। जिनके शब्दों में उतना जोर नहीं और जिनके दिमागों में शायद बहुत ज्यादा बल नहीं और एक महान् सत्ता को खो करके जो कुछ अस्त-व्यस्त भी हो सकते थे ऐसों पर एक नाहक जिम्मेवारी डाली गयी कि आप स्वतन्त्र रूप से एक संस्था बनाइये। सेवा की छोटी-छोटी संस्था तो हम बना ही सकते हैं। यह कार्य हमारे लायक है। हम छोटे हैं तो सेवा की छोटी छोटी संस्थाएँ हम मजे में बना सकते हैं चाहे कांग्रेस या महा-कांग्रेस उसके विरुद्ध क्यों न खड़ी हो। अंग्रेज सरकार के रहते हुए भी हमने सेवा की छोटी छोटी संस्थाएँ बनायीं तो यह सरकार हर हालत में हमारे लिए पोषक ही है मददगार है। कांग्रेस भी हर हालत में हमारी सेवा का गौरव करेगी। इसलिए छोटी-छोटी सेवा-संस्थाएँ बनाना हमारे लिए कठिन नहीं था। किन्तु हम पर यह जिम्मेवारी डाली गयी कि हम लोग सेवा की संस्था न बनायें वरन् ऐसी संस्था बनायें जो सेवा भी करे और सेवा के जरिये राज्य-तन्त्र पर सत्ता चलाने की शक्ति भी हासिल करे। सचमुच यह बड़ी भारी कठिन जिम्मेवारी हम पर डाली गयी। परमेश्वर सहायता करेगा तो उसे भी छोटे निकम्मे औजारों के जरिये वह सफल बनायेगा। वह उसकी मर्जी की बात है लेकिन काम दुश्वार है।

सच्ची ताकत कहाँ ?

इस हालत में हमारे जो मित्र इधर-उधर भिन्न-भिन्न राजनैतिक संस्थाओं में हैं उन पर यह जिम्मेवारी आती है कि वे हम लोगों को इतना तो थोड़ी मदद दें। वे यह महसूस करें कि जहाँ बैठे हैं वहाँ सेवा किस तरह ऊपर रहे इस बारे में प्रयत्न करें। चाहे वे प्रजा-समाजवादी दल में हों या कांग्रेस में या और भी

किसी राजनैतिक संस्था में हों वहाँ वे इस बात के लिए पूरी कोशिश करें कि चुनाव के जंजाल से भी अलग रहनेवाली संस्था खड़ी हो। एक संस्था के अन्दर अनेक ग्रुप पैदा होते हैं, तो वह राजनीति में बड़ी खतरनाक बात मानी जाती है। किन्तु मैं उन्हें यह नहीं सुझा रहा हूँ कि वे राजनैतिक क्षेत्र में काम करने वाली अपनी-अपनी संस्थाओं के अन्दर दूसरे-तीसरे ग्रुप बनायें। ऐसी कोई सिफारिश मैं नहीं कर रहा हूँ। मैं नहीं चाहता कि इनमें से किसीकी ताकत टूटे, जिसे कि वे ताकत समझते हैं। जब वे ही महसूस करेंगे कि जिसको हम ताकत समझते थे वह ताकत नहीं थी तब तो वे खुद उसका परित्याग करेंगे। उस हालत में उन्हें सच्ची ताकत हासिल होगी। लेकिन जब तक उस ताकत के बारे में उनको मान है तब तक उनकी ताकत किसी प्रकार से टूटे, ऐसी हम इच्छा नहीं करते। हम यही सुझाते हैं कि भिन्न-भिन्न संस्थाओं के हमारे भाई यह कोशिश करें कि जिसे वे अहिंसात्मक रचनात्मक कार्य समझते हैं वे उन संस्थाओं में प्रधान हों और दूसरी बातें गौण हो जायें।

चुनाव को कितना भी महत्त्व क्यों न दिया जाय आखिर वह ऐसी चीज नहीं कि उससे समाज के उत्थान में हम कुछ मदद पहुँचा सकें। वह 'डेमोक्रेसी' में बड़ा किया हुआ एक मन्त्र है। एक 'फॉर्मल डेमोक्रेसी' (औपचारिक लोक-सत्ता) आती है। वह माँग करती है कि राज्य-कार्य में हर मनुष्य का हिस्सा होना चाहिए। इसलिए हरएक की राय पूछनी चाहिए और मतों की गिनती करनी चाहिए। यह तो हर कोई जानता है कि ऐसी कोई समानता परमेश्वर ने पैदा नहीं की है जिसके आधार पर एक मनुष्य के लिए जितना एक वोट है, उतना ही वह दूसरे मनुष्य के लिए भी हो—इस बात का हम समर्थन कर सकें। लेकिन यह स्पष्ट बात है कि पण्डित नेहरू को एक वोट है, तो उनके चपरासी को भी एक वोट है। इसमें क्या अक्ल है, हम नहीं जानते। मुझे यह एकदम मालूम नहीं जो वह मुझे समझायें। परन्तु जब मैं इसका अपने मन में समर्थन करता हूँ तब मुझे बड़ा ही आनन्द होता है। वह समर्थन यह है कि उसमें मेरे वेदान्त का प्रचार होता है। इसमें आत्मा की समानता मानी गयी है। बुद्धि अलग-अलग है, कम-बेशी है। शरीर-शक्ति कम-बेशी है और भी शक्तियाँ हरएक की अलग-अलग होती हैं। फिर भी हम हरएक को एक-एक वोट देते

हैं। इसका इसी विचार से समर्थन होगा कि इसे माननेवाले लोग वेदान्त को मानते हैं। यह बहुत अच्छी बात है। इसी आधार पर हम भी उसका समर्थन करते हैं। हमें बहुत अच्छा लगता है कि एक पत्थर हमें मिल गया बड़ा अच्छा आधार मिल गया जिस पर हम साम्ययोगी समाज की स्थापना कर सकते हैं।

मूल्य-परिवर्तन प्रमुख और चुनाव गौण

किन्तु सोचने की बात है कि जहाँ तक व्यवहार का सवाल है, मतों की गिनती कर हम एक राज्य चलाते हैं तो उसका बहुत ज्यादा महत्त्व नहीं। उसका ऐसा महत्त्व नहीं जिससे समाज-परिवर्तन हो सके। समाज में आज लोग क्या चाहते हैं इसे जान लेने से हमें आगे के परिवर्तन की दिशा सोचने में शायद मदद मिल सकती है। किन्तु उतने से भी समाज के परिवर्तन की प्रक्रिया में कोई मदद पहुँचती हो सो बात नहीं। इसलिए व्यावहारिक क्षेत्र में चुनाव को कितना भी महत्त्व प्राप्त हो तो भी जहाँ तक मूल्य-परिवर्तन का सवाल है—और मूल्य-परिवर्तन के बिना तो समाज आगे नहीं बढ़ेगा—वह गौण वस्तु हो जाती है इतना समझकर हमारे जो लोग वहाँ हैं, वे इतना कार्य करें कि वहाँ बैठकर रचनात्मक काम के लिए बहुत जोर दें और अगर उन्हें यह महसूस हो कि 'नहीं वहाँ एक ऐसा मसला है जो हमारे सारे प्रयत्न को शून्य या विफल बनाता है' तो उनको वहाँ से निकल जाना चाहिए। अगर वे ऐसा करते हैं, तो हमारे जैसे कम शक्ति के लोगों को, जो बड़ा भारी जिम्मा उठाने के लिए मजबूर किये गये हैं, कुछ मदद मिलेगी।

अहिंसा की खतरनाक व्याख्या

दूसरी सोचने की बात यह है कि गांधीजी ने हर बात में अहिंसा का नाम लिया तो हम सब लोगों के सिर पर अहिंसा का वरदहस्त ही है। किन्तु हम लोगों में से कुछ लोग सरकार में गये हैं, कुछ लोग बाहर हैं। इसलिए इन दिनों अक्सर अहिंसा का सरकारी अर्थ यह हुआ है कि समाज को कम-से-कम तकलीफ देना। समाज को पीड़ा पैदा न हो अभी की हमारी जो व्यवस्था है उस व्यवस्था में बहुत बाधा न पड़े इसीका नाम अहिंसा है। आज जब यह कहा जाता है कि "समाज का 'सोशलिस्टिक पैटर्न' (समाजवादी रचना) बनाना है" तो उसके

साथ यह भी कहते हैं कि 'हमारा ढंग अहिंसा का रहेगा।' जब ये दो शब्द मैं एक साथ सुनता हूँ तो मेरे मन में दोनों मिलकर ढीला सत्याग्रह के सिवा [illegible] के कोई अर्थ नहीं निकलता। परंतु कई लोग उसका इतना ही अर्थ समझते हैं कि हमें समाजवादी रचना के लिए जो परिवर्तन करना पड़ेगा, वह बिलकुल आहिस्ता-आहिस्ता करना होगा। हाथ में कोई जख्म या फोड़ा हो तो उसे तकलीफ न हो इस तरह जैसे उस हाथ का उपयोग किया जा सकता है वैसे ही बहुत नाजुक तरीके से—समाज-रचना में तकलीफ न हो बहुत ज्यादा एकदम फर्क न हो ऐसे ढंग से—काम करने को आजकल अक्सर अहिंसा समझा जाता है। मानो वह एक मिलावटी वस्तु होती है। 'न जातहार्देन न विद्विषादरः'—ऐसी स्थिति जिसमें हम बहुत ज्यादा आगे नहीं बढ़ते और आज की हालत भी करीब-करीब बनी-सी रहती है। साथ ही समाधान भी होता है, क्योंकि हमने एक आदर्श सामने रखा और उसका कुछ-न-कुछ जप भी करते हैं, कुछ बोलते भी हैं। इसलिए जो कुछ किया जायगा उसमें उसका थोड़ा स्वाद आ ही जायगा और धीरे-धीरे वह बात बनेगी। मुझे लगता है कि अहिंसा की यह व्याख्या अहिंसा के लिए बड़ी खतरनाक और हिंसा के लिए बहुत उपयोगी है। बुद्ध भगवान् ने यह बात हमें स्पष्ट समझायी। उन्होंने कहा 'मन्दं पुण्यं कुर्वतः पापे हि रमते मनः।' अगर हम पुण्य-आचरण आलसी होकर आहिस्ता-आहिस्ता करते हैं तो पाप तीव्र त्वरित गति से बढ़ता है।

अहिंसा में तीव्र संवेग जरूरी

अगर अहिंसा के माने 'कम-से-कम वेग से समाज को बहुत ज्यादा तकलीफ दिये बगैर आगे बढ़ते जाना' किया जाय तो यह अर्थ अहिंसा के हित में नहीं हिंसा के हित में है। उससे हिंसा बहुत जोरों से बढ़ेगी। जहाँ आप शराब-बंदी को कहेंगे 'धीरे चलो' वहाँ शराबखोरी जोर से बढ़ेगी। दुर्जनता जोरदार होती है। इसलिए कृपा कर अहिंसा के लिए 'धीरे-चलो' वाली बात लागू मत कीजिये। उसे हिंसा के लिए लागू कीजिये। वहाँ 'धीरे चलो' बहुत अच्छा है, पर अहिंसा में तीव्र संवेग होना चाहिए। शास्त्र-वचन है 'तीव्र संवेगानाम् आसन्नः'। अगर आप चाहते हैं कि जल्दी-से-जल्दी नजदीक-से-नजदीक जाना

चाहते हैं, तो उसमें तीव्र संवेग होना चाहिए। अगर अहिंसा का अर्थ इतना मृदु, नरम निर्वीर्य किया जाय तो उससे विरोधी शक्तियाँ हिंसक शक्तियाँ हमारे न चाहते बढ़ेंगी इस बात का भान सारे गांधीजी के अनुयायियों को हो यह हमारी भगवान् से प्रार्थना है।

राजाजी का सुझाव

राजाजी ने दो-तीन बार एक महान् विचार सारी दुनिया के सामने रखा जिसे रखने के लिए वे ही समर्थ हैं, क्योंकि वे तत्त्वज्ञानी हैं और तत्त्वज्ञानी होते हुए भी राज्य-कार्य-कुशल हैं। जिस पुरुष में तत्त्वज्ञान और राज्य-कार्य कुशलता दोनों का संयोग होता है और इसके अलावा जो शस्त्र-शक्ति के भी ज्ञाता हैं—शस्त्र का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए, इस विषय में भी जो प्रवीण हैं—ऐसी त्रिविध शक्तियाँ जहाँ एकत्र होती हैं वही शख्स ऐसा कहने के लिए अधिकारी है। उन्होंने कहा कि 'यूनिलैटरल एक्शन' माने एकपक्षीय' सज्जनता प्रकट होनी चाहिए। सामनेवाले से यह शर्त करके कि तू अगर इतना सज्जन बनेगा तो मैं इतना सज्जन होऊँगा कोई सज्जन बनता है, तो इस तरह सज्जनता नहीं बढ़ सकती। सज्जनता तो स्वयमेव बढ़ती है, अपना ही विचार करके। इसीलिए उन्होंने अमेरिका को यह रास्ता सुझाया।

अब अमेरिका के लिए बड़ी मुश्किल हो गयी। अमेरिका की कुछ जनता विद्वान् है, क्योंकि हिन्दुस्तान में जितना कागज खपता है, उससे १६ गुना कागज प्रति व्यक्ति वहाँ लगता है। तो वहाँ कुछ जनता ही विद्वान् है, वहाँ के विद्वानों ने मिलिटरी-कार्य म प्रयोग एक मनुष्य क हाथ में सारी सत्ता सौंप दी है और कहा है कि चारयोधा के बारे में सब कुछ करने का पूरा अधिकार हमने आपके हाथ में सौंप दिया है। आपको सर्वाधिकारी बना दिया है। अगर जरूरत हो तो आपके हाथ म जो ब्रह्मास्त्र और पाशुपतास्त्र है, उनका भी उपयोग आप कर सकते हैं। इस तरह सारे विद्वानों का जिस पर इतना विश्वास है वह शख्स अगर राजाजी की बात मान तो लोग कहेंगे कि "फिर हम चुनाव म राजाजी को ही क्यों न चुनें ? बेचारे के लिए बड़ी मुसीबत की बात है। वह क्या करे ? उसको 'मैण्डेट' है सारी जनता का कि वह उस बात को

बनाये जिसका उन्हें परिचय है और जिसे देख करके ही उसे चुना गया है। अगर वह अलग वेष में रखकर राजाजी की बात कबूल करे, तो उस प्रजा का कितना विश्वासघात होगा ? वह कहेगी कि "अरे, क्या तुझे यह समझकर चुना था कि तू अपना सारा दिमाग राजाजी को अर्पण कर देगा ? तुझे हमने इसीलिए चुना कि तू पिछले युद्ध में बहादुर साबित हुआ और तूने हमें बचाया। तुझे अपना मददगार समझकर हमने सारी बल-शक्ति तेरे हाथ में सौंपी और तू भलामानुस ऐसे तत्त्वज्ञानी की बातें सुनता है।

सेना हटाने की शक्ति देश में कैसे आये ?

लेकिन हम अपने मन में सोचते हैं कि क्या हम दूसरे देशों को इस तरह की सलाह देने के लायक हैं ? मैंने अभी कहा कि राजाजी में विविध शक्ति एकत्र हुई है, इसलिए इस प्रकार का उद्‌गार प्रकट करने के लिए वे सब प्रकार से अधिकारी हैं। सारी दुनिया को वे बुद्धि दे सकते हैं और दुनिया नहीं मानती तो दुनिया का ही वह दुर्दैव है। लेकिन जिस देश के वे जिन आयेंगे क्या वह भी उन्हें इतना बल देता है ? क्या हमारे देश में हमारी ऐसी भूमिका है कि पाकिस्तान की कुछ भी हालत हो वह हमारा वैरी नहीं है ? क्या हम लोगों को यह लगता है कि पाकिस्तान अपनी सेना बढ़ा रहा है, तो हम उसके बदले में अपनी सेना घटायें ? जब घोर अन्धकार बढ़ रहा है, एक छोटे-से लालटेन से क्या काम न चलेगा। इसलिए क्या यह जरूरी नहीं कि हम अब जरा जोरदार अहिंसा चलायें और अपनी सेना कम करें ?

पाकिस्तान ने अमेरिका से जो मदद माँगी उस पर हमें यह विचार सूझा क्योंकि अब हमारे पड़ोसी इतने भयभीत हो गये हैं, तो उस हालत में सारी दुनिया को और खास करके अपने पड़ोसी को हमें निर्भय बना देना चाहिए। तो चलो हम यह प्रस्ताव करते हैं कि अभी तक तो हम सेना पर साठ करोड़ रुपये खर्च करते थे पर अब अगले साल हम उस पर दस करोड़ ही रुपये खर्च करेंगे और पचास करोड़ रुपये उसमें से कम कर डालेंगे। क्या हम ऐसा करने की शक्ति रखते हैं ? साफ है कि नहीं रखते। आखिर यह शक्ति कब आयगी ? यह आनी भी चाहिए या नहीं ? अगर आनी चाहिए, तो फिर वह शीघ्र आये।

कर रहे हैं, यह सब देखते हैं। हमारे विचार स्पष्ट हैं। वे हमारे नजदीक आयें तो हम खुश होंगे। उनको धीरे-धीरे नजदीक आना ही पड़ेगा। बालू की घड़ी में एक-एक कण नीचे गिरता है। नीचेवाला ऊपर नहीं जाता ऊपरवाला नीचे आता है। यह समुद्र खुला है। सबको कहता है कि आ जाओ। कोशिश क्या करना है? वे सारे नीचे आने ही वाले हैं। क्या समुद्र पानी को खींचने की कोशिश करता है? वह अत्यन्त नम्र है। इसलिए सबको आना ही है। नम्र मनुष्य क्या करता है? सबके नीचे बैठता है। कोई उन्मत्त पानी बिल्कुल पहाड़ के ऊपर होता है, कोई जरा नीचे होता है। समुद्र कहाँ है? वह परम नम्र है, इसलिए सबसे नीचे है। इस वास्ते हम कहते हैं कि कांग्रेस पी एस पी सबको लीन होना है समुद्र में। पंडित नेहरू ने पार्लियामेण्ट में क्या कहा था? हम सोशलिस्ट स्टेट बनाने जा रहे हैं। सोशलिस्ट से 'सर्वोदय' शब्द अच्छा है। अपने देश का यह शब्द है। उसका अर्थ भी अच्छा है और इस भूमि में पैदा हुआ है। लेकिन उस नाम को हम नहीं ले सकते क्योंकि उसका काम हम कर पायेंगे कि नहीं इसकी जरा शंका है। इसलिए सोशलिस्टिक है, ऐसा कहते हैं। हमारा उद्देश्य तो सर्वोदय का नहीं है। यह क्या दिखाता है? सर्वोदय में लीन होने की तैयारी चल रही है। धीरे-धीरे उतर रहे हैं। जरा अच्छा सिनेमा तो ये लोग समुद्र में जल्दी आयेंगे। अच्छा कौन देगा? [illegible] बताते हो तो अच्छा सिनेमा। इसमें देर हुई, तो उनके आने में भी देर होगी।

प्रश्न (२) आपकी अहिंसा धीरे-धीरे जमीन पर चल रही है और हिंसा तो आसमान में है। बड़े-बड़े आचार्यों के प्रयत्न के बावजूद भी अहिंसा की अभिवृद्धि इतनी ही हुई है। इस हालत में क्या अहिंसा के लिए समय आनेवाला है?

मूढ़ हिंसा कब तक चलेगी?

विनोबा : बड़ा ही सुन्दर सवाल है। अहिंसा मानो जमीन पर धीरे-धीरे चलनेवाली चींटी और हिंसा मानो विहंगम पक्षी—एटम-हाइड्रोजन बम। अब सवाल है, क्या गरुड़ या पक्षी चींटी पर गिरेगी? यह कब बनेगा? ऐसा

समय कभी आयेगा ? हम इतना ही कहते हैं कि वह समय आज आया है। यही हमारा उत्तर है। आज यह विहंगम पक्षी नीचे गिर रहा है। फिर चींटियाँ उसका कब्जा करेंगी। रेल पर से एक ट्रेन बहुत वेग से जा रही है। रेल पर एक चींटी है। वह क्या करती है ? जरा थोड़ी नीचे खिसकती है, तो बच जाती है सुरक्षित रहती है। ट्रेन की यह ताकत नहीं कि जरा पटरी के बाहर जाकर चींटी को खतम करे। आज यह हिंसा इतनी बढ़ गयी है कि दुनिया का मसला हल करने की ताकत उसमें नहीं रही है। बड़े-बड़े सम्पन्न समृद्ध सब प्रकार से परिपूर्ण देश आज एक-दूसरे के डर से काँप रहे हैं। एक टेबल पर प्रेम से बातें करने बैठते हैं। परन्तु उधर सेना और शस्त्रास्त्र का पक्का मजबूत प्रबन्ध करते हैं। परिणाम यह होता है कि दुनिया आगे बढ़ ही नहीं रही है। अरबों रुपये सेना और शस्त्रास्त्र में खर्च हो रहे हैं। दुनिया में चारों तरफ भय छाया हुआ है। इसलिए एक भी मसला हल नहीं हो रहा है। आखिर अहिंसा की शरण में आना ही पड़ेगा। हम कहते हैं कि जितनी हिंसा बढ़ेगी उतना अच्छा है। उत्तरायण बढ़ जाता है तो दक्षिणायन आनेवाला ही है।

पुराने जमाने में क्या होता था ? कोई वाद पैदा हुआ कि कुश्ती होती थी। जो जीतेगा उसकी जय। जैसे जरासंध और भीम की कुश्ती। आज अगर वैसा होता तो हम कितने सुखी होते। मान लो, स्टालिन और हिटलर की कुश्ती हुई होती तो करोड़ों लोगों को मरना न पड़ता। आज क्या होता है ? एक हारता है और दूसरा जीतता है। हारनेवाला अपनी सेना और बढ़ाता है। वह जीतता है तो दूसरा हारता है। तो वह अपनी सेना बढ़ाता है। एक ने बन्दूक ली तो दूसरा तोप बनाता है। एक ने तोप ली तो दूसरा बम बनाता है। इस तरह बढ़ते-बढ़ते इस हद तक आगे बढ़ेगा कि मनुष्य प्राणी ही खतम हो जायगा। इसलिए आज सब विश्व-शान्ति चाहते हैं।

इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी सब आज भूखी नहीं हैं। लन्दन, बर्लिन में उनके बड़े पुस्तकालय हैं। उनमें दुनिया की किताबें इकट्ठा की गयी हैं। अपने देश में जो पुराना ग्रन्थ नहीं मिलेगा वह वहाँ मिलेगा। परन्तु मौका आने पर एक-दूसरे के पुस्तकालय पर बम डालने के लिए तैयार हो जाते हैं। ऐसी मूढ़ हिंसा कब तक चलेगी ? वह हिंसा इतना जोर कर रही है, परन्तु वह मरनेवाली

है। दीपक जब बुझने की तैयारी में होता है, तो एकदम बड़ा होकर बुझता है। उसी तरह हिंसा कमजोर हो रही है। वह अब बुझना चाहती है। मानव को शान्ति की प्यास और शान्ति की भूख लगी है। समाज के मसले शान्ति प्रेम करुणा से हल हों ऐसी अत्यन्त भावना है।

लोकतन्त्र और सत्याग्रह १६

इस देश में 'सत्याग्रह' शब्द का बहुतों को डर लगता है। यह हमारे लिए चिन्ता का विषय है, क्योंकि हमने यह नया मन्त्र सीखा और हम इसे दुनिया के लिए तारक मन्त्र मानते हैं। हम यह भी कहते हैं कि मानव-जाति के इतिहास भर में अभी तक जो अनुभव आया उसके परिणामस्वरूप सामूहिक सत्याग्रह का यह एक मन्त्र मिला। अब इससे अहिंसा बलवती होगी। लेकिन इन दिनों तो सत्याग्रह शब्द से डर लगने लगा है। लोग यहाँ तक कहते हैं कि 'डेमोक्रेसी' में सत्याग्रह के लिए स्थान नहीं लोकसत्ता में सत्याग्रह के लिए स्थान नहीं है। पर वास्तव में सत्याग्रह के लिए तो उस सत्ता में स्थान न होगा जिसमें हर निर्णय 'युनानिमस' या एक राय से ही हो। सबकी सम्मति से निर्णय हो ऐसी जहाँ समाज-रचना होगी वहाँ स्वतन्त्र सामूहिक सत्याग्रह की जरूरत न होगी। उस समाज में पुत्र के खिलाफ माँ का सत्याग्रह और माँ के खिलाफ पुत्र का सत्याग्रह हो सकता है। एक पड़ोसी के खिलाफ दूसरे पड़ोसी का सत्याग्रह होगा। यहाँ 'खिलाफ' का अर्थ हिंसा के अर्थ में 'खिलाफ' नहीं वरन् वह उसका मददगार होगा। उसके शोधन के लिए प्रेमपूर्वक और त्याग से जो किया जायगा उसी अर्थ को प्रकट करने के लिए अब भी 'खिलाफ' शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। सारांश पड़ोसी पर विशेष प्रकार से प्यार प्रकट करने के लिए व्यक्तिगत सत्याग्रह पड़ोसी के साथ होगा। किन्तु जहाँ समूह का हर फैसला सबकी सम्मति से होगा उस समाज में सामूहिक सत्याग्रह के लिए गुंजाइश नहीं रहेगी यह बात समझ में आती है। इसीलिए हम बार बार कहते हैं कि यह 'डेमोक्रेसी' कुछ दोषमय है। इसमें अहिंसा का माद्दा कुछ

ही हद तक जाता है, ज्यादा नहीं। इसलिए अपने सारे फैसले सर्वसम्मति से करने की तैयारी करनी चाहिए।

पर इस विषय में हमारे साथी भी हमसे कहते हैं कि भाई, यह कैसी अव्यावहारिक बात बताते हो? इससे व्यवहार कैसे चलेगा? इस तरह यह वस्तु कुछ नयी-सी है इस वास्ते इसमें काफी सोचना पड़ेगा। अपना जीवन और दिमाग ऐसा बनाना पड़ेगा जिससे सर्वसम्मति से काम होते हुए भी वह कारगर हो। समाज इसी तरह सोचने लगे। कार्य-हानि न होते हुए सबके साथ कैसे काम किया जाय यह समाज सीखे यह सारा करना पड़ेगा। उसमें कुछ मुसीबतें जरूर हैं। लेकिन चूँकि इसमें मुसीबतें हैं, इसलिए अगर उस पर न सोचेंगे तो हम समझते हैं, यह नया विचार, नया मत कि 'डेमोक्रेसी में सत्याग्रह के लिए स्थान नहीं' अहिंसा के लिए खतरे का है। इस बारे में हमें निर्णय करना चाहिए।

गांधीजी के जमाने का सत्याग्रह

सत्याग्रह के लिए मन पैदा होने का एक कारण यह भी है, जो मैं अभी कहूँगा और वह भी अहिंसा के लिए एक खतरा है। सत्याग्रह की एक अभावात्मक (निगेटिव) व्याख्या मनुष्यों के मन में स्थिर हो गयी है। सत्याग्रह यानी अड़ंगा लगाने का एक प्रकार, दबाव लाने का एक प्रकार, जो बहुत ज्यादा बेजा न कहा जाय। इसका अभी लोगों के मन में इतना ही अर्थ है और इसी कारण कुछ लोगों को इसका आकर्षण भी बहुत ज्यादा है। जैसे 'सत्याग्रह' शब्द का एक डर हम देखते हैं वैसे ही एक आकर्षण भी। लोग हमसे कहते हैं कि बाबा कब तक जमीन माँगता फिरेगा? आखिर कभी वैष्णवास्त्र भी निकालेगा या नहीं? मान लिया कि ब्रह्मास्त्र पाशुपतास्त्र आदि हिंसा के हैं। लेकिन वैष्णव का अस्त्र जो विष्णु का है वह तो अहिंसा का रामबाण है। तो, बाबा वह भी निकालेंगे या नहीं? लोग ऐसा हमसे बार-बार पूछते हैं। तब उन्हें समझाना पड़ता है कि यह जो चल रहा है इसमें सत्याग्रह का ही एक रूप प्रकट होता है। हमारे लिए यह सोचने की एक बात है जिससे हमें आगे सर्वोदय-कार्य की तरफ जाने के लिए बहुत सुभीता होगा। इसलिए इस पर हम जरा सोचते हैं कि गांधीजी के जमाने में किये गये सत्याग्रह को अगर सत्याग्रह का आदर्श समझकर चलें तो हम

गलती करेंगे। उनका एक जमाना था, उनकी एक परिस्थिति थी। उस परिस्थिति में कार्य ही 'निगेटिव' (निषेधात्मक) करना था। फिर भी उस कार्य के साथ-साथ उन्होंने काफी रचनात्मक और विधायक प्रवृत्तियाँ जोड़ दीं। यह उनकी प्रतिभा थी जो उनसे कहती थी कि एक निषेधक (अभावात्मक) कार्य करते हुए भी अगर हम विधायक वृत्ति न रखें तो जहाँ यह अभावात्मक (निगेटिव) कार्य सम्पन्न होगा वहाँ और कई खतरे पैदा होंगे।

लोग उनसे बार-बार पूछते कि चरखा क्यों चलायें यह हमें जरा समझा तो दीजिये। अंग्रेजों को यहाँ से भगाना है, तो उनके साथ चरखे का सम्बन्ध कहाँ से आने लगा समझ में नहीं आता। फिर भी लोग यह समझकर कि गांधी जी के नेतृत्व के साथ स्वराज्य का सम्बन्ध है और इस वास्ते इसे कबूल करो, उसे कबूल करते थे। उन्हें जवाब मिलता था "जनता में जाग्रति हुए बगैर, जनता में स्वराज्य की भावना पैदा हुए बगैर काम कैसे चलेगा? अंग्रेजों पर इसका परिणाम कैसे होगा? क्या ऐसे ही केवल हमारे शब्दों से? इस वास्ते हमें रचनात्मक कार्य से अपने विचार फैलाकर जन-सम्पर्क बढ़ाना चाहिए। इसके कारण जन-सम्पर्क के लिए हमें एक अच्छा-सा मौका मिलता है। उन्हें थोड़ी राहत मदद भी मिलती है। हमारी उनके साथ सहानुभूति है, इसका दर्शन उन्हें मिलता है और उनकी भी सहानुभूति हमें मिलती है। इस तरह हमारे राजनैतिक कार्य के पीछे एक नैतिक बल खड़ा होता है। इस तरह उन्हें लोगों को समझाना पड़ता था।

विधायक सत्याग्रह

किन्तु वह जमाना ऐसा था कि उसमें लोगों को अभावात्मक कार्य करना था। इसलिए जो सत्याग्रह उस जमाने में हुए, वे सत्याग्रह के अन्तिम आदर्श थे ऐसा हमें नहीं समझना चाहिए। हमें यह समझना होगा कि जहाँ लोक-सत्ता आ गयी वहाँ अगर हम सत्याग्रह का अस्तित्व मानते हैं, तो उसका स्वरूप भी कुछ भिन्न होगा। यह नहीं कि 'डेमोक्रेसी' या लोक-सत्ता में सत्याग्रह के लिए अवकाश ही नहीं! ऐसा मानना तो बिल्कुल ही गलत विचार है। पर यह भी विचार गलत है कि उस जमाने में जो निगेटिव (अभावात्मक) प्रकार के सत्या-

ग्रह किये गये उनके लिए डेमोक्रेसी में बहुत ज्यादा 'स्कोप' (गुंजाइश) है और उसका परिणाम लोकसत्ता में बहुत ज्यादा प्रभावशाली होगा। लोक सत्ता में जिस सत्याग्रहका प्रभाव पड़ेगा वह अधिक प्रभावशाली होना चाहिए, अर्थात् अधिक विधायक होना चाहिए। इस दृष्टि से भी हमें अपने आन्दोलन की तरफ देखना चाहिए कि भूदान-यज्ञ का कार्य हम जिस तरीके से कर रहे हैं, वह अहिंसा का ही एक तरीका है। परन्तु अहिंसा में यही एक तरीका है, सो बात नहीं। दूसरे भी तरीके हैं। इससे भी बलवान् दूसरे तरीके हमें मिल सकते हैं और उनका हम इस्तेमाल कर सकते हैं। अगर इस तरीके का हमने पूरा उपयोग कर लिया और इसका नतीजा पूरा देख लिया हो तो हमें सोचने का मौका मिलेगा।

'सत्याग्रह' शब्द के उच्चारण से ही सबको आकर्षण होना चाहिए। पर होता है विकर्षण। मान लीजिये कि किसीका उपवास शुरू हुआ। तो मेरे मन में भी सहानुभूति का उदय होने के बदले प्रथम क्षण कुछ ऐसा भास होता है कि इस व्यक्ति ने कुछ गलत काम किया। ऐसा नहीं समझना चाहिए, परन्तु ऐसा होता है। फिर अधिक परिश्रम के बाद अगर वह उपवास योग्य मालूम हुआ तो हम वैसा कहते भी हैं, लेकिन प्रथम क्षण मेरे मन पर एेसी प्रतिक्रिया होती है कि इसने यह क्या किया? जब मेरे मन पर भी ऐसी प्रतिक्रिया होती है तो दूसरे लोगों के मन पर, जो कि समाज की व्यवस्था को जरा भी धक्का न लगे ऐसा चाहते हैं होती ही। जो एडमिनिस्ट्रेटर्स (कारोबारी) होते हैं, वे 'लॉ एण्ड ऑर्डर' को प्रथम चीज मानते हैं। बाकी सब गुण उनके बाद आते हैं। प्राथमिक गुण है 'लॉ एण्ड ऑर्डर'। 'लॉ एण्ड ऑर्डर' के बिना उनका काम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए जिन पर 'एडमिनिस्ट्रेशन' की जिम्मेवारी है उनके चित्त पर स्वाभाविक ही उस उपवास की एकदम विपरीत प्रतिक्रिया होती हो, तो आश्चर्य नहीं।

सत्याग्रह का अर्थ

सत्याग्रह में एक शक्ति है ऐसा हम मानते हैं। वह कौन-सी शक्ति है? उसका स्वरूप क्या है? उस शक्ति का स्वरूप यह है कि वह सामनेवाले के वैर का निरसन (निवारण) करती है। जैसे सूर्य के आने से अन्धकार मिट

जाता है जैसे सत्याग्रह में यह शक्ति है कि जो सामनेवाला मनुष्य सोचने के लिए भी राजी नहीं था या विपरीत ही सोचता था वह सत्याग्रह के दर्शन से सोचने लगा और उसका सोचना बिल्कुल निर्मल हुआ। उसकी बुद्धि के पर्दे खुल गये मोह के आवरण दूर हो गये और उसके मन में अनुकम्पा पैदा हो गयी। जहाँ यह होता है, वहाँ सत्याग्रह है। जहाँ यह नहीं होता और किसी-न-किसी प्रकार का दबाव आता है, वहाँ सत्याग्रह-शक्ति क्षीण हो जाती है। अभी आपने मेरे मुँह से ही सुना कि ग्रामदान में थोड़ा-सा 'कोअर्शन' का अंश आ जाय तो भी डिफेन्स मेजर के तौर पर मैं उसे मान्य करने को राजी हो जाऊँगा। लेकिन जहाँ सत्याग्रह का सवाल आता है, जहाँ लोगों के पास जाकर ग्रामदान की बात समझानी होती है, जो सत्याग्रह का ही अंश है, वहाँ रत्तीभर भी 'कोअर्शन' हम सहन नहीं कर सकते। बल्कि उसमें जितना दबाव का अंश रहेगा उतना उसका बल क्षीण होगा। मैं आपको एक मिसाल दे रहा हूँ जो बहुत बड़ी है और जिसके बारे में बापू के साथ मेरी कई बार चर्चा भी हुई है। बापू ने कम्यूनल अवार्ड के लिए उपवास किये थे। उस समय अम्बेडकर के साथ कुछ चर्चा चल रही थी। सब चाहते थे कि उपवास जल्दी समाप्त हो। रवीन्द्रनाथ ठाकुर उस समय वहाँ आ पहुँचे। बापू के उपवास का ऐसा दबाव रवीन्द्रनाथ पर पड़ा और उन्होंने उस 'पूना पैक्ट' को मन से पसंद न करते हुए भी मान्यता दी—ऐसा बाद में जो घटना हुई, उस पर से कहना पड़ता है क्योंकि उसके बाद वे दुःखी हुए और उन्हें लगा कि इससे बंगाल का नुकसान हुआ। उस घटना की तफसील में मैं नहीं जाना चाहता और वास्तव में नुकसान हुआ या नहीं इसकी भी चर्चा नहीं करना चाहता। परन्तु उस उपवास का परिणाम दबाव के रूप में रवीन्द्र ठाकुर जैसे महान् व्यक्ति के चित्त पर भी हुआ। अतः समझना चाहिए कि उस सत्याग्रह में न्यूनता रह गयी। आप कहेंगे कि "यह शख्स बता रहा है कि बापू के सत्याग्रह में जब न्यूनता रह गयी और इनसे आशा करता है परिपूर्णता की—यह तो अजीब बात है। याने इधर अपूर्णता की मिसाल देते हुए इसने गांधीजी की अपूर्णता बतायी और उधर हम जैसे सामान्य मानवों से अपेक्षा रखता है कि तुम्हारे सब सत्याग्रहों में अपूर्णता नहीं आनी चाहिए।" हमारे कुछ मित्र हमसे कहते हैं कि "क्या कहते हो? बापू के सत्याग्रह में भी न्यूनता का कुछ अंश रह

गया? फिर भी हमसे पूर्णता की अपेक्षा कैसे रखते हो? ऐसा पूर्ण सत्याग्रह तो हो ही नहीं सकेगा। यह तुम्हारी चर्चा हमारे लिए बिलकुल बेकार है। आपकी ऐसी अपेक्षा कभी सफल नहीं हो सकती। आप हमारे सत्याग्रह को चाहे 'निगेटिव' (नकारात्मक) कहिये चाहे 'पैसिव रेजिस्टेन्स' चाहे एक प्रकार का दबाव कहिये चाहे अपूर्ण कहिये परन्तु हमारी जो योग्यता है, उसे देखते हुए हमारा सत्याग्रह उचित ही है—ऐसा आपके शब्दों से हम समझ लेते हैं। आप जो कहते हैं उससे हमारा पूरा बचाव हो जाता है। लेकिन अब जमाना बदल गया है। जब घनघोर निशा टूटने का आरम्भ होता है, तो सूर्य भी सौम्य होता है यानी उसका रूप भी प्रखर नहीं होता उसका तेज कम होता है, वह चन्द्रवत् फीका दीखता है। यहाँ पर 'सौम्य' शब्द का मैं दूसरे अर्थ में प्रयोग कर रहा हूँ। लेकिन जमाना जरा बदल जाय तो वही सूर्य प्रखर रूप में दिखाई देता है।

गांधीजी का जमाना

गांधीजी के जमाने में सत्याग्रहरूपी सूर्य का उदय हुआ था। वह बिलकुल फीका-सा था। अब जमाना बदल गया है, लोकसत्ता आयी है। अब स्वाभाविक ही सवाल पैदा होता है कि क्या लोकसत्ता में सत्याग्रह के लिए गुंजाइश है? यह टालने जैसा सवाल नहीं है।

सोचने की बात है कि यहाँ आपको पूरी आजादी है कि घर-घर जाकर जो भी विचार समझाना है, समझायें उस हालत में क्या सत्याग्रह के लिए गुंजाइश है? कुछ लोग मानते हैं कि गुंजाइश नहीं है, कुछ मानते हैं कि कम है। इस तरह माननेवालों का एक बड़ा समूह मौजूद है। पहले वे ऐसा नहीं मान सकते थे लेकिन अब मान सकते हैं क्योंकि परिस्थिति बदली है देश आजाद हुआ है, लोकसत्ता आयी है प्रचार के साधन खुल गए हैं। इस हालत में कोई किसी प्रकार का निर्दोष सत्याग्रह करे, तो हम उसका यह कहकर बचाव नहीं करेंगे कि हम छोटे लोग हैं और गांधीजी के भी सत्याग्रह में न्यूनता थी तो हम जैसे छोटे लोगों के सत्याग्रह में तो वह रहेगी ही।

जमाने की कीमिया

हम तो कहना चाहते हैं कि हमारे जमाने का छोटा सत्याग्रही भी गांधीजी से बड़ा है। यानी जमाने ने उसको बड़ा बना दिया है, ऊँचा खड़ा कर दिया है।

आज आजादी मत-प्रचार की सुव्यवस्थित आदि की पृष्ठभूमि बनी है, वह गांधीजी के जमाने में बिलकुल ही नहीं थी। इसलिए यद्यपि गांधीजी सर्वोत्तम सत्याग्रही थे तो भी उनके सत्याग्रह को ऐसी उपाधि का ग्रहण क्या प्राप्त हुआ कि उसके कारण अत्यन्त प्रखर तेज भी फीका दीखने लगा। इसलिए हम छोटे हैं, यह कहकर अपना बचाव नहीं कर सकते। आप छोटे हैं, परन्तु आपकी विरासत बहुत बड़ी है। इस दृष्टि से आपकी जिम्मेवारी भी बढ़ जाती है।

सत्याग्रह के संशोधन की दृष्टि से सोचते हुए हम यह नहीं कह सकते कि हमारी उपाधि हमारी दुर्बलता के परिमाण में हमारा सत्याग्रह ठीक है। आप यदि अपने को दुर्बल महसूस करते हैं, तो सत्याग्रह का आपको अधिकार नहीं है, ऐसा समझ लीजिये और शान्त हो जाइये। अगर सत्याग्रह का अधिकार चाहते हैं, तो आज की परिस्थिति में जो 'सत्याग्रह' पर जिम्मेवारी आती है—सत्याग्रही पर तो आती ही है, लेकिन स्वयं सत्याग्रह पर जो जिम्मेवारी आती है कि वह अपने नाम के उच्चारण से लोगों में भय न निर्माण करे—उसे संभालना होगा। अगर मैं कहूँ कि 'कल से मैं सत्याग्रह करूँगा' तो इतना कहने मात्र से ही लोगों के मन में मेरे लिए जो सहानुभूति थी वह हजारगुनी बढ़नी चाहिए और जो विरोध था वह कम होना चाहिए। ऐसा नतीजा 'सत्याग्रह' शब्द के श्रवणमात्र से होना चाहिए फिर आगे उसकी कृति से और भी परिणाम आयेंगे ही। 'सत्याग्रह' शब्द के श्रवणमात्र से ऐसा लगना चाहिए कि यह बड़ा ही सुन्दर काम हो रहा है। जैसे किसीने किसीसे प्रेम किया या करुणा दिखायी तो करुणा प्रेम और दया का कार्य हुआ ऐसा हम सुनते हैं। सुनने के प्रथम क्षण ही श्रवणों में अमृत का स्पर्श हुआ ऐसा मालूम होता है। वह दया का कार्य करुणा का कार्य वात्सल्य का कार्य हुआ ऐसा आनन्द चित्त को पहले होता है। फिर उसकी योग्यता कितनी थी आदि बातों का मूल्यांकन तो पीछे होता है। लेकिन सुनते ही श्रवण को अमृत रसास्वादन होना चाहिए। जैसे 'खून हुआ' यह सुनकर किसीके भी कानों को अच्छा नहीं लगता सुनते ही अरुचि पैदा होती है फिर बाद में उस पर सोचा जाता हो कि उसका बचाव हो सकता है या नहीं उसके पीछे क्या हेतु होगा आदि। कुछ लोग बचाव करते हैं, कुछ नहीं करते इस तरह कमजोर बाद में आता है। परन्तु प्रथम श्रवण में अरुचि सहज

है कि गलत बात हुई, वैसे ही जब प्रेम-कार्य होता है, तो प्रथम श्रवण में सबको लगता है कि उत्तम कार्य हुआ। इसी तरह 'सत्याग्रह' शब्द के प्रथम श्रवण से सारी दुनिया के मन पर अच्छा असर होना चाहिए। यह शक्ति जिस सत्याग्रह में है, उसीको सत्याग्रह कहा जाता है। वही सत्याग्रह डेमोक्रेसी में चलेगा। सत्याग्रह का जो पुराना रूप था उसके लिए डेमोक्रेसी में गुंजाइश नहीं है। परिस्थिति के कारण इतना फर्क हुआ है।

गांधीजी ने राजनीति चलायी ऐसा जो लोग समझते हैं, उन्होंने गांधीजी को समझा ही नहीं है। गांधीजी ने जितना और जो कुछ किया वह कुल-की-कुल सौ फी सदी लोकनीति थी ऐसा हम मानते हैं। कइयों को भास होता है कि गांधीजी की पकड़ राजनीति पर थी। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी है कि उनकी पकड़ लोकनीति पर थी। उनके मरणपर्यन्त, कुल-के-कुल काम (राउण्ड टेबुल कान्फरेन्स में जाकर हिस्सा लेने के काम से लेकर सत्याग्रह चलाने तक के और राजनैतिक क्षेत्र में उन्होंने जो काम किये वे सब काम) लोकनीति की स्थापना के लिए और लोकनीति को समझकर ही किये गये थे। इधर स्वराज्य मिल गया और उधर उनकी नोआखाली में यात्रा चली। एक ही दिन हमने ये दो दृश्य देखे। स्वराज्य तो मिला ही था। उसे न लेने की बात तो थी नहीं। सत्ता की आसक्ति से गलतियाँ होंगी पर 'पॉवर करप्ट्स' कहकर उसे न लेने की बात तो नहीं थी। उसे लेना ही था।

परन्तु बापू स्वयं नोआखाली में थे। उन्होंने अपना स्थान चुन लिया था। इसमें रहस्य है। उनके कुल जीवन का यह परिपाक है। उनका जीवन स्वाभाविक उसी तरफ जा रहा था दिल्ली की तरफ नहीं जा रहा था। दिल्ली में जो चीज बनी वह उनके कारखाने का एक 'बाय प्राडक्ट' (एक दोयम चीज) था। उनके कार्य का जो मुख्य स्वरूप था उसका दिग्दर्शन नोआखाली में हुआ। यथाक्रम वे वहाँ पहुँच गये। उस गुलामी के जमाने में दुःखी जनता को गुलामी से छुड़ाने के लिए उन्होंने जो काम किया उससे आभास होता था कि वह सत्ता-प्राप्ति का कार्य था। परन्तु वह कार्य सत्ता-प्राप्ति का नहीं था सत्य शोधन का था लोकनीति की स्थापना का था। ऐसा अगर न होता तो वे कांग्रेस को लोक-सेवक-संघ बनाने की सलाह न देते।

थोड़ी-सी राजनीति जाननेवाला एक सामान्य मनुष्य भी जानता है कि यह अजीब सलाह थी। कोई भी समझ सकता था कि लोक-सेवक-संघ बनने से सारी शक्तियाँ तितर-बितर होंगी। क्या बनेगा कुछ कह नहीं सकते थे। प्रतिगामी शक्तियाँ जोर कर सकती हैं किसी पर किसका कब्जा रहेगा पता नहीं। इसलिए एक साधारण मनुष्य भी जो चीज समझ सकता था उसको भी समझ क्या गांधीजी में नहीं थी?

समझने की बात है कि उनका सोचने का ढंग जीवन का ढंग बिलकुल दूसरा ही था और वह था लोकनीति का।

कालड़ी (केरल) —लोकसेवक शिविर, सर्वोदयनगर, कालड़ी,
१९-५-'५७ के भाषण का अंतिम अंश

'सत्याग्रह' का स्वरूप

'बोरसद' और 'बारडोली' ये दो नाम भारत के सभी शिक्षित लोग जानते हैं। दोनों स्थानों पर सत्याग्रह हुए और दोनों का संबंध सरदार वल्लभभाई पटेल के साथ है। हिन्दुस्तान में सत्याग्रह-शक्ति का जो विकास हुआ था उसमें इन दो सत्याग्रहों का विशेष स्थान है।

आज की तीन विचारणीय घटनाएँ

स्वराज्य के बाद सत्याग्रह का स्वरूप क्या होगा यह एक स्वतंत्र विचार का विषय है। वैसे ही लोकशाही में सत्याग्रह का स्वरूप क्या होगा यह भी एक विषय है। स्वराज्य और लोकशाही में भेद है। इसी तरह विज्ञान-युग में सत्याग्रह का स्वरूप क्या होना चाहिए और हो सकता है यह तीसरा विषय है। यों तो विज्ञान प्राचीन काल से चला आ रहा है। किसी अमुक युग को विज्ञान-युग नहीं कहा जा सकता। फिर भी पिछले दो-सौ वर्षों में विज्ञान में काफी प्रगति हुई। इसलिए इस युग को विज्ञान-युग कहा जायगा। उसमें भी इन दस वर्षों में विज्ञान की अत्यधिक प्रगति हुई। इसलिए इसे अभिनव विज्ञान-युग कह सकते हैं। अब इस अभिनव विज्ञान-युग में सत्याग्रह का स्वरूप क्या होगा यह भी विचारणीय विषय है। बारडोली बोरसद ने

या दूसरे भी जो पुराने सत्याग्रह हुए, वे स्वराज्य के पहले के सत्याग्रह थे। वे एसे समय हुए, जब कि देश में लोकशाही नहीं थी और न अभिनव विज्ञान युग ही शुरू हुआ था। आज स्वराज्य प्राप्ति लोकशाही की स्थापना और अभिनव विज्ञान-युग का आरम्भ ये तीन नयी घटनाएँ घटी हैं जिन पर हमें सोचना होगा।

अभिनव विज्ञान-युग का सन्देश : 'पुराना मन छोड़ो'

इन घटनाओं में आखिरी घटना—अभिनव विज्ञान-युग का आरंभ—ऐसी है, जो सारी दुनिया के समाजों और मानसों के स्वरूपों में ही फर्क कर देगी। इस आधुनिक युग में मनुष्य का मन बदल जाने पर ही वह टिकेगा अन्यथा सारी मानव-जाति नष्ट होगी। ऐसी समस्या इस अभिनव विज्ञान युग ने खड़ी कर दी है। अभिनव विज्ञान-युग मानव से कहता है कि तुम अपने मन को जो कि अब जीर्ण-शीर्ण हो गया है फेंक दो और नये मन को ही स्वीकार कर नयी दृष्टि से सोचो। पुराना मन और पुरानी दृष्टि कायम रखोगे तो समूल विनाश का रास्ता पकड़ोगे। इसलिए अब बहुत सूक्ष्म विचार करने की जरूरत है। जैसे-जैसे मैं इस विज्ञान-युग के बारे में सोचता हूँ मुझे आश्चर्य ही मालूम होता है।

आत्मज्ञान और विज्ञान के एकमत्य पर ध्यान दें

यों आत्मज्ञान इस देश और दूसरे देशों में भी प्राचीन काल से ही विकसित है किन्तु इस देश में विशेष रूप से विकसित हुआ है। आत्मज्ञान और नया विज्ञान दोनों का उपर्युक्त विषय में एक ही मत है। दोनों कहते हैं कि 'मैं मेरा तू तेरा' यह जो भव हमने बनाया है, वह अब टिक नहीं सकता। यदि वह टिकेगा तो हम ही नहीं टिक सकते। आत्मज्ञान ममता और अहंता पर जितना तीव्र प्रहार करता था उससे अधिक तीव्र प्रहार अब विज्ञान कर रहा है। इसलिए अब समाज का जीवन बदलेगा और बदलना ही पड़ेगा। अभी हम इस दृष्टि से नहीं सोचते कि आत्मज्ञान और विज्ञान दोनों जिस विचार पर सहमत हैं उसे ठीक से समझकर उसके अनुसार अपना जीवन बदलना चाहिए। इसीलिए आज सारे सामाजिक और राजनैतिक आंदोलन और

दुनिया में पुरानी दृष्टि से चल रही है और इसीलिए एक समाज के साथ दूसरे समाज का तथा एक राष्ट्र के साथ दूसरे राष्ट्र का संघर्ष हो रहा है।

भारत अर्थात् एक छोटा-सा जगत्

भारत का यह विशेष सौभाग्य है कि वह विविध पंथों का देश है, जिसमें अनेक जातियाँ एवं रीति-रिवाज और अनेक उपासनाएँ हैं। हमें उसके योग्य बनना है। सारी दुनिया के मसले कैसे और किस पद्धति से हल किये जा सकते हैं, इसका प्रयोग भारत कर सकता है। कारण भारत माने सारी दुनिया का एक छोटा-सा रूप ही है। जो प्रयोग भारत में सफल होगा वह सारी दुनिया में किया जा सकता है। इसलिए भारत एक छोटा जगत् ही है, यह ध्यान में रखकर हमें काम करना चाहिए। अभी हमारी यात्रा में कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात में 'जय जगत्' का उद्घोष शुरू हुआ है। इस मंत्र को स्वीकार करने में यहाँ के लोगों को जरा भी मुश्किल नहीं मालूम हुई। महाराष्ट्र और गुजरात में 'जय जगत्' का उद्घोष शुरू हुआ है। इस मंत्र को को स्वीकार करने में यहाँ के लोगों को जरा भी मुश्किल नहीं मालूम हुई। उन्हें ऐसा नहीं लगा कि इस मंत्र का पुराने मंत्र के साथ कोई विरोध है। लोगों ने सहज ही उसे उठा लिया। इस हालत में हम अपनी समस्याएँ जिस तरीके से हल करेंगे उसका असर सारी दुनिया पर होगा। अगर हमारा तरीका अच्छा हो तो सारी दुनिया उसका अनुकरण कर सकती है।

करुणामूलक साम्य-स्थापना का यह वैज्ञानिक प्रयोग

हमारी यात्रा में पिछले ७-८ वर्षों से दुनिया के बहुत सारे देशों के सैकड़ों व्यक्ति आ रहे हैं। उन्हें हमारे इस भूदान-ग्रामदान के प्रयोग का आकर्षण इसीलिए होता है कि वह करुणा पर आधारित है कानूनी शक्ति या हिंसा-शक्ति पर नहीं। करुणा से जो साम्य पैदा होता है, वही मानव को समाधान देता है। मात्सर्य और स्पर्धामूलक साम्य तो आज से भी अधिक वैषम्य पैदा करता है। इस प्रयोग ने दुनिया का जितना ध्यान खींचा है, उतना दूसरे किसीने नहीं। इसका भी कारण यही है कि जो तरीका हमने अख्तियार किया है कि करुणा द्वारा करुणामूलक साम्य की स्थापना हो, वह वैज्ञानिक है यानी विज्ञान के अनुकूल है।

सत्याग्रह का पुराना रूप चल नहीं सकता

मनुष्य का मन व्यक्तिगत होता है और बुद्धि सामाजिक क्योंकि वह समाज में विकसित होती है और मनुष्य को सहज मिलती है। इसलिए मानव व्यक्तिगत मन का आग्रह छोड़कर सामूहिक बुद्धि का आश्रय लेगा तभी इस विज्ञान-युग में मन के साथ मन की टक्कर नहीं होगी। जिस मार्ग या पद्धति से मनों की टक्कर होती है, वह विज्ञान-युग में उचित नहीं। इस युग में जो भी संघर्ष होगा वह बड़ा भयानक रूप लेगा क्योंकि आज ऐसे शस्त्रास्त्र पैदा हुए हैं जिन्हें मानव पकड़ नहीं सकता, बल्कि वही उनकी पकड़ में आ जाता है। हिंसा में पहले जो रक्षण-शक्ति थी वह अब इन शस्त्रास्त्रों के पैदा होने के बाद नहीं रही है और अब वह नग्न रूप में प्रकट हुई है। इस हालत में सत्याग्रह का पुराना स्वरूप नहीं चल सकता।

'सत्याग्रह' सुनते ही खुशी हो

अब सत्याग्रह करुणामूलक ही होना चाहिए। सामनेवाले के बारे में हमारे मन में द्वेष न होना ही काफी नहीं। अब तो यह भी जरूरी है कि उसके लिए हमारे मन में प्रेम और करुणा हो। हमारी कृति से करुणा फैलनी चाहिए। इस युग में सत्याग्रह का स्वरूप इस प्रकार का होना चाहिए कि 'सत्याग्रह' शब्द सुननेमात्र से सबको खुशी महसूस हो। सत्याग्रह की यही कसौटी होगी। जैसे किसीका वात्सल्य सुनते ही सबको खुशी होती है, वैसे ही किसी जगह सत्याग्रह शुरू होने की बात सुनते ही सबको आनन्द, तुष्टि और शान्ति महसूस होनी चाहिए। उसके बदले दूसरे को यह लगे कि "पता नहीं इस सत्याग्रह में क्या है, इसे टाला जाय तो अच्छा" तो वह सत्याग्रह नहीं है। सारांश, सत्याग्रह का स्वरूप ऐसा हो कि आरम्भ होते ही तत्क्षण वह स्वागतार्ह, स्वीकारार्ह, आदरणीय प्रतीत हो।

गांधीयुग के सत्याग्रह का रूप अब न चलेगा

गांधीजी के जमाने में इस प्रकार के सत्याग्रह का विकास नहीं हुआ। गांधीजी हमेशा कहते थे कि "सत्याग्रह नित्य विकासशील शास्त्र है, उसका शास्त्र हम अभी नहीं बना सकते वह धीरे-धीरे बनेगा। गांधीजी भारतवर्ष

हलचलें पुरानी दृष्टि से चल रही हैं और इसीलिए एक समाज के साथ दूसरे समाज का तथा एक राष्ट्र के साथ दूसरे राष्ट्र का संघर्ष हो रहा है।

भारत अर्थात् एक छोटा-सा जगत्

भारत का यह विशेष सौभाग्य है कि यह विविध रंगों का देश है, जिसमें अनेक जातियाँ एवं रीति-रिवाज और अनेक उपासनाएँ हैं। हमें उसके योग्य बनना है। सारी दुनिया के मसले कैसे और किस पद्धति से हल किये जा सकते हैं, इसका प्रयोग भारत कर सकता है। कारण भारत याने सारी दुनिया का एक छोटा-सा रूप ही है। जो प्रयोग भारत में सफल होगा वह सारी दुनिया में किया जा सकता है। इसलिए भारत एक छोटा जगत् ही है, यह ध्यान में रखकर हमें काम करना चाहिए। अभी हमारी यात्रा में कर्नाटक, महाराष्ट्र और गुजरात में 'जय जगत्' का उद्घोष शुरू हुआ है। इस मंत्र को स्वीकार करने में वहाँ के लोगों को जरा भी मुश्किल नहीं मालूम हुई। महाराष्ट्र और गुजरात में 'जय जगत्' का उद्घोष शुरू हुआ है। इस मंत्र को को स्वीकार करने में वहाँ के लोगों को जरा भी मुश्किल नहीं मालूम हुई। उन्हें ऐसा नहीं लगा कि इस मंत्र का पुराने मत के साथ कोई विरोध है। लोगों ने सहज ही उसे उठा लिया। इस हालत में हम अपनी समस्याएँ जिस तरीके से हल करेंगे उसका असर सारी दुनिया पर होगा। अगर हमारा तरीका अच्छा हो तो सारी दुनिया उसका अनुकरण कर सकती है।

करुणामूलक साम्य-स्थापना का यह वैज्ञानिक प्रयोग

हमारी यात्रा में पिछले ७–८ वर्षों से दुनिया के बहुत सारे देशों के सैकड़ों व्यक्ति आ रहे हैं। उन्हें हमारे इस भूदान-ग्रामदान के प्रयोग का आकर्षण इसीलिए होता है कि यह करुणा पर आधारित है, कानूनी शक्ति या हिंसा-शक्ति पर नहीं। करुणा से जो साम्य पैदा होता है, वही मानव को समाधान देता है। मात्सर्य और स्पर्धामूलक साम्य तो आज से भी अधिक वैषम्य पैदा करता है। इस प्रयोग ने दुनिया का जितना ध्यान खींचा है उतना दूसरे किसीने नहीं। इसका भी कारण यही है कि जो तरीका हमने अख्तियार किया है कि करुणा द्वारा करुणामूलक साम्य की स्थापना हो, वह वैज्ञानिक है याने विज्ञान के अनुकूल है।

सत्याग्रह का पुराना रूप चल नहीं सकता

मनुष्य का मन व्यक्तिगत होता है और बुद्धि सामाजिक क्योंकि वह समाज में विकसित होती है और मनुष्य को सहज मिलती है। इसलिए मानव व्यक्ति पर मन का आग्रह छोड़कर सामूहिक बुद्धि का आश्रय लेगा तभी इस विज्ञान युग में मन के साथ मन की टक्कर नहीं होगी। जिस मार्ग या पद्धति से मनों की टक्कर होती है वह विज्ञान-युग में उचित नहीं। इस युग में जो भी संघर्ष होगा, वह बड़ा भयानक रूप लेगा क्योंकि आज ऐसे शस्त्रास्त्र पैदा हुए हैं जिन्हें मानव पकड़ नहीं सकता बल्कि वही उनकी पकड़ में आ जाता है। हिंसा में पहले जो रक्षण-शक्ति थी वह अब इन शस्त्रास्त्रों के पैदा होने के बाद नहीं रही है और अब वह नग्न रूप में प्रकट हुई है। इस हालत में सत्याग्रह का पुराना स्वरूप नहीं चल सकता।

'सत्याग्रह' सुनते ही खुशी हो

अब सत्याग्रह करुणामूलक ही होना चाहिए। सामनेवाले के बारे में हमारे मन में द्वेष न होना ही काफी नहीं। अब तो यह भी जरूरी है कि उसके लिए हमारे मन में प्रेम और करुणा हो। हमारी कृति से करुणा फैलनी चाहिए। इस युग में सत्याग्रह का स्वरूप इस प्रकार का होना चाहिए कि 'सत्याग्रह' शब्द सुननेमात्र से सबको खुशी महसूस हो। सत्याग्रह की यही कसौटी होगी। जैसे किसीका वात्सल्य सुनते ही सबको खुशी होती है वैसे ही किसी जगह सत्याग्रह शुरू होने की बात सुनते ही सबको आनन्द, तुष्टि और शान्ति महसूस होनी चाहिए। उसके बदले दूसरों को यह लगे कि "पता नहीं इस सत्याग्रह में क्या है इसे टाला जाय तो अच्छा" तो वह सत्याग्रह नहीं है। सारांश सत्याग्रह का स्वरूप ऐसा हो कि आरम्भ होते ही तत्क्षण वह सामान्यतः स्वीकार्य, आदरणीय प्रतीत हो।

गांधीयुग के सत्याग्रह का रूप अब न चलेगा

गांधीजी के जमाने में इस प्रकार के सत्याग्रह का विकास नहीं हुआ। गांधीजी हमेशा कहते थे कि "सत्याग्रह नित्य विकासशील शास्त्र है, उसका शास्त्र हम अभी नहीं बना सकते वह धीरे-धीरे बनेगा। गांधीजी अंतर्दर्शी

जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि "सत्याग्रह लड़ाई का पर्याय है जो लड़ाई के बदले किया जाता है। इसलिए यह एक किस्म की लड़ाई ही है। किन्तु वास्तव में सत्याग्रह का स्वरूप लड़ाई से बिलकुल ही विपरीत है। लड़ाई में एक पक्ष की विजय होती है तो सत्याग्रह में दोनों पक्षों की। लड़ाई में एक-दूसरे के मन मिलते नहीं तो सत्याग्रह में मिलते हैं। जहाँ सत्याग्रह में बुद्धि के ऊपर का पर्दा हट जाता है और वह विचार करने के लिए मुक्त हो जाती है वहीं लड़ाई में बुद्धि कुंठित हो जाती है। आखिर सत्याग्रह तो तब सफल होता है जब सामनेवाले का मन विचार करने के लिए तैयार हो। मेरी कोई कृति युक्ति विचार या संकल्प के कारण तुम्हारी बुद्धि विचार करने लग जाय तो मेरा सत्याग्रह सफल हुआ यह समझा जाय।

ज्ञान और विचारशक्ति पर विश्वास ही 'सत्याग्रह

इसलिए शंकराचार्य जो कहते न वही सत्याग्रही की प्रतिज्ञा है। जब उनसे पूछा गया कि "मान लीजिये आपने एक बार किसीको अपनी बात समझा दी और वह न समझा तो आप क्या करेंगे ?" उन्होंने जवाब दिया कि 'दुबारा समझाऊँगा। दो बार समझाने पर भी कोई न समझे तो तीसरी बार समझाऊँगा। इसी तरह जब ईसामसीह से पूछा गया कि मनुष्य को कितनी बार क्षमा करनी चाहिए तो उसने कहा—"सात बार। फिर पूछा गया कि "सात बार क्षमा करने पर भी कोई द्वेष न छोड़े तो क्या करना चाहिए? इस पर ईसा ने कहा : "तो ७×७=४९ बार क्षमा करनी चाहिए और उससे भी काम न हो तो ७×७×७=३४३ बार क्षमा करनी चाहिए। एक बार एक कीर्तनकार भागवत की कथा सुनाते हुए सत्रह युग के पितरों की बात कर रहा था। किसीने पूछा कि "सत्रह युग के पितर कौन थे ? तो उसने जवाब दिया—"अठारहवाँ युग। तात्पर्य यह कि शंकराचार्य ने यह कहा कि "मैं तो समझाता ही रहूँगा मेरा यही काम है। ज्ञानशक्ति और विचारशक्ति पर यह विश्वास ही सत्याग्रह है।

सत्याग्रह-शक्ति तितिक्षा नहीं

मान लीजिये मुझे लगता है कि मेरे पक्ष में सत्य है किन्तु सामनेवाला उसे नहीं मानता। इसलिए मैं अनशन शुरू कर देता हूँ और वह भी अनशन

आरम्भ कर देता है। अब इसका निर्णय किस रीति से होगा ? अगर मुझमें अनशन करने की ताकत है और सामनेवाले में अधिक है, तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि उसके पक्ष में सत्य है? अगर अनशन करने की शक्ति से ही सत्य का निर्णय करना हो तो फिर कुश्ती से ही यह क्यों न कर लिया जाय ? जैनियों को उपवास की इतनी आदत होती है कि किसी जैनी के सामने उपवास करना पड़े तो मैं तो हैरान ही हो जाऊँगा। मैं उसके सामने टिक न सकूँगा। तो क्या इसका यह अर्थ होगा कि उसके पक्ष में सत्य है ? फिर तो 'तितिक्षावान् सत्यान्' यही अर्थ होगा। लेकिन जैसे यह खयाल गलत है कि जिसके पास अधिक शस्त्रास्त्र है, उसके पास सत्य है, वैसे ही यह खयाल भी गलत है कि जिसके पास तितिक्षा है, उसके पास सत्य है। सत्याग्रह-यानी तितिक्षा नहीं। यद्यपि यह सच है कि सत्याग्रह में बहुत सहन करना पड़ता है, फिर भी सहन करना या उपवास की शक्ति यह कोई सत्याग्रह का लक्षण नहीं। सहन करना पड़ता है, इसलिए सहन करें, यह ठीक ही है। किन्तु सहन करने का कोई कार्यक्रम सत्य स्थापित करने का कार्यक्रम नहीं हो सकता। सत्य स्थापित करने के लिए 'विचार' के सिवा दूसरी कोई शक्ति नहीं है। आप मुझे विचार समझाएँ, मैं आपको विचार समझाऊँ इसके सिवा दूसरी कोई शक्ति नहीं है, जो सत्य की स्थापना कर सके। विज्ञान-युग में यह चीज समझनी होगी और धीरज के साथ अपना विचार समाज को समझाना होगा। अगर एक रीति से समझाने से समाज न समझे तो दूसरी रीति से समझाना होगा अधिक कुशलता से समझाना होगा। यही सत्याग्रह का सूक्ष्मतम स्वरूप है।

हम धैर्य रखकर विचार का सतत प्रचार करें

पुराने जमाने में जब कि दुनिया को जोड़नेवाले साधन मौजूद नहीं थे जहाँ-तहाँ धर्म-संस्थापक पैदा हुए, क्योंकि परमेश्वर के संकल्प से सारी दुनिया में एक हवा फैलती है। वेदों में कहा है कि परमेश्वर के संकल्प से मनुष्य दुनिया में बहते हैं। एक जमाने में सर्वत्र धर्म-संस्थापना का कार्य हुआ तो मध्ययुग में सर्वत्र संत पैदा हुए। भारत एशिया और यूरोप में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई संत पैदा हुए। उपासना का विचार, ध्यान-धारणा आदि प्रक्रियाएँ

चलता है। कुछ लोग कहते हैं कि "सत्याग्रह लड़ाई का पर्याय है जो लड़ाई के बदले किया जाता है। इसलिए वह एक किस्म की लड़ाई ही है।" किन्तु वास्तव में सत्याग्रह का स्वरूप लड़ाई से बिलकुल ही विपरीत है। लड़ाई में एक पक्ष की विजय होती है, तो सत्याग्रह में दोनों पक्षों की। लड़ाई में एक-दूसरे के मन मिलते नहीं तो सत्याग्रह में मिलते हैं। जहाँ सत्याग्रह में बुद्धि के ऊपर का पर्दा हट जाता है और वह विचार करने के लिए मुक्त हो जाती है वहाँ लड़ाई में बुद्धि कुंठित हो जाती है। आखिर सत्याग्रह तो तब सफल होता है जब सामनेवाले का मन विचार करने के लिए तैयार हो। मेरी कोई कृति युक्ति विचार या संकल्प के कारण तुम्हारी बुद्धि विचार करने लग जाय तो मेरा सत्याग्रह सफल हुआ यह समझा जाय।

ज्ञान और विचारशक्ति पर विश्वास ही 'सत्याग्रह'

इसलिए शंकराचार्य जो कहते थे वही सत्याग्रही की प्रतिज्ञा है। जब उनसे पूछा गया कि मान लीजिये आपने एक बार किसीको अपनी बात समझा दी और वह न समझा तो आप क्या करेंगे? उन्होंने जवाब दिया कि 'दुबारा समझाऊँगा। दो बार समझाने पर भी कोई न समझे तो तीसरी बार समझाऊँगा। इसी तरह जब ईसामसीह से पूछा गया कि मनुष्य को कितनी बार क्षमा करनी चाहिए तो उसने कहा—"सात बार। फिर पूछा गया कि "सात बार क्षमा करने पर भी कोई द्वेष न छोड़े तो क्या करना चाहिए? इस पर ईसा ने कहा: 'तो ७×७=४९ बार क्षमा करनी चाहिए और उससे भी काम न हो तो ७×७×७=३४३ बार क्षमा करनी चाहिए। एक बार एक कीर्तनकार भागवत की कथा सुनाते हुए सप्त युग के पितरों की बात कर रहा था। किसीने पूछा कि "सप्त युग के पितर कौन थे? तो उसने जवाब दिया—"अठारहवाँ युग। सारांश यह कि शंकराचार्य ने यह कहा कि "मैं तो समझाता ही रहूँगा मेरा यही काम है। ज्ञानशक्ति और विचारशक्ति पर यह विश्वास ही सत्याग्रह है।

सत्याग्रह-शक्ति शिथिल नहीं

मान लीजिये मुझे लगता है कि मेरे पक्ष में सत्य है किन्तु सामनेवाला उसे नहीं मानता। इसलिए मैं अनशन शुरू कर देता हूँ और वह भी अनशन

प्रारम्भ कर देता है। अब इसका निर्णय किस रीति से होगा? अगर मुझमें अनशन करने की ताकत है और सामनेवाले में अधिक है, तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि उसके पक्ष में सत्य है? अगर अनशन करने की शक्ति से ही सत्य का निर्णय करना हो तो फिर कुश्ती से ही वह क्यों न कर लिया जाय? जैनियों को उपवास की इतनी आदत होती है कि किसी जैनी के सामने उपवास करना पड़े तो मैं तो हैरान ही हो जाऊँगा। मैं उसके सामने टिक न सकूँगा। तो क्या इसका यह अर्थ होगा कि उसके पक्ष में सत्य है? फिर तो 'तितिक्षावान् सत्यवान्' यही अर्थ होगा। लेकिन जैसे यह खयाल गलत है कि जिसके पास अधिक शस्त्रास्त्र है, उसके पास सत्य है, वैसे ही यह खयाल भी गलत है कि जिसके पास तितिक्षा है उसके पास सत्य है। सत्याग्रह-शक्ति तितिक्षा नहीं। यद्यपि यह सच है कि सत्याग्रह में बहुत सहन करना पड़ता है, फिर भी सहन करना या उपवास की शक्ति यह कोई सत्याग्रह का लक्षण नहीं। सहन करना पड़ता है, इसलिए सहन करें, यह ठीक ही है। किन्तु सहन करने का कोई कार्यक्रम सत्य स्थापित करने का कार्यक्रम नहीं हो सकता। सत्य स्थापित करने के लिए 'विचार' के सिवा दूसरी कोई शक्ति नहीं है। आप मुझे विचार समझाएँ, मैं आपको विचार समझाऊँ, इसके सिवा दूसरी कोई शक्ति नहीं है जो सत्य की स्थापना कर सके। विज्ञान-युग में यह चीज समझनी होगी और धीरज के साथ अपना विचार समाज को समझाना होगा। अगर एक रीति से समझाने से समाज न समझे तो दूसरी रीति से समझाना होगा, अधिक कुशलता से समझाना होगा। यही सत्याग्रह का शुद्धतम स्वरूप है।

हम धैर्य रखकर विचार का सतत प्रचार करें

पुराने जमाने में जब कि दुनिया को जोड़नेवाले साधन मौजूद नहीं थे यहाँ-वहाँ धर्म-संस्थापक पैदा हुए, क्योंकि परमेश्वर के संकल्प से सारी दुनिया में एक हवा फैलती है। वेदों में कहा है कि परमेश्वर के संकल्प से मनुष्यत्व दुनिया में बढ़ता है। एक जमाने में सर्वत्र धर्म-संस्थापना का कार्य हुआ तो मध्ययुग में सर्वत्र संत पैदा हुए। भारत, एशिया और यूरोप में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई संत पैदा हुए। उपासना का विचार, ध्यान-धारणा आदि प्रक्रियाएँ

सारी दुनिया में चली। उसके बाद इन दो-सौ वर्षों में हम देख रहे हैं कि सर्वत्र स्वतन्त्रता के आन्दोलन हुए। इस तरह सारी दुनिया में हवा बहती है। इसलिए हम अगर धीरज रखें और सच्चे विचार का सातत्यपूर्वक प्रचार और आचार करते रहें तो वह विचार हवा से ही फैलेगा। इस विज्ञान-युग में इसके सिवा कोई दूसरे साधन हम इस्तेमाल करेंगे तो सत्याग्रह-शक्ति की खोज नहीं होगी बल्कि सत्याग्रह का विपरीत अर्थ चलेगा।

मैं सचमुच 'सातत्यकारी'

अभी एक भाई ने मुझे एक किताब दी। उसमें एक कविता में मेरे कुछ गुण बताये हैं। मैंने उनसे कहा कि "आपके लिखे हुए दूसरे गुण मुझे बिलकुल लागू नहीं होते यद्यपि मैं उनकी प्राप्ति का प्रयत्न करता रहता हूँ। किन्तु उनमें से 'सातत्यकारी' यही विशेषण मुझे ठीक लागू होता है। मुझमें सत्याग्रह-निष्ठा काम करती है जो कहती है कि सत्याग्रह यानी सातत्य। जो थोड़ी देर के लिए चलता है वह सत्याग्रह नहीं। सत्याग्रह तो निरन्तर चलता है। एक चीज मेरे ध्यान में आयी है कि जमीन की मालकियत नहीं रहनी चाहिए, तो अब या तो वह काम पूरा होगा या मैं ही पूरा हो जाऊँगा। दो के सिवा कोई तीसरी गति नहीं है क्योंकि मैं जिस तरह सत्य को समझा हूँ उसी पर चलता रहूँगा जब तक कि कोई मुझे यह न समझाये कि जिसे मैं सत्य समझता हूँ वह सत्य नहीं है। इसीको मैं सत्याग्रह का उत्तम स्वरूप मानता हूँ।

मनुस्मृति में ब्राह्मण को आज्ञा दी गयी है

> जप्येनैव तु संसिद्ध्येद् ब्राह्मणो नात्र संशयः।
> कुर्यादन्यन्न वा कुर्यात् ॥

ब्राह्मण दूसरा कुछ कर सके या न भी कर सके पर उसे केवल जप करना चाहिए। केवल जप से ही उसका काम हो जायगा। शास्त्रों में यह भी कहा गया है कि 'जपो ब्राह्मण उच्यते' यानी जप ही ब्राह्मण है। सतत नाम जप करे, माला लेकर नहीं जीवन में सतत भजन चले। उसीका ध्यान चले और वही नाम चले। इस तरह अनन्य ध्यान धारणा समाधिपूर्वक सत्य पर

सारी दुनिया में चली। उसके बाद इन सौ-सौ वर्षों में हम देख रहे हैं कि सर्वत्र स्वतन्त्रता के आन्दोलन हुए। इस तरह सारी दुनिया में हवा बहती है। इसलिए हम अगर धीरज रखें और अच्छे विचार का सातत्यपूर्वक प्रचार और आचार करते रहें तो वह विचार हवा से ही फैलेगा। इस विज्ञान-युग में इसके सिवा कोई दूसरे साधन हम इस्तेमाल करेंगे तो सत्याग्रह-शक्ति की खोज नहीं होगी बल्कि सत्याग्रह का विपरीत अर्थ चलेगा।

मैं सचमुच 'सातत्यकारी'

अभी एक भाई ने मुझे एक किताब दी। उसमें एक कविता में मेरे कुछ गुण बताये हैं। मैंने उनसे कहा कि "आपके लिखे हुए दूसरे गुण मुझे बिलकुल लागू नहीं होते यद्यपि मैं उनकी प्राप्ति का प्रयत्न करता रहता हूँ। किन्तु उनमें से 'सातत्यकारी' यही विशेषण मुझे ठीक लागू होता है। मुझमें सत्याग्रह-निष्ठा काम करती है जो कहती है कि सत्याग्रह याने सातत्य। जो थोड़ी देर के लिए चलता है वह सत्याग्रह नहीं। सत्याग्रह तो निरन्तर चलता है। एक चीज मेरे ध्यान में आयी है कि जमीन की मालकियत नहीं रहनी चाहिए तो अब या तो यह काम पूरा होगा या मैं ही पूरा हो जाऊँगा। दो के सिवा कोई तीसरी गति नहीं है क्योंकि मैं जिस तरह सत्य को समझा हूँ उसी पर चलता रहूँगा जब तक कि कोई मुझे यह न समझाये कि जिसे मैं सत्य समझता हूँ वह सत्य नहीं है। इसीको मैं सत्याग्रह का उत्तम स्वरूप मानता हूँ।

मनुस्मृति में ब्राह्मण को आज्ञा दी गयी है

'जप्येनैव तु संसिद्ध्येत् ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यात् ॥

ब्राह्मण दूसरा कुछ कर सके या न भी कर सके पर उसे केवल जप करना चाहिए। केवल जप से ही उसका काम हो जायगा। शास्त्रों में यह भी कहा गया है कि 'मैत्रो ब्राह्मण उच्यते' याने मैत्र ही ब्राह्मण है। सतत जप-जप करे, माला लेकर नहीं जीवन में सतत अजपा चले। उसीका ध्यान चले और वही काम चले। इस तरह मनुष्य ध्यान धारणा समाधिपूर्वक सत्य पर

खण्ड तीसरा

सत्ता निरपेक्ष समाज का रूप — २०

पंचविध कार्यक्रम

देश की वर्तमान हालत की मीमांसा करते हुए मैंने बताया था कि एक तो अधिकारी पक्ष रहेगा जो लोगों की ओर से बहुसंख्या के आधार पर राज काज की जिम्मेदारी उठायेगा और दूसरा एक विरोधी पक्ष होगा जो उसके कार्यों में प्रति-सहकार करेगा। यानी जहाँ सहकार की आवश्यकता मालूम हो वहाँ सहकार करेगा और जहाँ विरोध की आवश्यकता हो, वहाँ विरोध करेगा। ये दोनों राजनैतिक क्षेत्र में काम करेंगे। इसके अलावा तीसरा एक निष्पक्ष समाज होना चाहिए, जिसकी गिनती न अधिकारी पक्ष में होगी न विरोधी पक्ष में बल्कि वह एक अलग जमात होगी। उसकी अपनी एक तालीम होगी और वह जनता सेवा के काम में लगी हुई होगी। इस तरह की जमात जितनी विशाल और शक्तिशाली होगी राज्यतंत्र और लोकतन्त्र दोनों उतने ही शुद्ध और मर्यादित रहेंगे। उस तीसरे निष्पक्ष समाज का एक बड़ा भारी देशव्यापी कार्यक्रम होगा। कार्यक्रम के कुछ पहलू दिग्दर्शन के तौर पर रख रहा हूँ।

जीवन-शोधन

इस जमात के जो काम होंगे उनमें बुनियादी और प्राथमिक काम यह होगा कि वे लोग 'जीवन-शोधन' का काम करेंगे। अपने निजी जीवन की भी शुद्धि और अपने कुटुम्बी जन मित्र सहधर्मी सबकी जीवन-शुद्धि नित्य-निरन्तर करते रहेंगे। अगर कहीं अपने में असत्य छिप रहा है तो बारीकी से उसका शोधन करेंगे। उस असत्य को मिटा देंगे। वे यह भी देखेंगे कि हृदय के किसी कोने में अगर पाप के अंश रह गये हैं तो वे किस प्रकार के हैं। जब अनेक

से-कम भारत में आन्तरिक शांति का कार्य पुलिस और सेना को न करना पड़ेगा। फिर उसका नैतिक असर सरकार पर होगा और सारी दुनिया पर भी उसका परिणाम होगा। फिर दुनिया के सामने एक राह खुल जायगी कि किस तरह सारी दुनिया में शांति की शक्ति से काम हो सके।

खेड़ा जिले से विशेष आशा

मैं आशा करता हूँ कि जहाँ से गांधीजी के सत्याग्रह का संदेश सारी दुनिया में फैला यह खेड़ा जिला यह काम कर सकता है। अब से मैं इस जिले म जाता हूँ सत्याग्रह और शांति-सेना के ही बारे म कहता हूँ। इसी आशा से कि सरदार और गांधीजी के इस जिले में जहाँ सत्याग्रह का महान् प्रयोग हुआ, जिसकी कहानियाँ लोगों में प्रचलित हैं, वहाँ यह नयी शक्ति जागृत होगी तो काम हो जायगा।

बोरसद (गुजरात)
२ ११ ५८

वाणी से निर्देश, कृति से सत्याग्रह

चौथा काम, समाज-जीवन म या सरकारी कामों में जहाँ कहीं गलती देखें वहाँ उसका निर्देश करना। यह जरूरी नहीं कि निर्देश जाहिरा तौर पर ही किया जाय परन्तु जहाँ जाहिरा तौर पर निर्देश करने का मौका आये वहाँ राग-द्वेष-रहित होकर स्पष्ट शब्दों में उसे जनता के सामने रखना और उसमें अपनी प्रतिभा प्रकट करना उनका काम होगा। इस तरह सामाजिक और सरकारी कामों के बारे में चिन्तन करते हुए उनमें कहीं दोष आ जायें तो उन्हें प्रकट करना उनका कर्तव्य होगा।

कभी-कभी उन दोषों के लिए क्रियात्मक प्रतिकार का मौका भी आ सकता है। वह इतना सहज होगा कि जिसके विरोध में वह होगा उन्हें भी वह प्रिय लगेगा क्योंकि वह उनकी सेवा के लिए ही होगा। उसे 'प्रतिकार' का नाम देने के बजाय 'सत्य-क्रिया' कहना ही ठीक रहेगा क्योंकि सत्य-क्रिया जिस पर होती है, उसे भी वह प्रिय होती है। उसे 'सत्याग्रह' भी कह सकते है। परन्तु आज सत्याग्रह का अर्थ गिर गया है। उत्तम-से-उत्तम शब्द भी नालायक हाथों में कैसे बिगड़ सकते हैं और मामूली-से-मामूली शब्द भी अच्छे हाथों में कैसे चढ सकते हैं उसका यह एक उदाहरण है। इस तरह सत्याग्रह आज धमकी के अर्थ मे सत्य के अर्थ में और सत्य के अभाव म वास्तवद् हिंसा के अर्थ में इस्तेमाल किया जा रहा है। इस तरह यह शब्द बिगड़ गया है। इसमें शब्द का दोष नहीं। शब्द स्वच्छ है इसलिए उस शब्द का प्रयोग करने में दोष नहीं है और उसका प्रयोग मैं करूँगा। इस तरह वाणी से निर्देश और कृति से सत्याग्रह— यह भी उन कार्यकर्ताओं का काम रहेगा।

मसलों का अहिंसक हल

इसके अलावा पाँचवाँ काम उनका यह रहेगा कि समाज-जीवन में जो भारी मसले पैदा होते हैं उनका वे अहिंसात्मक हल खोजें। अहिंसात्मक तथा नैतिक तरीके से बड़ी-बड़ी समस्याएँ भी हल हो सकती है, यह वे साबित कर देंवें। अगर वे साबित कर सकें तो नैतिक और अहिंसात्मक तरीकों पर लोगों की श्रद्धा जम सकती है। लोगों को नैतिक तरीके प्रिय तो होते ही है, लेकिन प्रत्यक्ष

प्रकार के होते हैं। उन मलों में से वे किस प्रकार के हैं जो हृदय में राज्य कर रहे हैं? उन सब अंधों को देखकर उनसे मुक्ति पाने की कोशिश करेंगे। अर्थात् सदा-सर्वदा निर्भय बनने का उनका प्रयत्न रहेगा। उनकी हरएक कृति हमेशा संयमयुक्त रहेगी—वाक्-संयम काम-संयम मन-संयम उनकी नित्य साधना रहेगी। वे यह भी देखेंगे कि अपनी आजीविका का मुख्य अंश जहाँ तक हो सकता है उत्पादक-शरीर-श्रम पर चलायें और निजी पारिवारिक तथा सामाजिक तीनों दृष्टि से प्रयोग करें। यह सारा जीवन-शोधन का बुनियादी काम उनका प्रथम कार्य होगा।

अध्ययनशीलता

दूसरी बात उन्हें यह करनी होगी कि नित्य-निरन्तर अध्ययनशील रहें। लोक-जीवन की जितनी शाखायें और उपशाखायें हैं उनका वे अध्ययन करते। हर तरह की उपयुक्त जानकारी उनके पास रहेगी। यह नहीं कि वे व्यर्थ की जानकारी का परिग्रह करेंगे। जो जानकारी समाज-जीवन और व्यक्तिगत-जीवन आन्तरिक तथा बाह्य के लिए जरूरी है उसे वे हासिल करते रहें। इस तरह अध्ययन होता रहता है तभी स्वराज्य तरक्की करता है। स्वराज्य में ऐसे अध्ययनशील लोगों की बहुत जरूरत रहती है। बिना अध्ययन के कोई भी समाज गहरा काम नहीं कर पाता। मैं देख रहा हूँ कि इस दिशा में बहुत काम नहीं हो रहा है। मैं इसे बुनियादी काम तो नहीं कहूँगा परन्तु आवश्यक और महत्व का कहूँगा।

निष्काम समाज-सेवा

तीसरी बात यह करनी होगी कि समाज-सेवा के जो क्षेत्र हैं खासकर उपेक्षित क्षेत्र जिनकी ओर समाज का ध्यान नहीं है जिन्हें आगे ले जाने में समाज और सरकार दोनों का ध्यान नहीं है उनकी ओर ध्यान देना। उस तरह की सेवा में रात-दिन निष्काम बुद्धि से लगे रहना दीर्घ काल में उसका फल मिलेगा उसी निष्ठा रखकर उसे कभी कम न होने देना और चारों ओर अंधेरा फैला हो तो भी दीपक के समान अँधेरे का भय न रखकर अपनी लौ देते रहना—उनका काम रहेगा।

वाणी से निर्देश, कृति से सत्याग्रह

चौथा काम समाज-जीवन में या सरकारी कामों में जहाँ कहीं गलती देखें वहाँ उसका निर्देश करना। यह जरूरी नहीं कि निर्देश जाहिरा तौर पर ही किया जाय परन्तु जहाँ जाहिरा तौर पर निर्देश करने का मौका आये वहाँ राग-द्वेष-रहित होकर स्पष्ट शब्दों में उसे जनता के सामने रखना और उसमें अपनी प्रतिभा प्रकट करना उनका काम होगा। इस तरह सामाजिक और सरकारी कामों के बारे में चिन्तन करते हुए उनमें कहीं दोष आ जायँ तो उन्हें प्रकट करना उनका कर्तव्य होगा।

कभी-कभी उन दोषों के लिए क्रियात्मक प्रतिकार का मौका भी आ सकता है। वह इतना सहज होगा कि जिनके विरोध में वह होगा उन्हें भी वह प्रिय लगेगा क्योंकि वह उनकी सेवा के लिए ही होगा। उसे 'प्रतिकार' का नाम देने के बजाय 'सत्य-क्रिया' कहना ही ठीक रहेगा क्योंकि सत्य-क्रिया जिस पर होती है उसे भी वह प्रिय होती है। उसे 'सत्याग्रह' भी कह सकते हैं। परन्तु आज सत्याग्रह का अर्थ गिर गया है। उत्तम-से-उत्तम शब्द भी नालायक हाथों में कैसे बिगड़ सकते हैं और मामूली-से-मामूली शब्द भी अच्छे हाथों में कैसे उठ सकते हैं उसका यह एक उदाहरण है। इस तरह सत्याग्रह आज धमकी के अर्थ में, घेरा के अर्थ में और सत्य के अभाव में सत्यवत् हिंसा के अर्थ में इस्तेमाल किया जा रहा है। इस तरह यह शब्द बिगड़ गया है। इसमें शब्द का दोष नहीं। शब्द स्वच्छ है, इसलिए उस शब्द का प्रयोग करने में दोष नहीं है और उसका प्रयोग मैं करूँगा। इस तरह वाणी से निर्देश और कृति से सत्याग्रह— यह भी उन कार्यकर्ताओं का काम रहेगा।

मसलों का अहिंसक हल

इसके अलावा पाँचवाँ काम उनका यह रहेगा कि समाज-जीवन में जो भारी मसले पैदा होते हैं, उनका वे अहिंसात्मक हल खोजें। अहिंसात्मक तथा नैतिक तरीके से बड़ी-बड़ी समस्याएँ भी हल हो सकती हैं, यह वे साबित कर देंगे। अगर वे साबित कर सकें, तो नैतिक और अहिंसात्मक तरीकों पर लोगों की श्रद्धा जम सकती है। लोगों को नैतिक तरीके प्रिय तो होते ही हैं, लेकिन प्रत्यक्ष

परिणाम देखे बगैर लोगों की निष्ठा स्थिर नहीं हो सकती। प्रत्यक्ष प्रयोग से लोगों की निष्ठा साबित करना, यह इस निष्पक्ष समाज का पाँचवाँ काम होगा।

राजघाट, (दिल्ली)
११ ११ '५१

भौतिक सत्ता गाँव में, नैतिक सत्ता केन्द्र में

हम गाँव-गाँव में स्वराज्य लाना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि सारी सत्ता गाँव के हाथ में रहे। प्रान्तीय सरकार का काम गाँव पर हुकूमत चलाना नहीं होगा, बल्कि यह होगा कि एक गाँव का दूसरे गाँव से सम्बन्ध बना रहे। इसी तरह दिल्ली की सरकार का यह काम नहीं होगा कि प्रान्त पर हुकूमत चलाये, बल्कि यह होगा कि प्रान्तों के बीच सम्बन्ध बना रहे। जितनी-जितनी ऊँची सरकार होगी, उतना-ही-उतना उसके पास व्यापक काम जोड़ने का काम रहेगा, पर सत्ता कम होगी। सत्ता तो गाँवों में रहेगी। सारी भौतिक सत्ता गाँवों में और केन्द्र में नीतिमान्, चारित्र्यशील लोग जायेंगे, जिनकी नैतिक सत्ता चलेगी।

लेकिन आज तो यह माना जाता है कि भौतिक सत्ता न्यूयार्क या दिल्ली में रहे। एक दुनिया बनानेवाले तो कहते हैं कि सारी भौतिक सत्ता यू० एन० ओ० (राष्ट्रसंघ) या ऐसी ही किसी सरकार के हाथ रहे। किन्तु मैं तो चाहता हूँ कि भौतिक सत्ता गाँवों में ही रहनी चाहिए। गांधीजी और बुद्ध की सत्ता चली, क्योंकि वे सत्ता चलाने लायक थे। नैतिक सत्ता किसीके देने से नहीं मिल सकती। वह तो अपने-आप प्राप्त होती है। इसलिए जो नीतिमान् पुरुष होते हैं, वे अपने-आप ऊँची सरकार में जाने लायक बनेंगे। उनकी सत्ता स्वयमेव चलेगी, जिस तरह जंगल में शेर की चलती है। शेर को चुना नहीं जाता। इस तरह शेर के जैसे कुछ चुने हुए नीतिमान् पुरुष दिल्ली की सरकार में रहेंगे और उनकी सत्ता लोग प्रेम से मानेंगे। परन्तु असली सत्ता तो गाँवों में ही रहेगी।

मोहरगमा (बिहार)
२४ ११ ५२

शक्ति का स्रोत दिल्ली में नहीं, हमारे हृदय में

अभी स्वराज्य प्राप्त हुए कुछ वर्ष साल हुए, फिर भी लोग कहते हैं कि सरकार ने यह नहीं किया वह नहीं किया। मैं उनसे पूछता हूँ कि आप स्वतंत्र हैं या गुलाम? अगर स्वतंत्र हैं तो क्या आप यह चाहते हैं कि आपके गाँव की तालीम का इंतजाम सरकार करे, आपके गाँव की सफाई सरकार करे? आपके गाँव के सारे काम सरकार करे? आखिर सरकार क्या चीज है? जो काम परमेश्वर नहीं कर सकता क्या वह सरकार कर सकेगी? परमेश्वर बारिश देता है पर सिर्फ बारिश से फसल नहीं उगती घास उग सकती है। जब किसान परिश्रम करता है धरती में अपना पसीना डालता है तभी फसल उगती है। इस तरह जब परमेश्वर ही फसल नहीं बना सकता तो क्या सरकार बना सकती है?

सरकार की ताकत से हम ताकतवर बनेंगे यह मानना ही गलत है। वास्तव में हमारी ताकत से ही सरकार ताकतवर बनेगी। शक्ति का मूलस्रोत दिल्ली या पटने में नहीं वह तो हमारे और आपके हृदय के अंदर है। वहीं से चाहे जिस काम में शक्ति लगायी जा सकती है। लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आप यह मसला हल कर सकेंगे? मैं कहता हूँ कि अगर आपने चाहा तो आप भी यह मसला हल कर सकते हैं। अगर आप चाहें कि अपने घर की लड़की को योग्य वर ढूँढ़कर उसके घर पहुँचायें तो आपको कौन रोक सकता है? इसी तरह आपको जिस समय यह लगेगा कि धन और धरती दूसरे के पास पहुँचाने में ही हमारा कल्याण और मंगल है, तो पहुँचाने में आपके हाथ कौन रोकनेवाला है? यह सब समझने की बात है।

बरौनी (बिहार)
२९-१ ५२

परिणाम देखे बगैर लोगों की निष्ठा स्थिर नहीं हो सकती। प्रत्यक्ष प्रयोग से लोगों की निष्ठा साबित करना यह इस निष्पक्ष समाज का पाँचवाँ काम होगा।

राजघाट, (दिल्ली)
१६ ११ '५१

भौतिक सत्ता गाँव में, नैतिक सत्ता केन्द्र में

हम गाँव-गाँव में स्वराज्य लाना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि सारी सत्ता गाँव के हाथ में रहे। प्रान्तीय सरकार का काम गाँव पर हुकूमत चलाना नहीं होगा, बल्कि यह होगा कि एक गाँव का दूसरे गाँव से सम्बन्ध बना रहे। इसी तरह दिल्ली की सरकार का यह काम नहीं होगा कि प्रान्त पर हुकूमत चलाये, बल्कि यह होगा कि प्रान्तों के बीच सम्बन्ध बना रहे। जितनी-जितनी ऊँची सरकार होगी, उतना-ही-उतना उसके पास व्यापक काम जोड़ने का क्रम रहेगा, पर सत्ता कम होगी। सत्ता तो गाँवों में रहेगी। सारी भौतिक सत्ता गाँवों में और केन्द्र में नीतिमान् चारित्र्यशील लोग जायेंगे, जिनकी नैतिक सत्ता चलेगी।

लेकिन आज तो यह माना जाता है कि भौतिक सत्ता न्यूयार्क या दिल्ली में रहे। एक दुनिया बनानेवाले तो कहते हैं कि सारी भौतिक सत्ता यू० एन० ओ० (राष्ट्रसंघ) या ऐसी ही किसी सरकार के हाथ रहे। किन्तु मैं तो चाहता हूँ कि भौतिक सत्ता गाँवों में ही रहनी चाहिए। गांधीजी और बुद्ध की सत्ता चली, क्योंकि वे सत्ता चलाने लायक थे। नैतिक सत्ता किसीके देने से नहीं मिल जाती। वह तो अपने-आप प्राप्त होती है। इसलिए जो नीतिमान् पुरुष होते हैं, वे अपने-आप ऊँची सरकार में जाने लायक बनेंगे। उनकी सत्ता स्वयमेव चलेगी, जिस तरह जंगल में शेर की चलती है। शेर को चुना नहीं जाता। इस तरह शेर के जैसे कुछ चुने हुए नीतिमान् पुरुष दिल्ली की सरकार में पहुँचें और उनकी सत्ता लोग प्रेम से मानेंगे। परन्तु असली सत्ता तो गाँवों में ही रहेगी।

लोहरदगा (बिहार)
२४ ११ ५१

शक्ति का स्रोत दिल्ली में नहीं, हमारे हृदय में

अभी स्वराज्य प्राप्त हुए कुछ वर्ष बीते हुए, फिर भी लोग कहते हैं कि सरकार ने यह नहीं किया, वह नहीं किया। मैं उनसे पूछता हूँ कि आप स्वतन्त्र हैं या गुलाम? अगर स्वतंत्र हैं, तो क्या आप यह चाहते हैं कि आपके गाँव की तालीम का इंतजाम सरकार करे, आपके गाँव की सफाई सरकार करे? आपके गाँव के सारे काम सरकार करे? आखिर सरकार क्या चीज है? जो काम परमेश्वर नहीं कर सकता, क्या वह सरकार कर सकती? परमेश्वर बारिश देता है, पर सिर्फ बारिश से फसल नहीं उगती, घास उग सकती है। जब किसान परिश्रम करता है, धरती में अपना पसीना डालता है, तभी फसल उगती है। इस तरह जब परमेश्वर ही फसल नहीं उगा सकता, तो क्या सरकार उगा सकती है?

सरकार की ताकत से हम ताकतवर बनेंगे, यह मानना ही गलत है। असल में हमारी ताकत से ही सरकार ताकतवर बनती। शक्ति का मूलस्रोत दिल्ली या पटने में नहीं, वह तो हमारे और आपके हृदय में भरा है। वहीं से आप जिस काम में शक्ति लगायी जा सकती है। लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आप यह मसला हल कर सकेंगे? मैं कहता हूँ कि अगर आप चाहें तो आप भी यह मसला हल कर सकते हैं। अगर आप चाहें कि आपके घर [illegible] को ढूँढ़कर उसके घर पहुँचायें तो आपको कौन रोक सकता है? इसी प्रकार आपको जिस समय यह लगेगा कि धन और धरती [illegible] में ही हमारा कल्याण और मंगल है, तो पहुँचाने में [illegible] है? यह सब समझने की बात है।

[illegible] (बिहार)

आजकल राजनीति कोई ऐसा विषय नहीं रहा जो जीवन से बिलकुल अलग हो। पुराने जमाने में राजाओं की सत्ता चलती थी पर वह सत्ता बहुत कम थी। जुल्मी बादशाह भी जनता को थोड़ी पीड़ा देते थे। आम जनता पर उनका ज्यादा असर नहीं हो सकता था क्योंकि सरकार चुनी हुई नहीं थी और न आज के जैसे आमदरफ्त के साधन ही थे। उस समय किसी बादशाह का सारे हिन्दुस्तान में सन्देश पहुँचने में महीनों लग जाते थे और बादशाह का हुक्म मानना या न मानना सरदारों की इच्छा पर निर्भर रहता था। निजाम जैसे शक्तिशाली सरदार तो हुक्म भी नहीं मानते थे। इस तरह उस समय की हालत दूसरी थी। उस समय सरकार की सत्ता बहुत सीमित थी। सरकार बहुत ज्यादा जीवन का नियन्त्रण नहीं कर सकती थी सिर्फ विदेश के आक्रमणों का प्रतिकार करने के लिए थोड़ी-सी सेना रखना और सेना के लिए ही दो-चार रास्ते बना देना—ऐसे सीमित काम वह करती थी। जो लोक-हितकारी राजा होते थे वे प्रजा के लिए कुछ करते थे पर वह उनका व्यक्तिगत उपकार था। वे लोगों के जीवन का नियमन नहीं कर सकते थे।

अंग्रेज यहाँ आये तब तक हिन्दुस्तान में कई राजा हो चुके थे। किन्तु राष्ट्रीय कर्ज जैसी कोई भी चीज उस समय नहीं थी। माधवराव पेशवा को मरते समय यह चिन्ता थी कि उन पर जो तीन-चार करोड़ का कर्ज था वह उन्होंने राज्य के लिए ही लिया था फिर भी वह उनका व्यक्तिगत कर्ज माना गया। अन्त में नाना फड़नवीस ने कुछ साहूकार लाकर उनके जरिये वचन दिलवाया कि हम कर्ज चुकायेंगे। लेकिन आज तो कई देशों पर कर्ज है। हिन्दुस्तान के सिर पर भी है। अंग्रेजों ने यहाँ जो लड़ाइयाँ लड़ीं उनका कर्ज भी हमारे ही सिर पर है। आज जो सरकार होती है वह चाहे जैसी भी क्यों हो, देश की ही सरकार होती है।

किन्तु आज की राजनीति बहुत व्यापक हो गयी है। सारे जीवन पर उसका नियन्त्रण चलता है। आज की सरकार अगर पानी कानून बनाये, तो व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि मैं निराला जीवन बिताऊँगा। जीवन के

हरएक पहलू पर आज सरकार का नियन्त्रण बढ़ता है। यहाँ तक कि तालीम पर भी सरकार का नियन्त्रण है। पहले ऐसा नहीं था। आगे लोग तालीम देते थे वे स्वतन्त्र थे। पर आज सरकार एक पाठ्य-पुस्तक तय करती है और वही सब स्कूलों में चलती है। उस किताब में क्या होना चाहिए, इसका भी नियन्त्रण सरकार करती है। इस तरह शिक्षण जैसा विषय भी जो बिलकुल ही स्वतन्त्र होना चाहिए था आज राज्य के नियन्त्रण में है। कुछ प्राइवेट स्कूल चलते हैं पर उनमें कुछ ही विद्यार्थी आते हैं। मैंने भी एक ऐसा स्कूल चलाया था जिसमें बहुत अच्छे विद्यार्थी तैयार हुए। लेकिन आज गाँव-गाँव में जितने स्कूल बनेंगे वे सरकार के ही बनेंगे। फिर यदि सरकार कम्युनिस्ट बनी तो स्कूल में उनका तत्त्वज्ञान सिखाया जायगा। फासिस्ट शासन हो तो लड़कों को उसी तरह की तालीम मिलेगी। याने जैसी सरकार हो उसीके अनुसार लड़कों के दिमाग बनाये जाते हैं। इस तरह आजकल दिमाग बनाने की बात चलती है। इसलिए राजनैतिक विचार करने की जिम्मेवारी हरएक व्यक्ति पर आती है।

आजकल देश में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक ऐसे दो पक्ष निर्माण हुए हैं। यह एक नया जातिभेद है। हिन्दुस्तान में तो इसके साथ-साथ पुराने जातिभेद भी आते हैं। एक पार्टी ने एक जाति का मनुष्य खड़ा किया तो दूसरी पार्टीवाले भी उम्मीदवार चुनते समय जाति का ही विचार करते हैं। वोट इकट्ठा करने के लिए यह सब किया जाता है। विचार समझाना उस पर अमल हो, इसलिए धीरज रखना—यह बात आजकल नहीं रही। पहले जिस तरह तलवार से निर्णय लाया जाता था वैसे ही आजकल तलवार के बदले बहुमत से वह लाया जाता है। तलवार के बारे में कहा जाता है कि उसमें अक्ल नहीं होती इसलिए हमने उसे छोड़ दिया। लेकिन बहुमत में भी अक्ल नहीं होती। सिरों की गिनती करके निर्णय लाया जाता है। इसका नतीजा यह है कि असन्तोष पैदा होता है, कलहभावना बढ़ती है। सभी एक-दूसरे को गिराने की कोशिश करते हैं, इसी पर गाड़ी चलाई जाती है। आज यह सभी देशों में चलता है क्योंकि सर्वत्र सिरों की गिनती करके सब कुछ बनाने की बात चलती है। सिर के अन्दर क्या भरा है यह नहीं देखा जाता। मेहरबानी इतनी ही है कि

पागल को मतदान का हक नहीं दिया गया। मगर इसका इलाज क्या है—यह हम न भूलें और पक्षभेद सरकारी पक्ष विरोधी पक्ष इन दोनों में अखंड विरोध—यह सारा पश्चिम का ढाँचा हिन्दुस्तान में लाये तो यहाँ कोई भी काम न चलेगा। एक पक्ष दूसरे पक्ष के काम को बिगाड़ता ही जायगा।

पाँच बोले परमेश्वर

इसके लिए एक ही इलाज है। अपने यहाँ एक धार्मिक रिवाज है। अपने संस्कार और सभ्यता में ही यह बात है कि 'पाँच बोले परमेश्वर'। अक्सर लोग इसका सही अर्थ नहीं समझते। ग्राम-पंचायत निर्णय करें, इतना ही इसका अर्थ नहीं बल्कि यह अर्थ है कि पंचों की एक राय से जो निर्णय होगा वही माना जायगा। लेकिन आज तो चार विरुद्ध एक, तीन विरुद्ध दो—इस तरह चलता है। यह जो 'तीन बोले परमेश्वर' की बात आज चलती है यह खतरनाक है। 'पाँच बोले परमेश्वर' यह चले तभी ठीक होगा। अब भी 'क्वेकर्स' में यह चलता है। वे एकमत से ही निर्णय करते हैं। फिर इसमें और भी कई सवाल उठाये जा सकते हैं।

केन्द्रीकरण के दोष

कुछ लोग कहते हैं कि इसमें एक भी मनुष्य अड़ जाय तो सारा मामला खतम हो जाता है—इसलिए आज का बहुमत का तरीका ही ठीक है। लेकिन आजकल तो एक ही मनुष्य को चुनने के लिए लाखों लोगों का वोट लिया जाता है। इतना बड़ा सामुदायिक प्रयोग चलता है जिसमें कई बुराइयाँ पैदा होती हैं। इसलिए हमने इसके इलाज में जो बात सुझायी है वह है राज्य का विकेन्द्रीकरण। बहुत-सी सत्ता तो गाँव में ही होनी चाहिए। फिर एक गाँव का दूसरे गाँव से जो सम्बन्ध आता है उसका नियमन जिला करेगा। एक जिले का दूसरे जिले से जो सम्बन्ध आता है उसका नियमन प्रान्त करेगा और दो प्रान्तों के बीच के सम्बन्ध का नियमन केन्द्र करेगा।

लेकिन आज तो केन्द्र और प्रान्त में ही हिन्दुस्तान के हरएक गाँव के सब व्यवहारों को नियन्त्रित करने की सत्ता है। गाँववालों को कोई भी निर्णय करने का हक नहीं है। गाँव में बाहर के डॉक्टर आवें या न आवें इसे तय करने का

पागल को मतदान का हक नहीं दिया गया। मगर इसका इलाज क्या है—यह हम न ढूँढ़ें और पक्षभेद सरकारी पक्ष विरोधी पक्ष इन दोनों में अखंड विरोध —यह सारा पश्चिम का ढाँचा हिन्दुस्तान में लायें तो यहाँ कोई भी काम न चलेगा। एक पक्ष दूसरे पक्ष के काम को बिगाड़ता ही जायगा।

पाँच बोले परमेश्वर

इसके लिए एक ही इलाज है। अपने यहाँ एक धार्मिक रिवाज है। अपने संस्कार और सभ्यता में ही यह बात है कि 'पाँच बोले परमेश्वर'। अक्सर लोग इसका सही अर्थ नहीं समझते। ग्राम-पंचायत निर्णय करें, इतना ही इसका अर्थ नहीं बल्कि यह अर्थ है कि पंचों की एक राय से जो निर्णय होगा वही माना जायगा। लेकिन आज तो चार विरुद्ध एक तीन विरुद्ध दो—इस तरह चलता है। यह जो 'तीन बोले परमेश्वर' की बात आज चलती है, वह बाहरलाक है। 'पाँच बोले परमेश्वर' यह चले तभी ठीक होगा। अब भी 'क्वेकर्स' में यह चलता है। वे एकमत से ही निर्णय करते हैं। फिर इसमें और भी कई सवाल उठाये जा सकते हैं।

केन्द्रीकरण के दोष

कुछ लोग कहते हैं कि इसमें एक भी मनुष्य अड़ जाय तो सारा मामला खतम हो जाता है—इसलिए आज का बहुमत का तरीका ही ठीक है। लेकिन आजकल तो एक ही मनुष्य को चुनने के लिए लाखों लोगों का वोट लिया जाता है। इतना बड़ा सामुदायिक प्रयोग चलता है, जिसमें कई बुराइयाँ पैदा होती हैं। इसलिए हमने इसके इलाज में जो बात सुझायी है वह है राज्य का विकेन्द्रीकरण। बहुत-सी सत्ता तो गाँव में ही होनी चाहिए। फिर एक गाँव का दूसरे गाँव से जो सम्बन्ध आता है उसका नियमन जिला करेगा। एक जिले का दूसरे जिले से जो सम्बन्ध आता है, उसका नियमन प्रान्त करेगा और दो प्रान्तों के बीच के सम्बन्ध का नियमन केन्द्र करेगा।

लेकिन आज तो केन्द्र और प्रान्त म ही हिन्दुस्तान के हरएक गाँव के सब व्यवहारों को नियंत्रित करने की सत्ता है। गाँववालों को कोई भी निर्णय करने का हक नहीं है। गाँव में बाहर के डॉक्टर आयें या न आयें इसे तय करने का

नहीं रहेगा। सारा अधिकार गाँव को रहेगा और गाँव में पंचायत का काम 'पाँच बोले परमेश्वर' के नियम से ही होगा।

इस पर यह शंका की जाती है कि इस योजना में एक भी मनुष्य अड़ा रहेगा तो कोई निर्णय नहीं हो सकेगा। लेकिन जो ग्राम-पंचायत इस तरह कोई निर्णय न कर सकेगी तो वह समाप्त हो जायगी और दूसरी ग्राम-पंचायत चुनी जायगी। ऐसी हालत में सभीको आपस में सलाह करके एकमत से राय देने की प्रेरणा होगी। पहले के जमाने में लोग इस तरह राय देते थे जैसे आज की 'कैबिनेट' का काम चलता है। अगर हम यह करते हैं तो सारी व्यवस्था अहिंसा की होती है। किसीको असन्तुष्ट होने का मौका नहीं आता। देश में सबकी अक्ल का उपयोग होता है और काम करते समय कुछ बिगड़ा तो दो-चार गाँव का बिगड़ता है सबका नहीं।

आज किसी एक की इस्तिफा या मृत्यु के लिए 'बाई-इलेक्शन' (उपनिर्वाचन) होते हैं। फिर से चुनाव के लिए हजारों लोग काम करते हैं, हजारों रुपया खर्च होता है। कितना समय बरबाद होता है और लोगों में कितना भेद भाव फैलता है! गाँव-गाँव में भेद और बैर पैदा हो जाता है। अगर हम यह सारा टालना चाहते हैं तो हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे महत्त्वाकांक्षी लोगों के हाथों में सत्ता न रहे, यह समझ लें। किसी एक के या चार लोगों के ही हाथ में सत्ता रहने से वे दुनिया का भला कर सकते या बिगाड़ सकते हैं। इसके लिए एक ही उपाय है : (१) गाँवों के हाथ में सारी सत्ता होनी चाहिए और (२) ग्राम-पंचायतों का काम 'पाँच बोले परमेश्वर' के न्याय से चलना चाहिए। यही सर्वोदय है। 'सर्वोदय' का मतलब है कि गाँव की ही सत्ता चले और गाँव का जो निर्णय हो, वही सबका निर्णय हो। यही सच्चा और अहिंसक स्वराज्य होगा।

कहीं एकमत से, तो कहीं बहुमत से निर्णय

'बहुमत' और 'अल्पमत' का सवाल कृत्रिम है। आज जो लोकतन्त्र चलता है उसीने यह सवाल पैदा किया है। अगर हम मुक्त होना चाहते हों,

जिसे 'फेडरेशन' (संघ) कहते हैं, वैसी चार लाख देहातों की एक सम्मिलित सरकार निर्माण होनी चाहिए। इसमें सब गाँव अपनी-अपनी अक्ल से काम करेंगे केन्द्र सिर्फ सलाह देगा। उसे मानना न मानना गाँववालों की इच्छा पर निर्भर होगा। इसमें कुछ गाँववालों ने ठीक काम न किया तो दो चार गाँवों का काम बिगड़ेगा। पर आज काम बिगड़ा तो सारे राज्य का ही बिगड़ेगा। घर में रोटी बनाने में कुछ रोटियाँ बिगड़ जायँ तो भी बाकी सब अच्छी ही रहती हैं लेकिन 'बेकरी' में काम बिगड़ गया तो सब रोटियाँ बिगड़ जाती हैं। पहले राजा लोगों के हाथों में सत्ता होते हुए भी जो नुकसान नहीं होता था वह आज हो रहा है क्योंकि पुराने राजाओं के हाथ में सब-का-सब बिगाड़ने या बनाने की सत्ता नहीं थी जो आज की सरकार के हाथ में है। इसलिए आज की सरकार सब-का-सब बिगाड़ सकती है। पाँच साल बाद चुनाव होते हैं और उसमें नयी सरकार भी आ सकती है। लेकिन पुरानी सरकार ने जो किया वह नयी सरकार को आगे चलाना पड़ता है। नयी सरकार पुरानी सरकार के वचनों से बाध्य रहती है। अगर आज की सरकार ने विदेशियों के साथ व्यापार-विषयक कुछ करार किये तो आगे आनेवाली सरकार को उन्हें चलाना पड़ता है। इससे छुटकारा पाने के लिए रक्तरंजित क्रान्ति ही करनी पड़ती है। लेकिन ऐसी क्रान्तियाँ बार-बार नहीं होतीं। इस प्रकार आज सरकार के हाथ में सारी सत्ता इस तरह केन्द्रित हुई है कि मामला सुधरा तो सारा-का-सारा सुधरेगा और बिगड़ा तो सारा-का-सारा बिगड़ जायगा। इसलिए विकेन्द्रीकरण आवश्यक है।

सर्वोदय-रचना के दो सिद्धान्त

सर्वोदय रचना में हर गाँव में एक ग्राम-पंचायत होगी और प्रान्त के लिए प्रतिनिधि चुनने का हक ग्राम-पंचायत को होगा। ग्राम-पंचायत के ही हाथ में सारी सत्ता रहेगी और ऊपर की सरकार के हाथ में नाममात्र की सत्ता होगी। ऊपर की सरकार तो सिर्फ सलाह देगी और केवल राज्य विदेशों के साथ व्यवहार आदि पर उसका नियंत्रण रहेगा। इससे आज महत्त्वाकांक्षी लोगों को सत्ता हासिल करने में जितना अधिक उत्साह मालूम होता है उतना फिर नहीं मालूम होगा क्योंकि तब राज्य या केन्द्र के हाथ में कुछ अधिकार ही

रहा तो हिन्दुस्तान की प्रगति नहीं हो सकती क्योंकि इस देश के लोग प्रवृत्ति शील नहीं हैं। देश में बहुत आलस्य भरा है।

विचार-मंथन अवश्य हो

हरएक को विचार-प्रचार करने का पूरा हक होना चाहिए। मंथन से नवनीत निकलता है। किन्तु आजकल तो कार्यक्रम का ही मंथन चलता है और उससे जनता निष्क्रिय और हताश होती है। हमें जैसे-जैसे राज्य का अधिक अनुभव होगा वैसे-ही-वैसे यह मालूम होगा कि जनता में बुद्धिभेद पैदा न करना चाहिए। कोई एक छोटा-सा ही कार्यक्रम उठाना चाहिए, जिसमें सब एकमत हों। मुझे इस बात की खुशी है कि भूदान-यज्ञ में सब एकमत हैं। इसलिए इतना ही कार्यक्रम लोगों के सामने रखा जाय और वह पूरा किया जाय। इस तरह एक-एक कार्यक्रम पूरा करते हुए आगे बढ़ें। हिन्दुस्तान में चुनाव का इतना बड़ा काम तीन-चार महीने में ही खतम हो गया क्योंकि सभी लोग उसमें लग गये थे। यद्यपि हम निष्क्रिय हैं, फिर भी सब लोगों ने मिलकर उसे पूरा किया। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि उस चुनाव में दूसरे देशों की तुलना में बुराइयाँ कम हुई और देश ने एक अच्छा काम किया। इस तरह हम एक-एक कार्यक्रम एक-एक अमली काम उठाते जायँ और उसे पूरा करते जायँ तो देश का भला होगा नहीं तो भिन्न-भिन्न मतों के साथ भिन्न-भिन्न कार्यक्रम भी होंगे। फिर कार्यक्रमों में टक्कर हुई, तो देश आगे नहीं बढ़ सकेगा।

नेतरहाट (बिहार)
११ १ ५२

लोकशाही की बुनियाद २१ :

इन दिनों हिन्दुस्तान में जो बहुत से मसले पैदा हुए हैं, उनके बारे में मैं सोचता रहा हूँ लेकिन मेरा विश्वास हो गया है कि अब सियासत (राजनीति) में जो लोग पड़े हुए हैं या पड़ेंगे उनमें वह शक्ति नहीं है कि मसले हल करें। उनमें वह शक्ति आ सकती है, अगर भगवान् उन्हें सियासत को छोड़ने की

तो सत्ता का विकेन्द्रीकरण कर ग्रामों में 'पांच बोले परमेश्वर' के न्याय से काम चलाना होगा। इस पर यह सवाल उठाया जाता है कि "यह गांव तक के लिए तो ठीक है, पर गांव की तरफ से जो प्रतिनिधि प्रान्त के लिए चुने जायेंगे वे तो बहुमत से निर्णय करेंगे? बीच के समय के लिए यह चलेगा। परन्तु वे इस तरह से चुने जायेंगे कि उन्हें आदत ही ऐसी पड़ेगी कि विधानसभाओं के मुख्य निर्णय एकमत से किये जायें। जीवन की मुख्य बातों—जैसे खाना कपड़ा तालीम—की सत्ता तो गांव में ही रहेगी। फिर जो दूसरी मामूली बातें हैं उनमें बहुमत से निर्णय हुआ तो किसीके हित की हानि नहीं। उसमें कोई भी एसी बात नहीं होगी कि अल्पमतवालों के दिलों में रंज पैदा हो। अगर वहां अन्न तालीम आदि मुख्य विषयों में मतभेद होता है, बहुमत की बात चलती है और अल्पमत की नहीं चलती तो अल्पमतवालों को दुःख होता है। फिर आघात-प्रतिघात चलता है। वहां प्रान्त के हाथ में गौण विषय हैं, वहां बहुमत से निर्णय हो तो कोई हर्ज नहीं। उसमें भी ऐसे नियम हो सकते हैं कि कुछ विषयों के लिए ७ या ८ फी सदी मत अवश्य होने चाहिए। आखिर समाज को यह आदत डालनी ही चाहिए कि एकमत से निर्णय हो।

केन्द्र का निर्णय तो एकमत से ही होगा। आज भी वहीं होता है। मन्त्रि मण्डल में बड़े-बड़े मसलों पर एकमत से ही फैसला किया जाता है। मतभेद हो तो फैसला नहीं होता सिर्फ चर्चा चलती है। इसलिए केन्द्र के बारे में तो कोई चिन्ता ही नहीं है।

विचार भिन्न हों आचार एक

इस तरह गांवों और केन्द्र के बारे में तो चिन्ता ही नहीं है और प्रान्त में भी जो लोग चुनकर आयेंगे उन्हें एकमत से निर्णय करने की आदत होगी। इसमें सार्वजनिक हित का बुनियादी विचार यह है कि आज देश में भिन्न-भिन्न पार्टियां हैं। इस हालत में कोई भी देश प्रगति करना चाहता हो तो ऐसा कोई एक कार्यक्रम निकालना चाहिए, जिसमें सब पक्षों की एक राय हो। विचार में मतभेद हो परन्तु आचार में सबकी राय एक हो। ऐसा एक कार्यक्रम सबको मंजूर हो, तो मिलकर ही प्रगति होगी। लेकिन अगर कार्यक्रम में ही मतभेद

लोकशाही की ओर खतरा

आज हमारे सियासी ढंग से सोचनेवाले नेता जो भी सवाल पेश करते हैं, उसमें उनके कोई हेतु होते हैं, ऐसा मान कर लोग उनके विषय में सशंक रहते हैं। आज फिर से यह हालत हो गयी है कि हिन्दुस्तान में सियासी नेताओं के शब्दों के लिए लोगों के मन में शंका उठ गयी है। जहाँ यह हालत है वहाँ देश की शक्ति आगे बढ़ने का रास्ता रुक जाता है। अभी केरल के मामले में क्या हुआ आपने देखा। ऐसे ही दूसरे कई मामलों में हुआ है। इन मामलों में जो-जो बनाव बनते हैं, उसकी सफाई में जो-जो कहा जाता है, वह ठीक ही कहा जाता है, जैसा होता है वैसा ही कहा जा रहा है, जो कहा जाता है वही कहनेवालों के मन में होता है, ऐसा विश्वास लोग नहीं रखते हैं। हमारे ऊँचे से-ऊँचे नेताओं के लिए भी आज यह विश्वास नहीं रहा है। यहाँ तक शब्द शक्ति क्षीण हो चुकी है। मैं मानता हूँ कि डमोक्रेसी के लिए लोकशाही के लिए यह बहुत ही खतरनाक बात है।

लोकशाही सिर्फ कोई बाहरी योजना नहीं है। उसमें शब्द-शक्ति का अधिष्ठान बहुत महत्त्व रखता है। जहाँ हम हर मनुष्य को मतदाता मानते हैं और हरएक के लिए एक ही वोट का अधिकार मानते हैं वहाँ हम बहुत ही बुनियादी विश्वास पर काम करते हैं यानी सबमें एक मानव-आत्मा है और उस मानव-आत्मा की कीमत समान है यह बुनियादी विश्वास लोकशाही के मूल में है। मानव-आत्मा की योग्यता का नाप हम कम-बेसी नहीं कर सकते हैं समान ही कर सकते हैं यह विश्वास जो वेदान्त में है वही लोकशाही के मूल में है। वह सारा का सारा बुनियादी विचार ही खत्म हो जाता है जहाँ शब्द शक्ति कुण्ठित हो जाती है। राजनीति में सबसे बड़ी हानि यही होती है कि उसमें शब्द-शक्ति कुण्ठित होती है फिर बाद का राजनीति किसी भी ढंग की हो।

हमें समझना चाहिए कि जहाँ शब्द-शक्ति कुण्ठित हो जाती है वहाँ शस्त्र शक्ति के सिवाय तीसरी कोई शक्ति सामने नहीं आ सकती। आज दुनिया के कई देशों में जो राज चला है वह शस्त्र-शक्ति का ही। उसका और कोई कारण नहीं है सिवाय इसके कि शब्द-शक्ति कुण्ठित हो रही है। यानी देश

शक्ति दे। लेकिन जब तक सियासत को कोइम का विचार उनके मन में नहीं आता है, तब तक नतीजा नहीं होगा कि किसी भी शख्स के शब्द पर देश में श्रद्धा बनी नहीं रहेगी। देश में श्रद्धा का न होना शब्द की श्रद्धा को जाना, एक बहुत बड़ी ताकत को खोना है।

शब्द-शक्ति की प्रतिष्ठा

मुझे याद है कि जब रोलेट एक्ट के खिलाफ आन्दोलन चल रहा था, उस वक्त बापू को पंजाब जाने से रोका गया था तब हिन्दुस्तान में दंगे-फसाद शुरू हुए और ऐसे काम हुए कि गांधीजी के दिल को धक्का पहुँचा। उस वक्त हम साबरमती आश्रम में थे। अहमदाबाद शहर में भी उस वक्त दंगे हुए, तो हम वहाँ के लोगों को समझाने लगे कि "भाइयो गांधीजी का विचार यह नहीं था जो आप कर रहे हैं। जिन्होंने ये दंगे करने में हिस्सा लिया वे बुजुर्ग थे और हम तो लड़के थे। उन भाइयों ने हमें जवाब दिया कि "धर्मराज मूँ बोले एनो अर्थ तो भीम जाणे'—याने युधिष्ठिर क्या बोलता है, इसका अर्थ तो भीम जानता है। याने राजनैतिक नेता जो बोलते हैं, उसका अर्थ दूसरे ढंग से करना होता है, ऐसा तब तक माना गया था। सियासत में अक्सर यह कहा जाता है कि उत्तम राजनैतिक नेता वह है जिसके शब्दों के अनेकविध अर्थ निकलते हैं। जैसे वेदों के मन्त्रों के अनेकविध अर्थ होते हैं, वैसे ही उसके मन में एक अर्थ छुपा हुआ होता है और दूसरा प्रकट होता है। इस तरह जो नेता कर सकता है वही वास्तव में अक्लमन्द नेता है ऐसा माना जाता है। गांधीजी के लिए भी उन लोगों ने माना कि उनकी अहिंसा की बात ऊपर ऊपर की होगी। देश हिंसा के लिए तैयार नहीं है, इसलिए उन्हें अहिंसा की भाषा बोलनी पड़ती है ताकि कानून के पंजे में हम न आयें लेकिन वास्तव में हिंसा करना ही ठीक है। इस तरह लोग मानते थे लेकिन जब बापू ने कम दंगों के बाद उपवास किये उन्हें धक्का हुआ तो उन उपवासों का परिणाम यह हुआ कि बापू के लिए यह विश्वास जनता में पैदा हुआ कि यह शख्स जो बोलता है वही उसके मन में है। याने शब्द-शक्ति काम करने लगी। तब तक शब्द-शक्ति काम ही नहीं करती थी।

लोकशाही को खतरा

आज हमारे सियासी दल से ताल्लुक रखनेवाले नेता जो भी बयान पेश करते हैं, उसमें उनके कोई हेतु होते हैं ऐसा मान कर लोग उनके विषय में शंकाकुल रहते हैं। आज फिर से यह हालत हो गयी है कि हिन्दुस्तान में सियासी नेताओं के शब्दों के लिए लोगों के मन में शंका उठ गयी है। जहाँ यह हालत है, वहाँ देश की शक्ति आगे बढ़ने का रास्ता रुक जाता है। अभी केरल के मामले में क्या हुआ आपने देखा। ऐसे ही दूसरे कई मामलों में हुआ है। इन मामलों में जो जो बनाव बनते हैं उसकी सफाई में जो-जो कहा जाता है, वह ठीक ही कहा जाता है जैसा होता है वैसा ही कहा जा रहा है जो कहा जाता है वही कहनेवालों के मन में होता है ऐसा विश्वास लोग नहीं रखते हैं। हमारे ऊँचे से-ऊँचे नेताओं के लिए भी आज यह विश्वास नहीं रहा है। यहाँ तक जनशक्ति क्षीण हो चुकी है। मैं मानता हूँ कि डेमोक्रेसी के लिए, लोकशाही के लिए यह बहुत ही खतरनाक बात है।

लोकशाही सिर्फ कोई बाहरी योजना नहीं है। उसमें जन-शक्ति का अधिष्ठान बहुत महत्त्व रखता है। जहाँ हम हर मनुष्य को मतदाता मानते हैं और हरएक के लिए एक ही वोट का अधिकार मानते हैं वहाँ हम बहुत ही बुनियादी विश्वास पर काम करते हैं यानी सबमें एक मानव-आत्मा है और उस मानव-आत्मा की कीमत समान है यह बुनियादी विश्वास लोकशाही के मूल में है। मानव-आत्मा की योग्यता का माप हम कम-बेशी नहीं कर सकते हैं समान ही कर सकते हैं यह विश्वास जो बुनियाद में है वही लोकशाही के मूल में है। वह सारा का सारा बुनियादी विचार ही नष्ट हो जाता है जहाँ जन-शक्ति कुंठित हो जाती है। राजनीति में सबसे बड़ी हानि यही होती है कि उसमें जन-शक्ति कुंठित होती है फिर चाहे वह राजनीति किसी भी ढंग की हो।

हमें समझना चाहिए कि जहाँ जन-शक्ति कुंठित हो जाती है वहाँ लश्कर-शक्ति के सिवाय तीसरी कोई शक्ति सामने नहीं आ सकती। आज दुनिया के कई देशों में जो राज चला है वह लश्कर-शक्ति का ही। उसका और कोई कारण नहीं है सिवाय इसके कि जन-शक्ति कुंठित हो रही है। अपने देश

इस पर मैंने विनोद में कुछ कहा था जिसे मैं यहाँ दुहराना चाहता हूँ क्योंकि उस विनोद को मैं व्यर्थ या अप्रस्तुत नहीं मानता हूँ बल्कि सार्थ और एकार्थ मानता हूँ। मैंने कहा था कि आज के जमाने में जब कि मनुष्य के विचार बहुत आगे बढ़े हुए हैं और फ्रांस जैसे राष्ट्र भी लश्कर के हाथ में जाते हैं, उसकी वजह यही है कि वह शस्त्र-शक्ति को खोजे हुए है। समस्त जनता इस स्थिति से मुक्त होना चाहती है और यह तो मानना ही होगा कि मिलीटरी का राज्य पराभूत राज्य होता है, यद्यपि वह अहिंसक नहीं होता है। लेकिन आज दुनिया में अहिंसक राज्य है कहाँ? यह मानना कि अहिंसक राज्य के नजदीक-से-नजदीक अगर कोई व्यवस्था है तो आज जो लोकशाही चल रही है वही है—बावजूद उसकी खामियों के वही व्यवस्था अहिंसक व्यवस्था के नजदीक है—यह मानना एक अर्थ में गलत न हो लेकिन दूसरी दृष्टि से निरर्थक है। मैं खाने बैठा हूँ और मेरी थाली में ईंट परोसी गयी है। मुझसे कहा जाता है कि रोटी से पत्थर जितना दूर होता है उतनी दूर ईंट नहीं है। पत्थर की बनिस्बत ईंट रोटी से कुछ नजदीक की चीज है। तब इसका क्या जवाब है? यही न कि हम खाने के लिए बैठे हैं तो हमें रोटी ही चाहिए। पत्थर की तुलना में ईंट रोटी के नजदीक की चीज होगी पर खाने का जहाँ तक ताल्लुक है वैसा मानने में कोई सार नहीं है। इसलिए जहाँ शस्त्र-शक्ति कुंठित हुई, वहाँ आधार सत्य-शक्ति का ही होगा इसे हमें समझना चाहिए। अगर हम चाहते हैं कि सत्य-शक्ति का आधार न रहे तो सिर्फ लोकशाही के बाहरी ढाँचे की दुहाई देने से काम नहीं चलेगा। हमें यह करना होगा कि शस्त्र-शक्ति मानें परस्पर विश्वास की शक्ति बनी रहे।

यह शक्ति तभी बनी रहेगी जब हमारे प्रश्न मन के स्तर से नहीं उससे ऊँचे स्तर से निकलें। तिब्बत के मामले के सिलसिले में मैंने कई बार कहा है कि इन दिनों हमारे जो मसले बनते हैं, वे अन्तर्राष्ट्रीय होते हैं यानी उनमें दूसरी बाजू भी होती है इसका हमें खयाल रखना चाहिए। इसलिए इस बात की बहुत जरूरत है कि हमारा मन क्षोभ का अनुभव न करे। अक्षोभ्यता की आज बहुत जरूरत है, विज्ञान के जमाने में यह एक शक्ति है। अगर हमारे चिन्तन में कहीं क्षोभ रहा तो उसके साथ आसक्ति आयेगी और हम क्रोध

ऐसी बात बोलेंगे जो मानसिक स्तर की होगी। और मानसिक स्तर की जो भी बात बोली जायगी उसकी दूसरी भी बाजू होगी। और उस बाजू से भी मानसिक स्तर पर से ही बोला जायगा। पुराने जमाने में बहुत-सी बातों का पता नहीं चलता था इसलिए क्षोभ नहीं होता था। लेकिन आज सब पता चलता है फिर भी क्षोभ नहीं होना चाहिए। जैसे तुकाराम ने कहा था "हे भगवन् ज्ञानोत्तर अज्ञान याने ज्ञान के बाद भी अज्ञान रहने दे!" जानकारी के बाद भी चित्त की अक्षोभ्य दशा हो ऐसा होगा तभी इस जमाने में मसले हल होंगे नहीं तो कोई हल नहीं होंगे।

हृदयका परिवर्तन

अगर हम इस बात को महसूस करें और हमारा मानवता का जो मूलभूत विश्वास है उसे हम नहीं खोयें तो मसले हल हो सकते हैं।

परिवर्तन-शक्ति पर हमारा विश्वास होना चाहिए और परिवर्तन में जैसे सामनेवाले के परिवर्तन की बात आती है वैसे ही हमारे भी परिवर्तन की बात आती है। हम उसका परिवर्तन करेंगे इसमें हम मानते हैं, वैसे ही वह भी हमारा परिवर्तन कर सकेगा इसमें मानना चाहिए। हम उसका परिवर्तन करनेवाले हैं और हमारा हृदय सर्वथा अपरिवर्तनीय है ऐसा नहीं मानना चाहिए। बल्कि हमारे भी हृदय में कई खामियाँ पड़ी हैं जो पैदा होते हैं, यह मानना चाहिए और शान्त मन से सोचना चाहिए कि हमारा भी परिवर्तन हो सकता है।

इस तरह मान कर हम चलें तो मसले हल हो सकते हैं। इसी को मैं भारी भाषा में कहता हूँ कि मन के ऊपर उठकर सोचना चाहिए। इन दिनों बार-बार मेरे मन में यह विचार आता है कि हमें समझना चाहिए कि इस जमाने में क्षोभ के लायक कोई समस्या पैदा नहीं हुआ है। वह पुराना जमाना था जब कि मसले पैदा होते थे, उनकी जानकारी नहीं होती थी और जब जानकारी हो जाती थी तो क्षोभ पैदा होता था। आज हमें हर चीज की जानकारी हासिल होती है। इसलिए यह जरूरी है कि क्षोभ न हो और हमें समझना चाहिए कि कोई भी मसला आमने-सामने बैठकर हल हो सकता है। उसमें लेन-देन हो सकती है।

सत्याग्रही नहीं सत्यग्राही !

दोनों बाजू मन ही काम करता रहेगा तो मसला हल नहीं होगा। हमने राज्य-पुनर्रचना के मामले में जो हुआ वह सब देखा है। उस वक्त हर प्रान्त दावा करता था कि फलानी जगह हमारी ही है। एक प्रान्त के कुछ लोग एक ओर और दूसरे प्रांत के कुछ लोग दूसरी ओर, यह हमने देखा है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी उसी तरह दावे और प्रति-दावे पेश होंगे। लेकिन हर हालत में हमारे मन में यह हो कि जैसे हम परिवर्तन कर सकते हैं, वैसे सामनेवाला भी हमारा परिवर्तन कर सकता है और क्षोभ का कोई कारण नहीं है।

हममें आज जो सत्याग्रही हो वह अक्षोभ्य हो। उसे मन अक्षुब्ध रखना चाहिए। सत्याग्रही की कसौटी है अक्षोभ्यता। उसके सत्य के कारण सामने वाले के मन में भी अक्षोभ पैदा होना चाहिए। वह सत्याग्रही नहीं सत्यग्राही हो। सत्यग्राही वह होगा जो सत्य का दावा नहीं छोड़ेगा, लेकिन सामनेवाले के पास सत्य है ही नहीं ऐसा नहीं मानेगा बल्कि उसके पास भी सत्य हो सकता है, ऐसा मानेगा।

सत्य का एक अंश मेरे पास है, जिसे मैं नहीं छोड़ूँगा, लेकिन दूसरा अंश सामनेवाले के पास हो सकता है यह मानना चाहिए। यह अंश कम-बेशी हो सकता है। उसकी चर्चा धीरे-धीरे तटस्थ बुद्धि से की जा सकती है। ऐसा सत्यग्राही समाज बनाना है। सत्यग्राही वह होगा जो सत्य को ग्रहण करने वाला उससे चिपका रहनेवाला होगा। अपने पास सत्य का जो अंश है, उसे न छोड़नेवाला होगा और सामनेवाला के पास जो सत्य का अंश है, उसे ग्रहण करने की उसकी तैयारी होगी। ऐसा सत्यग्राही मन और समाज हम बनाना चाहते हैं। यह सत्यग्राही शब्द मुझे बंगाल और उड़ीसा के भक्ति-साहित्य में चलनेवाले भावग्राही शब्द से सूझा। उसमें कहा गया है कि भगवान् भावग्राही होते हैं भाव को ग्रहण करते हैं। मैं शब्द की खोज में था तो मुझे यह नया सत्यग्राही शब्द सूझा जिससे मुझे तसल्ली हुई। मैं चाहता हूँ कि हम सब सत्यग्राही बनें। इसमें अपने सत्य के साथ चिपके रहने और सामनेवाले के पास जो सत्य है, उसको ग्रहण करने की तैयारी रखने की जो बात है, वह मन के ऊपर उठे बगैर संभव नहीं है।

मेरे पास है वही सत्य है सामनेवाले के पास सत्य नहीं है ऐसी वृत्ति में से युद्ध पैदा होता है। ऋग्वेद में युद्ध के लिए कई शब्द आये हैं, उनमें एक शब्द है—'मम सत्यम्'। भास्कराचार्य ने कहा है 'मम सत्य युद्धम्' युद्ध याने 'मम सत्य'। हमने देखा कि पिछले महायुद्ध में दोनों बाजू ईसाई राष्ट्र थे जो अपनी फतह हो इसलिए परमेश्वर के पास मदद माँगते थे। दोनों पक्ष युद्ध में तेरी मदद माँगते हैं, ऐसा ऋग्वेद में भी आता है। उसमें युद्ध के लिए 'मम सत्य' शब्द आया है। सत्य मेरा ही है सामनेवाले का सत्य नहीं है—सत्य मेरे बाप की जायदाद है, सामनेवाले का उस पर कोई हक नहीं है—इस तरह जब आप सोचते और मानते हैं, तो लड़ाई के सिवाय गति नहीं है। फिर उस लड़ाई को आप निःशस्त्र लड़ाई का रूप दें तो भी वह सत्याग्रह नहीं कहला सकेगा।

हमारी जमात की इस तरह की सत्याग्रही वृत्ति रहे, तो हमारी जमात छोटी होने पर भी हिन्दुस्तान की बहुत सेवा करेगी। आपकी जमात एक ऐसी जमात हो कि जिसके शब्दों पर कौम विश्वास रखे। हम और कुछ कर पायें या न कर पायें यह दूसरी बात है लेकिन कौम हमारे शब्दों पर विश्वास ही रखते हैं इतना भी हम कर सके तो अहिंसा के लिए, सर्वोदय के लिए और मसले हल करने के लिए कुछ-न-कुछ राह निकल सकेगी।

पठानकोट (पंजाब)
२१-९ ५६

सर्व सेवा संघ की बैठक में किया गया प्रवचन

स्वशासन की स्थापना २२

[नवजीवन-मंडल प्रशिक्षण शिविरार्थियों के बीच किया गया प्रवचन]

हमारी सेवा की बुनियाद में मुख्य वस्तु यह है कि आज दुनिया केन्द्रित शासन की पकड़ में जकड़ी हुई है। केन्द्रित शासन रखकर वह हिंसा से बचने के उपाय के बारे में सोच रही है क्योंकि हिंसा से बुरे परिणाम अधिक और अच्छे परिणाम कम हो रहे हैं। जब विज्ञान बढ़ा नहीं था तब हिंसा से यद्यपि

हानियाँ होती थीं तो भी कुछ तात्कालिक लाभ भी होते थे। लेकिन आज विज्ञान बढ़ा हुआ है, इसलिए हिंसा के हथियार अत्याचारी हो गये हैं। वे मनुष्य के बस में नहीं रहे। इसीलिए दुनियाभर के राजनीतिज्ञ सोच रहे हैं कि कुछ ऐसी चीज निकलनी चाहिए, जिससे लड़ाइयाँ बंद हों। बीच में 'शान्ति की स्थापना कैसे हो?' इस बारे में सोचने के लिए यूरोप में एक परिषद् बुलायी गयी थी जिसमें दुनिया के चार बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि इकट्ठा हुए थे जो एक-दूसरे को अपना दुश्मन समझते थे और आज भी नहीं समझते ऐसी बात नहीं है। उन्होंने काफी कोशिश की। उन्हें कुछ विश्वास हो गया जो पहले नहीं था कि दोनों ओर शान्ति की इच्छा और आकांक्षा काफी है। इसलिए शांति स्थापित हो सकती है। हम सब जानते हैं और दुनिया भी जानती है कि इस तरह का वातावरण तैयार करने में इस देश का कुछ हाथ रहा। फिर भी यह अल्प हाथ रहा मुख्य हाथ तो विज्ञान का रहा है जिसने मनुष्य के सामने एक बड़ी समस्या खड़ी की है। इसलिए कुछ-न-कुछ बातें चलेंगी हालत सुधरती जायगी और शान्ति की राह निकलेगी।

अशान्ति का कारण केन्द्रित सत्ता

जब हम सारी दुनिया के इतिहास की ओर देखते हैं—जो लड़ाइयों से भरा हुआ है—तो उसमें ज्यादा समय शान्ति का ही दिखाई देता है। लेकिन वह लड़ाइयों से भरा इसलिए दीखता है कि शान्ति के काम मनुष्य-स्वभाव के अनुकूल होने से वह उसका ज्यादा बोलबाला नहीं करता। बातचीत करके शांति का कुछ रास्ता निकल पड़े तो भी यह भरोसा नहीं कर सकते कि दस वर्ष के बाद भी शांति रहेगी। वास्तव में शान्ति तब तक स्थापित नहीं हो सकती जब तक केन्द्रित शासन कायम है और हर राष्ट्र में केन्द्रित सत्ता चल रही है। अगर केन्द्रित सत्ता का अर्थ यह होता हो कि केन्द्र में कुछ नीतिमान् लोग हैं वे लोगों को सलाहभर देते हैं—लोग उनकी सलाहभर लेते हैं—लोग गाँव-गाँव में अपना काम चलाते हैं और जब उनकी सलाह की जरूरत हो तो वह लेते हैं तब वे भी सलाह देते हैं। परन्तु अपनी सलाह का कोई आग्रह नहीं

रखते। किन्तु यह सलाह भाव से मुक्त और नीति से प्रेरित सलाह हो तो सब लोग उसे ग्रहण करते हैं और न हो तो नहीं ग्रहण करते—तो यह केन्द्रित शासन नहीं रहता बल्कि विकेन्द्रित शासन का ही एक प्रकार बन जाता है।

स्वशासन के दो पहलू

हमें यह समझना होगा कि जनता को न सिर्फ 'सुशासन' के लिए, बल्कि 'स्वशासन' के लिए तैयार करना है। स्वशासन के दो पहलू हैं (१) विकेन्द्रित सत्ता यानी सारी सत्ता गाँव-गाँव में बँटी होनी चाहिए और गाँव के लोगों को गाँव का कारोबार खुद चलाना चाहिए और (२) हम हिंसा में बिल्कुल हरगिज नहीं मानते प्रेम और अहिंसा में ही मानते हैं—इस तरह का विचार इस तरह का मानसशास्त्र और तत्त्वज्ञान लोगों में चलाना। अपना राज्य खुद चलाने की पहली बात में जहाँ तक गाँव का राज्य चलाने से ताल्लुक है, सारा कारोबार एकमत से चलाया जायगा पक्षभेद न रखेंगे। गाँव में इक्कीस साल से ऊपर के सभी लोगों की एक साधारण समिति (जनरल बॉडी) बनेगी। उन्हीं लोगों की तरफ से एक कार्यकारिणी समिति (एक्जीक्यूटिव कमेटी) चुनी जायगी जिसमें पाँच सात या दस लोग होंगे। यह कार्यकारिणी समिति गाँव का कारोबार चलायेगी। पर उसके प्रस्ताव एकमत से होंगे तभी काम चलेगा। ग्रामसभा के हाथ में उतनी कुल-की-कुल शक्ति होनी चाहिए, जितनी एक स्टेट के हाथ में होती है। गाँव में बाहर से कौन-सी चीज लाना जितनी लाना और गाँव से कौन-कौन-सी चीज बाहर भेजना किन चीजों पर रोक लगाना आदि सारी शक्ति गाँव के हाथ में होनी चाहिए। स्वशासन का यह पहला अंग है। दूसरा अंग यह है कि गाँव में जितने लोग होंगे वे तय करेंगे कि हम जहाँ तक हो सके अपनी आवश्यकताओं के विषय में स्वावलम्बी बनेंगे। मान लीजिये कि गाँव की एक ग्रामसभा और कार्यकारिणी समिति बनी पर गाँववालों ने तय किया कि हम सिर्फ खेती ही करेंगे और बाकी सारी चीजें बाहर से पैसा दे कर मँगवायेंगे तो 'ग्रामराज्य' न होगा। इस तरह अनुशासन और स्वावलम्बन दोनों मिलकर ग्राम-सत्ता होती है। दोनों मिलकर स्वशासन का एक विभाग होता है।

अहिंसाधिष्ठित तत्त्वज्ञान, शिक्षण-शास्त्र, मानस-शास्त्र

स्वसाधन का दूसरा विभाग यह है कि लोगों के तत्त्वज्ञान, शिक्षण-शास्त्र और मानस-शास्त्र में अहिंसा का सिद्धान्त दाखिल होना चाहिए। 'आत्मा से देह भिन्न है और देह से आत्मा भिन्न। हम देहस्वरूप नहीं, आत्मस्वरूप हैं। इसलिए इस देह पर कोई हमला करे, तो हम उसकी परवाह न करेंगे। कोई इस देह को तकलीफ दे, तो इसलिए हम उसके वश न होंगे'—यह हमारा तत्त्वज्ञान होगा। हमारा मानस-शास्त्र यह होगा कि 'एक-दूसरे के साथ व्यवहार करते समय हम कुछ नियमों का पालन करेंगे। इसमें मुख्य नियम यह होगा कि हम व्यक्तिगत मन को गौण समझेंगे और सामूहिक बुद्धि को प्रधान स्थान देंगे।' ध्यान रहे कि मन व्यक्तिगत होता है। हरएक मनुष्य की अलग-अलग वासनाएँ होती हैं, लेकिन बुद्धि सामूहिक होती है। क्योंकि एक चीज किसीकी बुद्धि को जँचती है और वह ठीक है, तो दूसरे की भी बुद्धि को जँचती है। इसलिए हम व्यक्तिगत मन को स्थान नहीं देंगे और सामूहिक बुद्धि का निर्णय प्रमाण मानेंगे। हमारे शिक्षण-शास्त्र में, नीतिशास्त्र में और व्यवहार में यह बात रहेगी कि 'कोई किसीको मारेगा, पीटेगा या धमकायेगा नहीं।' लेकिन सिर्फ मारने, पीटने और धमकाने से ही हिंसा पुष्ट होती है, ऐसी बात नहीं, बल्कि लालच दिखाने को भी हम हिंसा में समाविष्ट करते हैं। इसलिए माँ-बाप बच्चों को न तो मारेंगे-पीटेंगे और न लोभ ही दिखायेंगे। इसी तरह गुरु भी स्कूल में वैसा ही व्यवहार करेंगे। आजकल इनाम वगैरह की जो बात चलती है, वह न चलेगी, बल्कि दूसरे प्रकार की बात चलेगी। आज भौतिक लोभ का इनाम होता है। इस तरह शारीरिक या भौतिक दण्ड और शारीरिक या भौतिक लोभ दोनों चीजें हमारे शिक्षण-शास्त्र में, व्यवहार में और नीतिशास्त्र में नहीं रहेंगी। बच्चे-बच्चे को यह समझाना होगा कि तुम्हें किसीसे डरना नहीं है और न लालच में ही पड़ना है। अगर माता और गुरु अपने बच्चे को ऐसी तालीम देंगे तो वे बच्चे अहिंसक समाज-रचना के स्तम्भ होंगे।

कुमगी (उत्कल)

२४ १ ५५

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद गाँव के लोगों की हालत सुधरेगी, ऐसी आशा लोगों ने रखी थी, जो गलत न थी। अगर स्वराज्य में जनता की हालत न सुधरे, तो उस स्वराज्य की कीमत ही क्या? लेकिन वे यह समझे नहीं कि स्वराज्य के बाद हमारी हालत सुधारना हमारे ही हाथ में है। वे समझते हैं कि जैसे पहले मुसलमानों का या अंग्रेजों का राज्य था, वैसे अब कांग्रेस का राज्य आ गया है। लेकिन मुसलमानों के और अंग्रेजों या और भी किसी राजा के राज्य में आपके वोट किसीने माँगे नहीं थे। आज यहाँ जो राज्य चलाते हैं, वे लोगों के चुने हुए नौकर हैं।

स्वराज्य किसीके देने से नहीं मिलता

वास्तव में सत्ता किसीके देने से नहीं मिलती। सत्ता या अधिकार तो अन्दर से प्राप्त होना चाहिए। वैसे हिन्दुस्तान के लोग मूर्ख नहीं, काफी अच्छे और समझदार हैं। अभी जो चुनाव हुआ, वह भी कितने सुन्दर ढंग से हुआ! लोगों को लगता था कि यहाँ न मालूम क्या-क्या होगा, कितनी लड़ाइयाँ होंगी! लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। बाहर के देशों के लोगों को आश्चर्य लगा कि हिन्दुस्तान के लोग अपढ़ होने पर भी यहाँ इतने अच्छे ढंग से चुनाव कैसे हो सका। इसका कारण यही है कि हिन्दुस्तान के लोग दस हजार साल के अनुभवी हैं। वे अपढ़ जरूर हैं, लेकिन अनुभवी हैं, इसलिए ज्ञानी हैं।

हिन्दुस्तान के लोग यद्यपि समझदार हैं, फिर भी वर्षों से उन्हें गुलामी की आदत पड़ गयी है। वे सोचते हैं कि सरकार माँ-बाप की तरह हमारी चिन्ता करेगी। इसलिए अब जब कि उनके हाथ में सत्ता आयी है, उन्हें यह अनुभव होना चाहिए कि वास्तव में हमारे हाथ में सत्ता आयी है। क्या माता को माता का अधिकार कोई देता है? माता तो अपने में मातृत्व का स्वयं अनुभव करती है। क्या घर का किसीने बालक का राजा बनाया है? वह तो खुद अपना अधिकार महसूस करता है। इसी तरह स्वराज्य-शक्ति का लोगों को

अन्दर से मान होना चाहिए। पूछा जा सकता है कि आखिर यह कैसे होगा? क्या गाँव-गाँव के लोग दिल्ली का राज्य चलायेंगे? नहीं, गाँव-गाँव के लोग तो गाँव-गाँव का ही राज्य चलायेंगे। इस तरह उन्हें राज्य चलाने का अनुभव हो जायगा।

गाँव-गाँव में 'मातृ-राज्य' दीख पड़े

इस जमाने में जो राज्य होता है वह 'राज्य' नहीं 'प्राज्य' होता है— लोगों का राज्य होता है। पहले के जमाने में जो लोगों को खाता था वही राजा होता था। कहा जाता है कि जंगल का राजा शेर होता है। इसके माने यह है कि जो जंगल के प्राणियों को खा जाता है, वह राजा होता है। संस्कृत में जानवरों के राजा को यानी सिंह या शेर को 'मृगराज' कहते हैं। उस राजा के दर्शन होते ही सारे मृग थर-थर काँपते हैं। इस प्रकार की राज्य-सत्ता अब न चलेगी। अब तो राज्य-सत्ता सेवा की सत्ता होगी। माता को घर में क्या अधिकार होता है? बच्चे को भूख लगी है तो उसे दूध पिलाना माता का पहला अधिकार है। बच्चे को सुलाकर फिर सोना उसका नम्बर दो का अधिकार है। बच्चा बीमार पड़ा तो रात को जागना नम्बर तीन का अधिकार है। घर में खाने की चीजें कम हों तो पहले बच्चे को खिलाना और बाद में कुछ न बचे तो फाका करना नम्बर चार का अधिकार है। आज का हमारा राज्य 'मातृ-राज्य' है न? फिर हमें गाँव-गाँव में उसके नमूने दिखाने चाहिए।

गाँव-गाँव में जो बुद्धिमान्, सम्पत्तिमान् और समझदार हों, वे गाँव के माता-पिता बन जायें और गाँव की सेवा कर गाँव का राज्य चलायें। बुद्धिमान् पिता अपने लड़के के लिए यही इच्छा करते हैं कि वे हमसे ज्यादा बुद्धिमान् बनें। पिता को तो तब खुशी होती है जब उसका लड़का उससे आगे बढ़ जाता है। इसी तरह गुरु को तब खुशी होती है जब उसका शिष्य दुनिया में उसका विस्मरण करा देता है—लोग गुरु का नाम भूल जाते और शिष्य को ही याद करते हैं। उसे लगता है कि मैंने अपने शिष्य को ज्ञान दिया और फिर भी मेरा नाम दुनिया में कायम रहा, तो मैंने ज्ञान ही क्या दिया? मेरा

नाम मिटकर हिन्द का नाम चले तभी मैं सच्चा मुक्त होऊँगा। इसलिए गाँव में जो बुद्धिमान् लोग होंगे वे इस तरह से काम करेंगे कि सब लोग उनसे ज्यादा बुद्धिमान् बनें। तो फिर ग्रामराज्य का रामराज्य बनेगा।

ग्रामराज्य और रामराज्य

स्वराज्य के माने हैं सारे देश का राज्य। जब दूसरे देश की सत्ता अपने देश पर नहीं रहती तो स्वराज्य हो जाता है। लेकिन जब हरएक गाँव में स्वराज्य हो जाता है, तब उसे 'ग्रामराज्य' कहा जाता है। गाँव के सब लोग बुद्धिमान् बन जायें और किसी पर सत्ता चलाने की जरूरत ही न रह जाय, इसका नाम है 'रामराज्य'। जब गाँव के झगड़े शहर की अदालत में जाते हैं और शहर के लोग उनका फैसला करते हैं तो उसका नाम है 'गुलामी' 'दास्य' या 'पारतन्त्र्य'। गाँव के झगड़े गाँव में ही मिटाये जायें तो उसका नाम है स्वातन्त्र्य या स्वराज्य और गाँव में झगड़े ही न हों तो उसका नाम है रामराज्य। हमें पहले ग्रामराज्य बनाना होगा और फिर रामराज्य। देश में स्वराज्य तो हो गया अब हमें ग्रामराज्य बनाना है। इसीलिए भूदान यज्ञ चल रहा है। हम गाँव-गाँव जाकर लोगों को समझाते हैं कि तुम्हारे गाँव का भला किसमें है इस पर तुम खूब सोचो। अपने गाँव को एक राष्ट्र समझो। आज आप भारत-राष्ट्र और भारत-माता की जय बोलते हैं, उसी तरह अपने गाँव की जय बोलनी चाहिए।

हरएक ग्राम की जय होती है, तो देश की जय होगी। जब हरएक अवयव काम करेगा तभी सारा शरीर काम करेगा। आँख कान पाँव हाथ दाँत अच्छा काम करेंगे तो सारा शरीर अच्छा काम करेगा। अगर इनमें से एक भी कम काम करे, तो देह का काम अच्छा नहीं चलेगा। इसी तरह सारे गाँव अपना काम अच्छी तरह से चलायेंगे गाँव-गाँव में स्वराज्य बनता तो देश का स्वराज्य भी अच्छा बनेगा। अतः हमें हरएक गाँव में राज्य चलाना होगा। एक देश में सरकार के जितने विभाग और जितने काम होते हैं, उतने सारे गाँव में होंगे। वहाँ आरोग्य-विभाग होता है, तो गाँव में भी आरोग्य-विभाग चाहिए, वहाँ उद्योग-विभाग, कृषि-विभाग तालीम-विभाग न्याय-विभाग

विभाग होते हैं तो गाँव में भी उतने सारे विभाग होने चाहिए । जहाँ पर परराष्ट्र के साथ सम्बन्ध आता है तो ग्राम में भी परग्राम के साथ सम्बन्ध आयेगा ।

ग्रामे-ग्रामे विश्वविद्यापीठम्

ग्राम-ग्राम में विद्यापीठ होना चाहिए 'ग्रामे-ग्रामे विश्वविद्यापीठम्'। यह है सच्चा ग्रामराज्य ! किसीने हमसे कहा कि "प्राथमिक शाला हर गाँव में होनी चाहिए, हाई स्कूल बड़े गाँव में होने चाहिए और विशाखपत्तनम् जैसे शहर में कॉलेज होना चाहिए" तो मैंने उनसे कहा 'अगर ईश्वर की ऐसी योजना होती तो गाँव में दस साल की उम्र तक के ही लोग रहते । फिर उसके बाद पन्द्रह-बीस साल तक की उम्र तक के लोग बड़े गाँव में रहते और उस उम्र से अधिक उम्रवाले लोग विशाखपत्तनम् जैसे शहर में रहते । लेकिन जब जन्म से लेकर मरण तक का सारा व्यवहार गाँव में ही चलता है, तो पूरी विद्या गाँव में क्यों नहीं चलनी चाहिए ?" ये लोग ऐसे दरिद्र हैं कि एक-एक प्रांत में एक-एक यूनिवर्सिटी स्थापित करने की योजना करते हैं । लेकिन मेरी योजना में हर गाँव में युनिवर्सिटी होगी । सोचने की बात है कि क्या गाँव को टुकड़ा रखेंगे ? चार साल तक की शिक्षा पाने एक टुकड़ा गाँव में रहेगा । फिर गाँववाले आगे की शिक्षा प्राप्त करना चाहें तो उन्हें गाँव छोड़कर जाना पड़ेगा । इसके कोई मानी नहीं हैं । मेरे ग्राम में मुझे पूरी तालीम मिलनी चाहिए । मेरा ग्राम टुकड़ा नहीं पूर्ण है । 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्'—पूर्ण है वह और पूर्ण है यह ! ये लोग कहते हैं कि यह भी टुकड़ा है और वह भी टुकड़ा है और सब मिलकर पूर्ण है । किन्तु हमारी योजना में इस तरह टुकड़े-टुकड़े होकर पूर्ण बनाने की बात नहीं है । हम चाहते हैं कि हर गाँव में राज्य के सब विभागों के साथ एक परिपूर्ण राज्य हो ।

गाँव-गाँव राज्य-कार्य-धुरन्धर

इस तरह हर छोटे-छोटे गाँव में राज्य होगा, तो हर गाँव में राज्य-कार्य धुरन्धरों का समूह होगा । गाँव-गाँव में अनुभवी लोग होंगे । दिल्लीवालों को राज्य चलाने में कभी मुश्किल मालूम हुई, तो वे सोचेंगे कि दो-चार गाँवों

में चला जाय और वहाँ के लोग किस प्रकार राज्य चलाते हैं, यह देख आया जाय क्योंकि राज्यशास्त्र-विद्या-पारंगत लोग गाँव-गाँव में रहते हैं। इस लिए गाँव-गाँव में विद्यापीठ होना चाहिए। आज तो लोग कहते हैं कि गाँव में राज्यशास्त्र का ज्ञाता कोई है ही नहीं। जिले में भी उसके ज्ञाता नहीं सारे प्रदेश में दो-तीन ही होंगे। अब स्वराज्य चलाना चाहते हैं तो राज्यशास्त्र के ज्ञाता इतने कम होने से कैसे काम चलेगा? इसलिए गाँव-गाँव में ऐसे ज्ञाता होने चाहिए। आज हालत ऐसी है कि पंडित नेहरू ने एक दफा कहा था कि 'हमें जरा प्रधानमंत्रीपद से छुट्टी दीजिए" तो सारे लोग घबड़ा गये और उनसे कहने लगे कि 'आपके बिना हमारा कैसे चलेगा? यह कोई स्वराज्य नहीं! असली स्वराज्य तो वह है, जब पंडित नेहरू मुक्त होने की इच्छा प्रकट करें, तो लोग उनसे कहें कि "जी जरूर मुक्त हो जाइये। आपने आज तक बड़ी सेवा की है, आपको मुक्त होने का हक है।

अक्ल का बँटवारा

इस तरह हमें जो राजसत्ता दिल्ली में इकट्ठी हुई है, उसे गाँव-गाँव बाँटना है। हम तो परमेश्वर के भक्त हैं, इसलिए हम ईश्वर का ही उदाहरण सामने रखें। ईश्वर ने अगर अपनी सारी अक्ल वैकुंठ में रखी होती और किसी प्राणी को वह दी ही न होती तो दुनिया कैसे चलती? फिर तो किसी मनुष्य को अक्ल की जरूरत पड़ने पर वैकुंठ में टेलीग्राम भेजकर थोड़ी-सी अक्ल मँगवानी पड़ती। आज आपके मंत्रियों को विमान से दौड़ना पड़ता है, तो भगवान् को कितना दौड़ना पड़ता? लेकिन भगवान् ने ऐसी सुन्दर योजना की है कि सबको अक्ल बाँट दी है। मनुष्य घोड़ा गधा साँप-बिच्छू कीड़े मकोड़े सबको अक्ल दी है। किसी एक जगह पर बुद्धि का भंडार नहीं रखा। इसीलिए कहा जाता है कि भगवान् निश्चिन्त होकर क्षीरसागर में निद्रा लेते हैं। क्या हमारे मंत्री इस तरह निद्रा ले सकते हैं? लेकिन भगवान् इस तरह निद्रा लेते हैं कि इसका पता भी नहीं चलता है कि वे यहाँ हैं। असली स्वराज्य तो वह होगा जब दिल्ली के लोग सोते रहेंगे। दिल्ली के क्षीरसागर में हमारे प्रधानमंत्री सोते हुए सुनाई पड़ेंगे। लेकिन आज तो हम यह सुनते हैं कि हमारे प्रधानमंत्री अठारह घंटे तक जागते हैं। क्या यह भी कोई स्वराज्य है?

ग्राम-संकल्प

हम गाँववालों से कहते हैं कि अपने गाँव की हालत सुधारने के लिए तुम लोगों को कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिए। आपके गाँव में भूमिहीन हों तो उन्हें अपने ही गाँव की जमीन का एक हिस्सा देना चाहिए। फिर गाँव गाँव में उद्योग खड़े करने चाहिए। आपको निश्चय करना होगा कि हम बाहर का कपड़ा नहीं खरीदेंगे अपने गाँव में कात-बुनकर ही पहनेंगे। मैं मानता हूँ कि जो बाहर का कपड़ा पहने हैं वे नंगे हैं। अभी मेरे सामने जो लोग बैठे हैं वे सारे बाहर का कपड़ा पहने हैं। इसलिए यह निर्लज्ज और नंगों की सभा है। अगर इन लोगों को बाहर से कपड़ा न मिले तो ये फटे कपड़े या लँगोटी ही पहनेंगे और आखिर में नंगे रहेंगे क्योंकि उनके पास कपड़ा बनाने की विद्या नहीं है।

गाँव-गाँव में आयोजन

यह सब काम सरकार के कानून से नहीं होगा। कुछ लोग हमसे पूछते हैं कि भूदान का काम बाबा को क्यों करना पड़ता है, सरकार अपनी जमीन क्यों नहीं बाँटती? किन्तु सरकार जमीन बाँटेगी तो 'ग्रामराज्य' नहीं, 'दिल्लीराज्य' होगा। जिस तरह अपनी भूख मिटाने के लिए हमें ही खाना पड़ता है दूसरा कोई हमारे लिए खा नहीं सकता उसी तरह हमारे ग्रामराज्य के लिए हमें ही भूदान करना पड़ेगा दूसरे न कर सकेंगे। फिर आज जैसे लोग दिल्ली में बैठे-बैठे सोचते हैं कि अपने देश में बाहर से कौन-कौन चीजें आनी चाहिए और देश की कौन-कौन-सी चीजें बाहर जानी चाहिए, उसी तरह गाँव-गाँव के लोग सोचेंगे कि अपने गाँव में कौन-सी चीजें बाहर से आयें और गाँव की कौन-सी चीज बाहर जायें। आज तो चाहे जो अपनी मर्जी के अनुसार बाहर की चीजें खरीदता जाता है। लेकिन इसके आगे यह न चलेगा। सारे गाँववाले मिलकर चर्चा करने और निर्णय करेंगे। अगर किसीको गुड़ की जरूरत हुई तो गाँववाले उस बारे में सोचेंगे और तय करेंगे कि इस साल गाँव में गुड़ नहीं बन सकता इसलिए एक साल के वास्ते बाहर से गुड़ खरीदा जाय। लेकिन गाँव के लोग यह गुड़ भी बाजार में जाकर न खरीदेंगे गाँव की दूकान

से ही एक साल के लिए खरीदेंगे और फिर गाँव में नया बोकर अगले साल के लिए पैदा करेंगे। गाँव की दूकान में वही गुड़ रखा जायगा और वही खरीदा जायगा।

विभाग अनेक पर हृदय एक

इस तरह सारा गाँव एक हृदय से सोचेगा। जहाँ गाँव में पाँच सौ लोग रहेंगे वहाँ एक हजार हाथ होंगे एक हजार पाँव होंगे पाँच सौ विभाग होंगे लेकिन दिल एक होगा। गीता के ग्यारहवें अध्याय में विश्व-रूप-दर्शन की बात है। विश्व-रूप-दर्शन में हजारों हाथ हैं हजारों पाँव हैं कान हैं आँखें हैं लेकिन उसमें आपको यह नहीं मिलेगा कि हृदय हजारों हैं। विश्व-रूप का हृदय एक ही होगा। इसी तरह गाँव का हृदय एक होगा। पाँच सौ विभाग होंगे। वे चर्चा करके बात तय करेंगे। यह हमारी सर्वोदय की योजना है।

त्रैराशिक की गुंजाइश नहीं

हम जानते हैं कि यह सब करने में कुछ समय लगेगा। लेकिन ज्यादा समय नहीं लगेगा। एक गाँव में एक साल का समय लगा तो हिन्दुस्तान के पाँच लाख गाँवों में कितना समय लगेगा इस तरह का त्रैराशिक नहीं किया जा सकता। एक गाँव के आम पकने शुरू होते हैं तो सारे हिन्दुस्तान के पाँच लाख गाँवों के आम पकने लग जाते हैं। इसलिए आपके गाँव में ग्राम राज्य बनने में जितना समय लगेगा उतने समय में कुल हिन्दुस्तान के पाँच लाख गाँवों में राम-राज्य बन जायगा।

'रामराज्य' या 'अराज्य' नाम स्वेच्छाधीन

आज मैंने मूल-रूप में विचार रखा है। पहली बात है केन्द्रीय स्वराज्य दूसरी बात है विभाजित स्वराज्य और तीसरी बात है राज्यमुक्ति अथवा रामराज्य। अब उसे 'रामराज्य' कहना है या 'अराज्य'—यह हरएक की अपनी-अपनी मर्जी की बात है। ईश्वर नहीं है यह भी कह सकते हैं और ईश्वर क्षीरसागर में सोता है, यह भी कह सकते हैं। लेकिन ईश्वर पसीना-पसीना होकर काम कर रहा है, यह नहीं कह सकते। या तो ईश्वर नहीं है

या वह कर्ता होकर बैठा है, इन्हींमें से एक बात हो सकती है। ईश्वर कर्ता है और सब दूर अपनी सत्ता चलाता है यह बात न होनी चाहिए। यही तत्त्व ज्ञान यही ब्रह्मविद्या हमें अपने देश में लानी है।

समर्थों का परस्परावलम्बन ही मान्य

हम चाहते हैं कि आप सब लोग उत्साह से भाई भाई बनकर काम में लग जाइये। कुछ लोग पूछते हैं कि विनोबाजी की योजना परस्परावलम्बन की नहीं स्वावलम्बन की है। इतना तो वे कबूल करते हैं कि विनोबा की योजना परावलम्बन की नहीं है। परन्तु वे कहते हैं कि 'परस्परावलम्बन' चाहिए। वैसे हम भी परस्परावलम्बन चाहते हैं। आज बाबा ने दूध पीया तो क्या बाबा ने खुद गाय का दूध दुहा था? लोगों ने बाबा के लिए सारा इन्तजाम किया था। इस तरह बाबा से जो सेवा बनती है वह करता जाता है और लोग उसके लिए इन्तजाम करते हैं। किन्तु परस्परावलम्बन दो प्रकार का होता है एक असमर्थों का और दूसरा समर्थों का। पहला अन्धे और लँगड़े का परस्परावलम्बन है। अन्धा देख नहीं सकता पर चल सकता है और लँगड़ा देख सकता है, पर चल नहीं सकता इसलिए दोनों परस्परावलम्बन या सहयोग करते हैं। लँगड़ा अन्धे के कन्धे पर बैठता है। लँगड़ा देखने का काम करता है और अन्धा चलने का। इस तरह क्या आप समाज के कुछ लोगों को अन्धा और कुछ को लँगड़ा रखकर दोनों का परस्परावलम्बन चाहते हैं? बाबा भी परस्परावलम्बन चाहता है। किन्तु वह चाहता है कि दोनों आँखवाले हों दोनों पाँववाले हों और फिर हाथ में हाथ मिलाकर दोनों साथ-साथ चलें। बाबा समर्थों का परस्परावलम्बन चाहता है। और ये लोग व्यस्त-पुष्ट या असम लोगों का परस्परावलम्बन चाहते हैं।

कौरिपाम (आन्ध्र)

९-८ '५५

आज सारी दुनिया में क्या हो रहा है? भिन्न-भिन्न देशों में चन्द लोगों की हुकूमत चलती है, पर नाम तो है लोकशाही का। यह नाममात्र की प्रातिनिधिक लोकशाही है। प्रजा स्वयं राज्य नहीं चलाती है, प्रतिनिधि के जरिये राज्य चलाती है। जिनके हाथों में आपने सत्ता सौंप दी है, वे पाँच साल तक राजा से भी ज्यादा ताकत रखते हैं और वे ऐसे काम कर बैठते हैं कि दूसरी आनेवाली सरकार उन कामों को नहीं मिटा सकती। मान लीजिये हमारी एक सरकार है और उसने व्यापारी करार किये हैं और पाँच साल के बाद राज्य बदल जाता है, फिर भी वह पुराना व्यापारी करार बदलना संभव नहीं होता। इस तरह से पुरानी सरकार के बहुत काम नयी सरकार को जबरन करने पड़ते हैं। विज्ञान के जमाने में पाँच साल में वे बहुत कुछ कर सकते हैं। उस हालत में उनके हाथ में जो सत्ता आती है, वह बड़ी ही भयानक होती है।

मान लीजिये पंडित नेहरू जाहिर करते हैं कि "भारत के लिए खतरा है तो सबको सेना में भरती होने के लिए तैयार रहना चाहिए। इस वास्ते और-और योजनाएँ हम बन्द करेंगे। खादी आदि को हमने पैसा दे दिया है लेकिन अब देश पर बड़ा खतरा आया है, इस वास्ते अब इतना बड़ा खर्च नहीं कर सकते। अब हमें सेना पर सारा पैसा खर्च करना पड़ेगा।" ऐसा कहने पर क्या पार्लमेंट में विरोधी दल कुछ बोलेगा? वह भी वही बोलेगा जो कांग्रेसवाले बोलेंगे। और बातों में विरोध करेंगे, लेकिन इस बारे में एक भी शब्द वह नहीं बोलेगा कि सेना का खर्च कुछ कम करो! यह स्वातंत्र्य नहीं है।

पक्षभेद का विष

सच पूछो तो आज दुनिया में किसीको सच्ची आजादी नहीं है। जब तक यह प्रातिनिधिक लोकशाही चलेगी और जब तक गाँव का कारोबार हम अपने हाथ में नहीं ले लेंगे, तब तक सच्चा स्वातंत्र्य नहीं मिलेगा। यहाँ के गाँवों की योजना हम करेंगे, अपनी बुद्धि से करेंगे, अपनी शक्ति से करेंगे, क्या

या वह अकर्ता होकर बैठा है, इन्हीमें से एक बात हो सकती है। ईश्वर कर्ता है और सब दूर अपनी सत्ता चलाता है यह बात न होनी चाहिए। यही तत्त्वज्ञान यही ब्रह्मविद्या हमें अपने देश में लानी है।

समर्थों का परस्परावलम्बन ही मान्य

हम चाहते हैं कि आप सब लोग उत्साह से भाई-भाई बनकर काम में लग जाइये। कुछ लोग पूछते हैं कि विनोबाजी की योजना परस्परावलम्बन की नहीं स्वावलम्बन की है। इतना तो वे कबूल करते हैं कि विनोबा की योजना परावलम्बन की नहीं है। परन्तु वे कहते हैं कि 'परस्परावलम्बन' चाहिए। वैसे हम भी परस्परावलम्बन चाहते हैं। आप बाबा ने दूध पीया तो क्या बाबा ने खुद गाय का दूध दुहा था? लोगों ने बाबा के लिए सारा इन्तजाम किया था। इस तरह बाबा से जो सेवा बनती है, वह करता जाता है और लोग उसके लिए इन्तजाम करते हैं। किन्तु परस्परावलम्बन दो प्रकार का होता है, एक असमर्थों का और दूसरा समर्थों का। पहला अन्धे और लँगड़े का परस्परावलम्बन है। अन्धा देख नहीं सकता पर चल सकता है और लँगड़ा देख सकता है पर चल नहीं सकता इसलिए दोनों परस्परावलम्बन या सहयोग करते हैं। लँगड़ा अन्धे के कन्धे पर बैठता है। लँगड़ा देखने का काम करता है और अन्धा चलने का। इस तरह क्या आप समाज के कुछ लोगों को अन्धा और कुछ को लँगड़ा रखकर दोनों का परस्परावलम्बन चाहते हैं? बाबा भी परस्परावलम्बन चाहता है। किन्तु वह चाहता है कि दोनों आँखवाले हों दोनों पाँववाले हों और फिर हाथ मे हाथ मिलाकर दोनो साथ-साथ चलें। बाबा समर्थों का परस्परावलम्बन चाहता है। और ये लोग व्यंग-युक्त या अक्षम लोगों का परस्परावलम्बन चाहते हैं।

कौडिपाम (आन्ध्र)
९-८ ५५

आज सारी दुनिया में क्या हो रहा है? भिन्न-भिन्न देशों में चन्द लोगों की हुकूमत चलती है पर नाम तो है लोकशाही का। यह नाममात्र की प्रातिनिधिक लोकशाही है। प्रजा स्वयं राज्य नहीं चलाती है, प्रतिनिधि के जरिये राज्य चलाती है। जिनके हाथों में आपने सत्ता सौंप दी है वे पाँच साल तक राजा से भी ज्यादा ताकत रखते हैं और वे ऐसे काम कर बैठते हैं कि दूसरी आनेवाली सरकार उन कामों को नहीं मिटा सकती। मान लीजिए हमारी एक सरकार है और उसने व्यापारी करार किये हैं और पाँच साल के बाद राज्य बदल जाता है, फिर भी वह पुराना व्यापारी करार बदलना संभव नहीं होता! इस तरह से पुरानी सरकार के बहुत काम नयी सरकार को चलाने पड़ते हैं। विज्ञान के जमाने में पाँच साल में वे बहुत कुछ कर सकते हैं। उस हालत में उनके हाथ में जो सत्ता जाती है, वह बड़ी ही भयानक होती है।

मान लीजिये पंडित नेहरू जाहिर करते हैं कि "भारत के लिए खतरा है तो उसको सेना में भरती होने के लिए तैयार रहना चाहिए। इस वास्ते धीरे-धीरे योजनाएँ हम बन्द करेंगे। खादी आदि को हमने पैसा दे दिया है, लेकिन अब देश पर बड़ा खतरा आया है इस वास्ते अब इतना बड़ा खर्च नहीं कर सकते! अब हमें सेना पर सारा पैसा खर्च करना पड़ेगा। ऐसा कहने पर क्या पार्लमेंट में विरोधी दल कुछ बोलेगा? वह भी वही बोलेगा जो कांग्रेसवाले बोलेंगे। और बातों में विरोध करेंगे लेकिन इस बारे में एक भी शख्स यह नहीं कहेगा कि सेना का खर्च कुछ कम करो! यह स्वातंत्र्य नहीं है।

पक्षभेद का विष

सच पूछो तो आज दुनिया में किसीको सच्ची आजादी नहीं है। जब तक यह प्रातिनिधिक लोकशाही चलेगी और जब तक गाँव का कारोबार हम अपने हाथ में नहीं ले लेंगे तब तक सच्चा स्वातंत्र्य नहीं मिलेगा। यहाँ के गाँवों की योजना हम करेंगे अपनी बुद्धि से करना अपनी शक्ति से करने क्या

ऐसा कोई सोचता है ? उसके लिए एकता चाहिए। लेकिन आप ठीक इससे उल्टी बात करते हैं। हम अपना कारोबार नहीं करेंगे हमारे प्रतिनिधि करेंगे। हम प्रतिनिधियों को चुनेंगे इसका मतलब क्या है ? आपकी अनेक *पार्टियाँ होंगी। दिल्लीवालों को सत्ता देने के लिए* आप अपनी सत्ता को आपस-आपस में बैर करके काटेंगे। इतना ही नहीं कि आपने सिर्फ दिल्ली को अधिकार दिया और आप आलसी बनकर बैठे बल्कि आपने पार्टी-विरोध खड़ा करके आपस-आपस में ही बैर खड़ा किया ताकि यहाँ की ताकत बढ़ ही न सके। यह कांग्रेसवाला यह पी एस पी वाला यह कम्युनिस्ट, यह जनसंघी यह ब्राह्मण यह ब्राह्मणेतर, यह हिन्दू, यह मुसलमान यह बनिया किसान यह लिंगायत इस तरह के भेद बढ़ाकर बैर निर्माण किया। परिणाम-स्वरूप दिल्ली के स्वराज्य के लिए आपने अपने स्वराज्य को काटा। इसमें क्या तथ्य है, यह आप सोचिये। आप लोगों में एकता होती और आप आलसी होते तो भी ठीक आपका काम प्रतिनिधि करते तो ठीक था। लेकिन आपस-आपस में बैर नहीं चाहिए था। सच्चा स्वराज्य तो तब होगा जब गाँव-गाँव में स्वराज्य होगा। कम-से-कम इतना तो करो कि अपने गाँव की एकता में जरा भी बाधा न पड़े।

गाँव पैरों पर खड़े हों

कुछ समय पहले पंडित नेहरू ने एक व्याख्यान में कहा था कि "केन्द्रीय सरकार, प्रांतीय सरकार, राष्ट्रीय विकास-खंड सामुदायिक विकास-खंड प्लानिंग-कमीशन आदि पर भरोसा रखना गाँव के लिए खतरनाक है। गाँव-वालों को अपने पाँवों पर खड़ा रहना चाहिए।" अब इससे ज्यादा कोई क्या कह सकता है ?

लोकशाही का तमाशा

कल हमने अंबर चरखा देखा। दो-तीन सौ बहनें सूत कात रही थीं। उन्हें रोज एक-एक रुपया मिल रहा था। लोग खादी का कपड़ा तो पहनते नहीं यह सब सरकार के भरोसे चल रहा है! सरकार जब तक चलायेगी, तब तक योजना चलेगी! आज ही हमने पढ़ा कि उसमें सोलह करोड़ रुपया

खादी के लिए मंजूर हुआ था। लेकिन अब वह उसे भार करोड़ किया गया है। अब वैकुंठभाई कहते हैं कि जिन प्रान्तों में योजना की थी उनमें कटौती करेंगे। अगर सरकार यह काम करती है तो स्तुति करेंगे नहीं करेगी तो निंदा करेंगे। इतनी पराधीन जनता रही तो स्वराज्य कैसा ?

ग्राम-स्वराज्य स्थापित करें

आज हर जगह परस्पर भय छाया हुआ है। हम नहीं समझते कि स्वराज्य का कोई स्वरूप हमारे सामने प्रकट होता है। लोग बिलकुल बनाव दीखते हैं। हर गाँव में हमें ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करनी है। ग्राम-ग्राम में ग्रामदान हो लोग अपनी-अपनी मालकियत छोड़ दें ग्रामोद्योग बढ़ायें। गाँव में झगड़ा हो तो उसका न्याय गाँव में ही हो। वकील के पास गाँव का झगड़ा न जाय। सब मिलकर काम करें और ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करें। ग्राम में कोई पक्षभेद न रहे। सब लोग मिलकर अपने गाँव की योजना बनायें।

काठाल (कारवार)

११-२-५८

राज्य नहीं, स्वराज्य • २५

आज देश में 'निष्काम-सेवा' करीब-करीब शून्य है। निष्काम-सेवा यानी ऐसी सेवा जिसमें अपने लाभ की इच्छा न हो अपने पक्ष के लाभ की इच्छा न हो और न उसमें प्रतिष्ठा की भी बात हो। स्वराज्य-प्राप्ति के पहले निष्काम सेवा का लोगों को कुछ अभ्यास था। उन दिनों कांग्रेस में कई लोग केवल स्वराज्य की भावना से निष्कामता से काम करते थे। रचनात्मक काम करने वाले भी गरीबों की सेवा निष्काम-बुद्धि से करते थे।

स्वराज्य के बाद निष्काम-सेवा नहीं रही

पर स्वराज्य प्राप्ति के बाद देश बदल गया। लोग अगर राजनैतिक सत्ता में बैठ गए। फिर एक मेंबर जो पहले जनता की सेवा करते थे सरकार

के अन्दर दाखिल हो गये। स्वराज्य हाथ में लेने के बाद उसे चलाना चाहिए, यह भी एक कर्तव्य माना गया इसलिए योग्यता और वजन रखनेवाले लोग सरकार के अन्दर गए। जो लोग सरकार में गये वे निष्काम नहीं हो सकते ऐसा नहीं कुछ तो हो ही सकते हैं। हम जानते हैं कि महाराज जनक अत्यन्त निष्काम थे और उन्हींकी मिसाल निष्काम कर्म के बारे में भगवद्गीता में दी गयी है। लेकिन वैसे लोग हाथ की उँगलियों पर ही गिने जायेंगे। बाकी बहुत-से लोग वहाँ सत्ता का ही अनुभव करते हैं। इसलिए उनसे निष्काम सेवा नहीं बनती।

रचनात्मक काम करनेवाले पहले सरकारी मदद की अपेक्षा न करते थे। एक प्रकार से उनका काम सरकार के विरुद्ध ही था। इसलिए उन्हें काफी त्याग करना पड़ता था। उन्हें कुछ तनख्वाह भी दी जाती थी तो वह बिल्कुल कम-से-कम दी जाती थी और उनका सबका भार जनता पर ही था। लेकिन आज हालत बदल गयी है आज सरकार की योजना में कुछ रचनात्मक कार्य कर्ता दाखिल हुए हैं। वहाँ उन्हें अनेक प्रकार की सहूलियतें मिलने लगी हैं। उन्हें त्याग की आवश्यकता भी उतनी नहीं रही। उन्हें जनता पर आधार रखने की आवश्यकता भी न रही। उनकी यह श्रद्धा हो गयी कि सरकार पर आधार रखकर ही काम हो सकता है। इस हालत में भी निष्काम सेवा करनेवाले हैं पर उनकी संख्या बहुत कम तीन-चार हाथों की उँगलियों पर उनके नाम गिन जा सकते हैं।

राजनैतिक पक्षवालों की हालत

जो लोग राजनैतिक पक्षों में बँट गए हैं उनमें से कुछ लोग पद लिये हुए हैं कुछ म्युनिसिपैलिटी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड आदि में गये तो कुछ कांग्रेस संस्था के अध्यक्ष मंत्री आदि बने। इन दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष आदि के हाथ में भी बहुत सत्ता रहती है क्योंकि आज कांग्रेस शासनकर्ती संस्था है। एसी हालत में निष्काम सेवक कौन होगे? दुनिया मे कुछ तो होंगे ही ईश्वर के भक्त कहीं-न-कहीं होते हैं तो वहाँ भी होंगे। जो लोग दूसरे राजनैतिक पक्षों में काम करते हैं उनके हाथ में सत्ता नहीं है किन्तु वे सत्ता के अभिलाषी हैं और

उनका सारा ध्यान इसीमें रहता है कि कांग्रेस के या सरकार के काम में कहाँ त्रुटियाँ हैं । इस तरह दूसरों की गलतियाँ गिननेवाला अपना चित्त शुद्ध नहीं रख सकता । जहाँ चित्त-शुद्धि का अभाव आया वहाँ निष्काम-सेवा कहाँ से होगी ? फिर भी उनमें कुछ लोग निष्काम होंगे ।

सेवा का सौदा

इस तरह स्वराज्य प्राप्ति के बाद जो सेवा हो रही है उसका हिसाब हमने लगा लिया । अब भी 'रामकृष्ण मिशन' जैसी कुछ संस्थाएँ काम करती हैं जो पहले भी करती थीं । उनमें कुछ निष्काम सेवक जरूर होंगे । निष्काम सेवा ही सच्ची सेवा है । बाकी सेवा तो एक प्रकार का सौदा है । किसीने जेलमें कई साल बिताये तो वह कहता है, हमें भी कुछ मिलना चाहिए । किसीने भूदान में कुछ त्याग किया तो वह भी कहता है कि हमें कुछ मिलना चाहिए । अभी कांग्रेस ने जाहिर किया है कि जिन्होंने कुछ काम किया है, वे अपने काम का हिसाब पेश करें और उसके अनुसार उन्हें कुछ पद आदि मिलेगा । कुछ लोग अपने काम की रिपोर्ट पेश करेंगे कि हमने इतने-इतने दिन काम किया इसलिए हम चुने जायें । उन्हें ऐसी अपेक्षा रखने का अधिकार भी है, लेकिन उसमें निष्कामता नहीं रही । वह शुद्ध सेवा नहीं वह तो सौदा हो गया ।

राजसत्ता से धर्म-प्रचार सम्भव नहीं

अब मैं दूसरा हिसाब लगाऊँगा । आज की हालत में जन-शक्ति पर श्रद्धा और जन-सेवा पर विश्वास बहुत ही कम दीखता है । राजनैतिक पक्षों में काम करनेवाले मानते हैं कि सत्ता के जरिये ही काम होगा उनका सरकार की शक्ति पर जो विश्वास है, वह जन-शक्ति पर नहीं है । वे कुछ जन-सेवा भी करेंगे तो इतना ही करेंगे कि सरकार के जरिये लोगों को कुछ मदद पहुँचायेंगे । लोग भी उनसे ऐसा ही पूछते कि आप हमारी तरफ से प्रतिनिधि बने हैं तो आपने हमारे लिए क्या किया ? इसलिए लोगों को उनकी अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं और राजनैतिक पक्षों में काम करनेवालों का भी जनशक्ति पर विश्वास नहीं । इस हालत में स्वतन्त्र जन-सेवा की कोई

कीमत नहीं रही। फिर भी वे लोग सेवा करेंगे क्योंकि उसके जरिये वे सत्ता पर काबू रख सकेंगे। वे सोचते हैं कि हम सेवा करेंगे तभी लोग हमें चुनेंगे और तभी हमारे हाथ में सत्ता आयेगी। इसलिए वह सेवा सत्ता की दासी है।

लोक-जीवन में सुधार, परिवर्तन कामों में शान्ति लाना आदि काम सरकारी शक्ति से कभी नहीं हो सकता। अगर सरकारी शक्ति से जन-शान्ति होना सम्भव होता तो बुद्ध भगवान् के हाथ में जो राज्य था उसे वे क्यों छोड़ते? इन दिनों लोग बुद्ध भगवान् की नहीं, बल्कि अशोक की मिसाल देते हैं। वे कहते हैं कि अशोक का परिवर्तन हुआ और उसने धर्म प्रचार किया तो फिर राज्य-शक्ति से धर्म प्रचार हुआ न? हम कहना चाहते हैं कि वे लोग इतिहास का जरा भी ख्याल नहीं रखते। जब से बुद्ध-धर्म को सरकारी शक्ति का बल मिला तब से बुद्ध-धर्म के हिन्दुस्तान से उखड़ने की तैयारी हुई। जब से ईसाई-धर्म को कान्स्टेन्टाइन के बाद राजसत्ता का आधार मिला तब से ईसाई धर्म नाममात्र का रहा। ईसा के पहले अनुयायी जैसे शुद्ध धर्म का आचरण करते थे उसका लोप हुआ धर्म बना और दंभ पैदा हुआ। यहाँ पर शैव वैष्णव जैन दिखाई देते हैं, परन्तु जब से इनको राजसत्ता का बल मिला तब से हजारों लोग शैव वैष्णव और जैन बने। लेकिन वे वास्तव में शैव वैष्णव या जैन नहीं बल्कि राजनिष्ठ और राजभक्त बने। आज दुनिया में गिनती के लिए तो हजारों शैव वैष्णव जैन और लाखों हिन्दू, ईसाई हैं लेकिन उनका आचरण क्या है?

राजसत्ता के जरिये सद्विचार या सद्धर्म फैल सकता है, यह कल्पना ही मन से निकाल दीजिये। बल्कि अगर सच्चे धर्म में राजसत्ता धर्म के साथ जुड़ जाय तो धर्म राजसत्ता को ही खतम कर देगा। दोनों एक साथ नहीं रह सकते। अन्धकार और सूर्यनारायण एक साथ नहीं रह सकते। धर्म अगर सचमुच में राजसत्ता के साथ आ गया तो वह राजसत्ता को तोड़ देगा। दूसरों पर सत्ता चलाना धर्म-विचार नहीं। सबकी सेवा करना प्रेम से समझाना ही धर्म-विचार है। लाख-लाख लोग एकदम धर्मनिष्ठ बनें यह भी क्या कोई धर्मनिष्ठा है?

किसी राजा की आज्ञा से काम नहीं चलता

हिन्दुस्तान का कुल इतिहास देखने से यह मालूम होता है कि हिन्दुस्तान का समाज जहाँ-जहाँ आगे बढ़ा जहाँ-जहाँ सत्पुरुषों के ही जरिये आगे बढ़ा। बुद्ध और महावीर का जो असर आज भी भारत पर दीखता है, वह उनके जमाने के किसी भी राजा का नहीं रहा। कबीर और तुलसीदास का जो प्रभाव आज उत्तर प्रदेश पर है वह उत्तर प्रदेश के किसी राजा का नहीं है। चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस और रवीन्द्रनाथ का जो असर आज बंगाल पर है, वह बंगाल के किसी भी राजा का नहीं। शंकर, रामानुज माणिक्यवाचकर और नम्माळवार का तमिलनाड पर आज तक जो असर है वह न किसी पांड्य का है, न पल्लव का है और न चोल राजा का है। यहाँ पर सब लोग भस्म लगाते हैं, तो क्या वह किसी पांड्य या चोल राजा की आज्ञा से लगाते हैं? आखिर किसके नाम पर लोग अपने जीवन में इतना त्याग करते हैं? विवाह-संस्था जैसी उत्तम संस्था किसने बनायी? उसमें कौन-सा कानून आता है? माताएँ बच्चों की परवरिश करती हैं, तो किस राजा के या किस सरकार के हुक्म से? असंख्य भाषाएँ चलती हैं, वह किसकी आज्ञा से? मरने पर श्मशान-विधि और श्राद्धविधि आदि होती है, तो किसकी आज्ञा से? यहाँ पर जो 'तिरुक्कुरल' पढ़ा जाता है, 'तिरुवाचकम्' का रटन किया जाता है वह क्या किसी यूनिवर्सिटी की आज्ञा से होता है या किसी म्युनिसिपैलिटी या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की आज्ञा से? आज लोगों की जो विवेक बुद्धि बनी है, वह किसने बनायी है? आज इतना दान दिया जाता है, वह किसकी आज्ञा से दिया जाता है? इतना सारा तप उपवास एकादशी रोजा किया जाता है वह किसकी आज्ञा से? हिन्दुस्तान में बहुत-से लोग स्नान किये बगैर दोपहर का भोजन नहीं करते वह किसकी आज्ञा से?

सिकन्दर और डाकू की कहानी

सिकन्दर बादशाह की कहानी है। एक डाकू को पकड़कर उसके सामने लाया गया था। सिकन्दर ने डाकू से पूछा "तू क्या करता है?" डाकू ने कहा "तू जो करता है, वही मैं करता हूँ।" इस पर सिकन्दर ने कहा

'तेरी और मेरी बराबरी ही क्या ? मैं तो बादशाह हूँ। डाकू बोला "तू जो काम करता है, वही मैं भी करता हूँ। लेकिन तू सफल हुआ और मैं नहीं इतना ही फर्क है। चोर तू भी है और मैं भी, परन्तु तू सफल चोर है इसलिए लोगों के सिर पर बैठा है और मैं असफल चोर हूँ इसलिए तेरे सामने खड़ा हूँ। फिर भी तू मन में यह भलीभाँति समझ ले कि तेरी और मेरी योग्यता समान है। यह सुनकर सिकन्दर अवाक रह गया। यहाँ ईस्ट इण्डिया कम्पनी का राज्य चला उसमें क्लाइव वारेन हेस्टिंग्स आदि क्या महापुरुष थे ? उस समय उधर इंग्लैण्ड की पार्लमेण्ट में हेस्टिंग्स पर केस चला था। उसमें बर्क (Burke) ने अभियोग (Impeachment) पर जो व्याख्यान दिया उसे पढ़ने पर मालूम होता है कि हेस्टिंग्स वगैरह कैसे बदमाश थे। लेकिन हिन्दुस्तान में उनकी सत्ता चली और वे राज्यकर्ता बने।

जनशक्ति से स्वराज्य

अब अंग्रेजों के हाथ से हमारे हाथ में सत्ता आयी और हम राज्यकर्ता बने हैं। शास्त्रों में लिखा है कि 'राज्यान्ते नरकप्राप्तिः'—राज्य-समाप्ति पर नरक-प्राप्ति होती है। माने राज करनेवाला राजा मरने पर नरक में जाता है। लोग पूछेंगे कि क्या फिर स्वराज्य न चलाना चाहिए ? हम कहते हैं कि स्वराज्य जरूर चलायें पर राज्य नहीं। वेद का ऋषि कहता है—'यतेमहि स्वराज्ये'—हम स्वराज्य के लिए प्रयत्न करें। शास्त्रों में भी यही लिखा है कि 'न त्वहं कामये राज्यम्'—मैं राज्य नहीं चाहता मैं स्वराज्य चाहता हूँ। दिल्ली से जो चलता है, उसे 'राज्य' कहते हैं, चाहे वह अपने लोगों का ही हो। पेठी (महाल) से जो चलता है वह 'राज्य' कहलाता है। गाँव-गाँव में हर मनुष्य अपने पर जो चलाता है, वह 'स्वराज्य' है। मुझे चाहे भूखा रहना पड़े लेकिन मैं चोरी न करूँगा इसका नाम है 'स्वराज्य'। मुझ पर दूसरे किसीकी हुकूमत चलती हो तो क्या वह स्वराज्य है ? 'स्वराज्य' का अर्थ है अपना खुद का अपने पर राज्य। इस तरह जब सब लोगों में अपने पर काबू रखने की शक्ति पैदा होगी और उन्हें अपने कर्तव्य का भान होगा तब 'स्वराज्य' आयेगा। तब तक 'राज्य' ही चलेगा फिर चाहे वह दिल्लीवालों

की जिम्मेदारी हमारी है ही। हम भी कबूल करते हैं कि अगर हम स्वराज्य हासिल कर राज्य चलाने की जिम्मेदारी नहीं उठाते तो वह हासिल ही क्यों किया ? हमने वह जरूर हासिल किया लेकिन इसीलिए कि सत्ता हम अपने हाथ में लेने के दूसरे क्षण से ही उसका (सत्ता का) विकेन्द्रण करने का आरम्भ कर दें। वह चीज हमें चाहे सधे पचास साल में लेकिन आरम्भ आज से ही करना चाहिए।

सर्वोदय-सम्मेलन (कांचीपुरम्)

२९-५-'५६

अगर मैं बड़ी पार्टी का मुखिया होता!

मान लीजिये अगर मैं हिन्दुस्तान की ऐसी बड़ी पार्टी का मुखिया होता, जिसके लिए चाहते हुए भी सामने कुरसी के लिए मस्क ही न मिल पाता हो, तो मैं जाहिर कर देता कि "सब पक्षों के अच्छे लोगों का सहयोग चाहता हूँ।" अच्छे लोग याने जिनमें सचाई है। हिंसावाले भी सचाई से हिंसा मानते हैं, तो वह भी एक सचाई है। कम्युनिस्ट भी सच्चे दिल से उसे मानते हैं, तो वह भी सचाई है। ऐसे जितने लोग हों उनमें से मैं चुनूँगा। फलाने फलाने मनुष्य के खिलाफ किसी मनुष्य को खड़ा न करूँगा। मैं ऐसे लोगों को जो कुछ विचार पेश कर सकते हैं—चाहे वह कितना ही गलत विचार हो तो भी उसके पीछे कुछ लोग हों वे चाहे न जानेवाले लोग हों—पार्लमेंट में जान दूँगा और कहूँगा कि उनके खिलाफ मुझे किसीको खड़ा नहीं करना है। यह मैं उन्हें कोई सुझाव देने के लिए नहीं कह रहा हूँ। उनके लिए मेरे पास कोई सुझाव नहीं क्योंकि सुझाव देने का मेरा अधिकार भी नहीं है। वह अधिकार उसीको होता है जो उस काम में पड़कर उस जिम्मेदारी को उठाये। मेरा यह गैरजिम्मेदार वक्तव्य है। इसलिए इसमें हमें सुझाव देने की कोई गुंजाइश नहीं। फिर भी मैं यह एक प्रकार चिन्तन आपके लिए कर रहा हूँ क्योंकि हमारी तो कोई मिनिस्ट्री है नहीं। मानता भिन्न-भिन्न पक्ष के लोग जो इस बात को सचाई से मानते हों और इसमें आना चाहते हों—चाहे उनके साथ कुछ विश्वास हिंसा के हों अहिंसा के हों ईश्वर-निष्ठा

के हों नास्तिकता के हों या वसे भी हों—उन सबको हम मंजूर करें, यही हमारी वृत्ति होनी चाहिए। दूसरी बाजू से हमारे द्वारा माने हुए आन्दोलन के मूल सेवक दस-बीस नहीं लाख-लाख की तादाद में होने चाहिए। वे लोकनीति में पूर्णतया विश्वास माननेवाले होंगे।

पलनी (मद्रास)
२०-११ ५६

अनार-दाना जैसा राज्य

ग्रामदानवाले गांवों के अनेक प्रकार के चित्र हो सकते हैं पर चित्र को जो रंग देना चाहें वह दे सकते हैं। गांववाले अपनी योजना करें। अपने गांव का आयात-निर्यात तय करने का अधिकार उन्हींको रहे। हमने हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े नेताओं से इसके बारे में बातें की हैं। उन्हें लगता है कि 'यह कैसे होगा ? यह तो 'स्टेट' का अधिकार है। एक स्टेट के अंदर दूसरी स्टेट कैसे हो सकती है ?" लेकिन यह तो आज के राजनैतिक चिन्तन का ही परिणाम है। हम मानते हैं कि लोकशक्ति से यह काम हो सकता है। जैसे अनार में हर दाना अलग-अलग होता है, वैसे ही स्टेट के अंदर अलग-अलग स्टेट बन सकती है। प्रत्येक दाना पूर्ण स्वतन्त्र होता है। उसके लिए वहां अलग पेटी होती है, उसमें वह भरा रहता है। फिर सब मिलकर एक अनार का फल बन जाता है। इसी तरह हरएक गांव एक स्वतन्त्र स्टेट, ऐसी असंख्य स्टेटें मिलकर एक बड़ी स्टेट और ऐसी अनेक बड़ी स्टेटें इकट्ठा होने पर एक दुनिया की स्टेट—ऐसी ही रचना ग्रामदान के जरिये हमें करनी है। उसमें ग्राम के लिए परिपूर्ण स्वतन्त्रता होगी। हम नहीं कहते हैं कि अमुक दूकान हमारे गांव में हो तो उस चीज को हम रोक सकते हैं। मान लीजिये कि बाहर से मिठाई आयी। हमने उसे न खाने और घर की रसोई ही खाने का तय किया तो वह मिठाई मक्खियों के लिए छोड़ देंगे। मक्खियों ने बाहर की चीज न खाने का प्रस्ताव तो किया नहीं है। फिर दूकानवाले को अगर मंजूर हो कि मक्खियों के लिए दूकान चलायी जाय तो वह चलावे।

जाहिर है कि लोगों की इच्छा के विरुद्ध यह दूकान न चल सकेगा। इसीका नाम है 'लोकशक्ति'। इस लोकशक्ति को कोई रोक नहीं सकता। इस तरह का आत्म-विश्वास प्रजा में निर्माण होना चाहिए कि अपना राज्य हमें चलाना है और उसे हम चला सकते हैं।

चिंगलपेट (मद्रास)
२१ १२ ५६

राम प्रताप विषमता खोई

एक भाई ने रामराज्य पर कविता लिखी। वे हमको सुना रहे थे। उसमें था कि रामराज्य में हर घर की दीवारें सोने की होंगी। हमने मन में सोचा ऐसा ही है तो हवा भी नहीं मिलेगी। राम तो जंगल में घूमते थे। थक गये थे तो पेड़ के नीचे बैठे थे। चौदह साल जंगल में थे। पाँव में काँटे चुभते थे। ऐसे रामराज्य में सोने की दीवारें! और क्या वर्णन किया? रात को अन्धकार नहीं रहेगा दीपक ही दीपक। हमने कहा अगर यही रामराज्य है तो न्यूयार्क में रामराज्य ही है। वहाँ रात को अन्धकार नहीं। आँख बिगड़ जाती है। इतनी सुंदर रात भगवान् ने बनायी लेकिन लोगों ने उस अन्धकार को आग लगा दी। कितने भयंकर लोग हैं! परंतु इस तरह कवि को नहीं कहना है। वह कहना चाहता है कि उसके घर सोने के बनेंगे यानी सबमें समानता होगी। उत्तम वैभव होगा। परन्तु वह समान रूप से बँटा होगा। यह है रामराज्य। तुलसीदासजी ने रामराज्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि "राम प्रताप विषमता खोई"। रामजी के प्रताप से विषमता खो गयी। भेद नहीं है। घर की दीवारें ईंटों की भी क्यों न हों परंतु सबके घर समान होंगे। यह नहीं होगा कि एक छोटी कोठरी में ५-५ मनुष्य ठूँसे जायँगे। राम उन्होंने सूर्यनारायण की तरह हमारा ध्यान खींचा है। सूर्य नारायण के प्रकाश से तारागण की ऊँच-नीचता खतम हो जाती है। बड़ी तारका छोटी तारका उस वक्त नहीं। विषमता का लोप होता है। और कहा है "बैर न कर काहू सन कोई"। रामराज्य में निर्वैरता होगी यानी परस्पर प्रेम होगा। उसमें वैमनस्य नहीं होगा यानी प्रेम होगा।

इस तरह रामराज्य माने प्रेमयोग और साम्ययोग—प्रेम और समत्व। इस प्रकार का रामराज्य हमको बनाना है। इस आशा से जवान आपके पास आयेंगे। सबको हरिस्वरूप देखने की भावना उनमें होगी। वे सबकी निष्काम सेवा करेंगे। उनमें व्यक्तिगत वासना नहीं रहेगी। अहंकार और स्वार्थ नहीं होगा। ऐसे निष्ठावान् कार्यकर्ता आपके पास आयेंगे। आपको उनके लिए सहानुभूति होनी चाहिए। आपके पास आने पर उनकी बात सुनने के लिए आपको तैयार रहना चाहिए और वे जो कहेंगे उसके मुताबिक बरतने की तैयारी भी होनी चाहिए।

(चिरवीपेठ)
२७-८-५७

राजनीति नहीं, लोकनीति २७

आजादी के बाद राष्ट्र-प्रेरणा कुंठित

अभी सरकार हमारे हाथ में है। इलेक्शन हमारे हाथ में है। सरकार में हमारा प्रतिनिधि चला गया तो हमने काम कर लिया ऐसा हम मानते हैं। बाकी जितना सेवा का काम है, वह सरकार करेगी। पहले हिन्दुस्तान के लोगों के अंदर जो भावना थी वह आज नहीं रही। नहीं तो क्या वजह है कि जो काम राममोहन से लेकर रामकृष्ण तक हुआ जो शुद्धि के आन्दोलन महात्मा गांधी रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे लोगों ने चलाये वे कार्य इन दिनों क्यों नहीं दीख रहे हैं? क्या हम यह समझें कि समाज-सुधार हो गया? क्या उपासना-सुधार हो गया? धर्म-सुधार हो गया? वास्तव में ऐसा नहीं हुआ है। छूत-अछूत भेद मिटाने के लिए राममोहन विवेकानन्द और दयानन्द इन लोगों ने क्या कहा और क्या किया? गांधीजी ने क्या कहा और क्या किया? ऐसे ही और अनेक लोग क्या सोचते थे और उनमें कितनी तड़पन थी? ये लोग उपासना-शुद्धि की जो बात सोचते थे हिन्दू-मुस्लिम एकता की जो बात करते थे वह आज नहीं रही है?

स्वदेशी का आंदोलन हमने चलाया लेकिन आज हम बाजार में जाते हैं तो यह नहीं सोचते कि किस देश का यह माल है ? विदेशों का माल खूब आ रहा है बाजार भरे जा रहे हैं । विदेशी माल इस तरह आता रहेगा तो उन देशों के लोगों की हिन्दुस्तान पर कभी वक्र दृष्टि नहीं रहेगी । वे ऐसा ही चाहेंगे कि भले ही हिन्दुस्तान पर हमारा राज्य न रहे, पर हिन्दुस्तान में ऐसा स्वराज्य रहे, जिससे वहाँ हमारा माल जा सके और हमारा व्यापार अच्छा चले । इस तरह आज यह स्वदेशी की भावना नहीं रही ।

इसी तरह आज छूत-अछूत भेद मिटाने के लिए कोशिश नहीं चल रही है । लोकमान्य और गांधीजी के जमाने में शराबबंदी का जैसा उत्तम काम हुआ वैसा आज नहीं हो रहा है । स्वामी दयानंद की जो आकांक्षा थी वह भी आज नहीं रही है ।

आप निराश हों इसलिए ऐसा चित्र मैं आपके सामने नहीं रखता बल्कि यही सुझाना चाहता हूँ कि जहाँ ऐसी प्रेरणा नहीं रहती वहाँ जीवित मनुष्य का जीवन बिलकुल मुर्दा-सा बन जाता है । फिर आपस में झगड़े होते हैं । तरह-तरह के पक्ष निर्माण होते हैं । फिर एक ही पक्ष में उपपक्ष भी होते हैं और 'ग्रुप पॉलिटिक्स' चलता है ।

आज हिन्दुस्तान में ५५ लाख नौकर हैं । यह संख्या और भी बढ़नेवाली है । यह बेकारी निवारण का एक मार्ग है ऐसा कहा जाता है । बेकारों को हमने मौके दिये हैं आगामी पंचवर्षीय योजना में इतने-इतने शिक्षकों को हम काम देनेवाले हैं, इतनी पुलिस रहेगी इतने रेलवे के कर्मचारी रहेंगे—ऐसा कहा जाता है । सेना के लिए भी करोड़ों रुपयों का खर्च होता है और बेकारी निवारण के लिए भी गलत ढंग से खर्च हो जाता है ।

आज ५५ लाख नौकरों का पोषण १७॥ करोड़ लोगों को करना पड़ता है । इसका अनुपात निकाला जाय तो ११ परिवार को १ परिवार का पोषण करना पड़ता है । नौकर के साथ-साथ उसका परिवार तो आता ही है । इस तरह एक 'मिडिल क्लास' खड़ा हो गया है, जो उत्पादन के काम से परे है । उसका जीवन-मान भी ऊँचा है । उत्पादन के काम से मुक्त शरीर-परिश्रम से मुक्त जीवन-मान ऊँचा—इस तरह की व्यवस्था की गयी है । साथ ही इनके

हाथ में दूसरे को दबाने की भी शक्ति रहेगी । अगर वे चाहें, तो दूसरों को दबा सकते हैं । चिल्लाहट होती है कि अभी भी बहुत से शिक्षित बेकार हैं इसलिए उनको भी काम दिया जाय । इस बेकारी-निवारण के लिए संभव है कि ५५ लाख की संख्या १ करोड़ की हो जायगी । आज ११ परिवारों पर १ परिवार के पोषण का भार है । कल ७ परिवारों पर १ परिवार का भार पड़ेगा । इस तरह उत्पादक-वर्ग नहीं अनुत्पादक मध्यम-वर्ग बड़ा होगा । देश को इससे अधिक भयानक खतरा दूसरा कोई नहीं हो सकता । १ करोड़ रु० का खर्च लश्कर पर होता है, वह तो अलग ही है पर ५५ लाख नौकर-वर्ग के लिए जो खर्च हो रहा है, क्या वह अपने गरीब देश के लिए शोभादायक है ?

एक ही रास्ता

इसमें से छुटकारा पाने का रास्ता एक ही है । उसे मैं लोकनीति कहता हूँ । आज की राजनीति को बदलना होगा । सरकारी शक्ति के बदले में लोक-शक्ति खड़ी हो । सरकारी शक्ति के बदले में आगे चलकर सरकार की जगह लेनेवाली शक्ति खड़ी हो । इस तरह स्वराज्य का रूपान्तर हमें लोकराज्य में करना होगा । यह ध्यान में आयेगा तो प्रेरणा मिलेगी । परराज्य भी जहाँ लोगों को अच्छा लगा वहाँ स्वराज्य तो अच्छा लगेगा ही । परराज्य में भी प्रामाणिकता है । काम करते हैं, तो लोगों की सेवा होती है, ऐसा माननेवालों में रमेशचन्द्र दत्त ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, न्यायमूर्ति रानडे ऐसे बड़े-बड़े लोग थे । सरकार में जाकर जनता की सेवा हम कर सकते हैं, यह भावना लेकर ही वे सरकार में गये थे । परदेशी राज्य में भी ऐसी प्रेरणा मिलती है, तो स्वराज्य में भी नौकरी की प्रेरणा लोगों को मिले इसमें आश्चर्य नहीं है । मैं तो यह मानता हूँ कि प्रामाणिकता से नौकरी की जाय—सेना में रेलवे में पुलिस में—तो वह सचमुच देश की सेवा हो सकती है । उन लोगों का भी यह दावा है कि हम देश के सेवक हैं । उन लोगों का यह दावा हमें मानना होगा । लेकिन आया हुआ स्वराज्य अधूरा है, पूर्ण स्वराज्य नहीं है । सामाजिक और आर्थिक आजादी जब तक नहीं मिलती तब तक स्वराज्य का काम अधूरा है ऐसा मानना चाहिए ।

अब हमें नया मिशन उठाना चाहिए। उस मिशन का नाम तो मिल चुका है पर वह सत्यरूपेण मिला है। वह अभी तक हमारे हृदय में पैठा नहीं है। वह है सर्वोदय। स्वराज्य के बाद सर्वोदय का मन्त्र हमें मिला है। एक शब्द की स्फूर्ति खतम होती है वहाँ दूसरा शब्द स्फूर्ति देने के लिए न मिले तो समाज जाग्रत नहीं हो सकता। ऐसे शब्द की खोज में समाज सौ-सौ साल बिताता है। एक शब्द की पूर्ति हो रही थी उतने में ही नया शब्द मिलता। इसका कारण यही था कि स्वराज्य के जो नेता थे उनको अंतःस्फूर्ति की प्रेरणा हुई थी। स्वराज्य की व्याख्या ही ऐसी थी। स्वराज्य की व्याख्या ही सर्वोदय में परिणत हुई। अब हमें नाम तो नया मिल गया है उसके लिए स्फूर्ति पाकर गाँव गाँव में स्वराज्य की भावना निर्माण करनी है। वह मिशन हमें करना होगा।

मोड़ी (राजस्थान)
२१-१ ५९

राजनीति निरर्थक साबित हो चुकी है

स्वराज्य-प्राप्ति के पहले ताकत राजनीति के क्षेत्र में थी क्योंकि उन दिनों उस क्षेत्र में जो भी हिस्सा लेते थे उनको बहुत त्याग करने का मौका मिलता था। जेल जाना पड़ता था, जुर्माना देना पड़ता था, कुटुम्ब का वियोग सहन करना पड़ता था, लाठियाँ पड़ती थी और किसी-किसी को तो फाँसी पर भी चढ़ना पड़ता था। ऐसी सारी प्रणाली राजनीति के क्षेत्र में काम करनेवालों के लिए परमेश्वर ने बनायी थी। जिस क्षेत्र में त्याग का मौका रहता है, उसमें शक्ति रहती है। शक्ति का अधिष्ठान वहीं होता है जहाँ त्याग का सहज मौका मिलता है, त्याग करना ही पड़ता है, मनुष्य से त्याग करवाया जाता है। यह नहीं कि मनुष्य त्याग करता है बल्कि त्याग ही मनुष्य के पास जाकर पहुँचता है। इस तरह जहाँ सहज त्याग का मौका रहता है, उस क्षेत्र में शक्ति का संचार होता है।

त्याग में ही शक्ति

स्वराज्य-प्राप्ति के बाद राजनीति का स्वरूप बदल गया है। उस समय कांग्रेस का चवन्निया सदस्य होने में भी अंग्रेजों का दुश्मन बनना पड़ता था

और काफी कष्ट भुगतने पड़ते थे। अंग्रेजों का रोष सहन करना पड़ता था। लेकिन अब कांग्रेस में दाखिल होने से कुछ त्याग करने का नहीं बल्कि पाने का ही मौका मिलता है। जिस क्षेत्र में त्याग करने के लिए मौका कम है जो अधिकार का क्षेत्र है, उसमें शक्ति का संचार नहीं होता। इसका मतलब यह नहीं कि जो राज्य चलाते हैं, वे त्याग नहीं कर सकते। वे त्याग जरूर कर सकते हैं और उन्हें करना भी चाहिए। उनमें से कुछ करते भी हैं। ऐसे जो हैं वे सब भारत के लिए गौरव माने जायँगे। इन्हीं से ही भारत की शक्ति बढ़ेगी। उदाहरण के लिए, राज्य भरत चलाता था पर राम का स्मरण करते हुए अत्यन्त वैराग्यपूर्वक काम करता था। लेकिन असल में राज्य का क्षेत्र त्याग का क्षेत्र नहीं है। राजसत्ता पर आरूढ़ होने के बाद भी कोई त्याग करे तो वह बहुत बड़ी बात होगी लेकिन राज-सत्ता का क्षेत्र सहज त्याग का क्षेत्र नहीं है। भरत का त्याग सहज त्याग नहीं था हेतुपूर्वक किया हुआ त्याग था। राम का त्याग सहज त्याग था क्योंकि जंगल का क्षेत्र सहज त्याग का क्षेत्र है। सत्ता पर आरूढ़ होकर हेतुपूर्वक त्याग करना पड़ता है। जैसे राजा जनक राज्य पर आरूढ़ थे लेकिन उन्हें उसका स्पर्श नहीं था। "मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किंचन"—यह जनक महाराज का एक प्रसिद्ध वचन है कि मिथिला को आग लगे तो उसमें मेरा कुछ नहीं जलता! इस तरह का निर्लिप्त वैराग्यमय और त्यागमय जीवन वे बिताते थे लेकिन यह उनकी अपनी विशेषता थी। विष्णु भगवान् लक्ष्मी के साथ रहते हुए भी अत्यन्त उदासीन थे लक्ष्मी उनके साथ छायास्वरूप रहती रहती थी परन्तु वे परम वैराग्य-संपन्न थे। विष्णु भगवान् का यह चित्र हेतु-पूर्वक त्याग का चित्र है। लक्ष्मी के साथ सहज त्याग नहीं होता। जिस क्षेत्र में सहज त्याग होता है वहाँ शक्ति रहती है। शंकर भगवान् त्यागमय जीवन बिताते थे। उनका जीवन सहज त्याग का जीवन था। रामचन्द्र अरण्य में रहते थे वहाँ उन्हें वन-प्रवास में त्याग करना नहीं पड़ता था त्याग होता ही था। जो क्षेत्र त्याग के लिए अनुकूल होता है वहाँ शक्ति रहती है और जो त्याग के लिए अनुकूल नहीं होता वहाँ शक्ति का क्षय होता है।

स्वराज्य के बाद शक्ति सामाजिक क्षेत्र में

स्वराज्यप्राप्ति के बाद अब राजनीति का क्षेत्र सहज त्याग का क्षेत्र नहीं रहा। पहले वह था क्योंकि स्वराज्य-प्राप्ति एक धर्म हो गया था। उन दिनों उस कार्य में संन्यासी यति और मुनि भी शामिल हो जाते थे। इसलिए उस क्षेत्र में शक्ति-संचार होता था। लेकिन स्वराज्य-प्राप्ति के बाद शक्ति सामाजिक क्षेत्र में आती है। स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सामाजिक क्षेत्र में ऊँच-नीच का और मालिक-मजदूर का भेद मिटाने में लगी हुई स्त्री शक्ति को जगाने में कुचले हुए हरिजनों को उठाने में और उपेक्षित जातियों की सेवा करने में शक्ति रहती है। नयी-समाज-रचना के नव-निर्माण के क्षेत्र में त्याग का सहज मौका मिलता है। इसलिए वहाँ शक्ति का संचार होता है।

कुछ लोग मुझसे भी यह पूछने की हिम्मत करते हैं कि आप राजनीति में क्यों नहीं पड़ते? मैं कहता हूँ कि अगर मैं राजनीति में पड़ूँ, कांग्रेस में या उसके खिलाफ काम करनेवाली पार्टियों में से किसी एक पार्टी में शामिल हो जाऊँ या अपनी कोई स्वतन्त्र पार्टी बनाऊँ, तो ये तीनों काम मेरे लिए कठिन नहीं हैं। यदि मेरा दिल चाहे, तो मैं इन तीनों में से कोई भी काम कर सकता हूँ। मैं अपनी स्वतंत्र पार्टी बनाऊँ तो कुछ लोग मेरे पीछे भी आयेंगे और जैसे दूसरों को वोट मिलते हैं मुझे भी मिलेंगे। अपने मन में मैं तुलना यह करता हूँ कि आज जिस तरह मुक्त मानव बनकर मैं काम करता हूँ और सत्य-कथन के लिए किसी भी प्रकार की कोई रुकावट महसूस नहीं करता हूँ क्या राजनीति मे पड़ने से वह संभव होगा? तब तो मुझे प्रत्येक शब्द बोलने के पहले यह सोचना पड़ेगा कि इसके बोलने से लोग राजी होंगे या नाराज? मुझे कितने वोट मिलेंगे और कितने नहीं? आदि-आदि। तब मैं मुक्त मानव बनकर सत्य-प्रकाशन नहीं कर सकूँगा। जो ताकत मैं आज अपने में महसूस करता हूँ वह आत्म-शक्ति मैं उस हालत में महसूस नहीं कर सकूँगा। फिर तो मैं डिब्बा बनकर किसी इंजन के साथ जुड़ जाऊँगा या इंजन बनकर कुछ डिब्बों के साथ जाने लगूँगा। उस हालत में आज के जैसी सिंह-गर्जना नहीं कर पाऊँगा। लाचारी से एक पटरी पर चलता रहूँगा। जिस तरह आज मैं आजादी से अपने विचार प्रकट करता हूँ हर मनुष्य के साथ मनुष्य के नाते

बात करता हूँ उस तरह उस हालत में नहीं कर पाऊँगा। आज हिन्दुस्तान में मेरे अलावा दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसके पास हर पार्टी का व्यक्ति खुलकर बात कर सकता है। यह एक नैतिक शक्ति है। इसका कारण यह है कि जो समाज-सेवा के क्षेत्र में काम करते हैं उन्हें निरन्तर त्याग का मौका मिलता है। हर रोज नये दर्शन का मौका मिलता है। हमें रोज अलग-अलग दर्शन होता है। बारिश में ठंड में धूप में पहाड़ पर, रेगिस्तान में घूमना पड़ता है। इससे बढ़कर त्याग का मौका और कौन-सा हो सकता है? हर रोज ताजा जीवन हासिल होता है।

आत्म-शक्ति का भान

आत्मशक्ति का भान किस तरह होता है? मनुष्य बचपन में सच्चा रहता है, अतः उसकी स्मरण-शक्ति भी तेज रहती है। गृहस्थी में पड़ने पर वह कुछ कम होती है और बुढ़ापे में और भी कम होती जाती है। यह दुनिया का एक आम अनुभव है। लेकिन मेरा अनुभव इससे उल्टा है। लोग कहते हैं, बचपन में मेरी स्मरण-शक्ति अच्छी थी लेकिन आज उससे अधिक अच्छी है। उस समय श्लोक याद करने में दस मिनट लगते होंगे तो आज दो मिनट ही लगते हैं और मैं अर्थ भी जान लेता हूँ। आप जरा इस पर सोचिये कि दिमाग की यह ताजगी कहाँ से आती है? अब तक लोग मुझ पर बहुत दया करते थे और कहते थे कि बेचारे का शरीर क्षीण हो रहा है। लेकिन आपने देखा कि इधर मैं मजबूत बना हूँ। इसके लिए मैंने खास कुछ भी नहीं किया है। यह एक खेल-सा है। अन्दर से चैतन्य काम करता है। जब चाहे तब खोलो किवाड़—एक कुंजी हमारे पास है जिससे हम जब चाहें तब किवाड़ खोल सकते हैं। फल जब कच्चा रहता है, तो उसका बीज नरम होता है, लेकिन जैसे-जैसे फल पकने लगता है, बीज मजबूत होता जाता है, फल के सड़ने पर तो बीज और भी मजबूत बन जाता है। कच्चा पक्का शिथिल और सड़ा हुआ यह जो फल की प्रक्रिया है, वही शरीर की भी है। होना तो यह चाहिए कि जैसे-जैसे शरीर शिथिल होता जाय वैसे-वैसे अन्दर का बीज मजबूत बनता जाय। विचार-शक्ति स्मरण-शक्ति अन्दर का बीज है। लेकिन हमारे

यहाँ तो कहा जाता है कि 'साठी बुद्धि नाठी'। होना तो यह चाहिए कि साठ साल के बाद हमें जीने का मर्म मालूम हो जाय। उसके बाद फिर असल जीना आरम्भ होता है। लेकिन लोग कहते हैं कि साठ साल हो चुके हैं, अब तो मरने का मौका आया है। असल में साठ साल तक तो मालूम ही नहीं था कि कैसे जीना, क्या खाना, कैसे खाना आदि। साठ साल के बाद जीवन का शास्त्र मालूम हो जाता है। मैं बड़ा हूँ लेकिन साढ़े तेरह हजार फुट की ऊँचाई पर चढ़ा। बरफ की चट्टानों पर चला। साथ में घोड़ा रखा था लेकिन उसका उपयोग नहीं किया। चढ़ते समय थोड़ा श्वास चढ़ता था तो मैं कुछ देर के लिए बैठ जाता था। एक दिन मैं सात घण्टे चला और इस बीच चालीस दफा बैठा। सौ सौ मिनट बैठने में गये। यह अक्ल जवान को नहीं होती। वह एक साथ जोरों से चढ़ता रहता है। फिर छाती पर उसका असर होता है और सबरोग जकड़ लेता है। वह उत्साह में आकर चढ़ता जाता है। उसे मालूम ही नहीं कि जीना कैसे होता है? जीवन के कानून क्या है? साठ साल तक जीने के बाद जीवन के कानून मालूम हो जाते हैं और असल जीवन शुरू होता है। फिर जीवन में नयी शक्ति का और नये उत्साह का संचार होता है।

लादा हुआ ज्ञान तेजस्वी नहीं होता

राजनीतिक क्षेत्र में इस तरह के उत्साह का संचार नहीं होता, क्योंकि वहाँ बाहर की सत्ता पर दारोमदार रहता है। किसी विचार का प्रचार करना है तो लोग कहते हैं कि सरकार द्वारा अपनी-अपनी किताब स्कूल में लाजिमी करवा लीजिये तो हर बच्चे को वह पढ़नी पड़ेगी। लेकिन क्या तुलसीदास ने अपनी रामायण सरकार के द्वारा लाजिमी करवायी थी? यह भी कोई प्रचार का ढंग है? प्रचार तो तब होता है जब आत्मा की बात आत्मा के पास पहुँचती है। तुलसीदासजी ने पैंतालीस साल की उम्र में रामायण लिखी और फिर चालीस साल तक जपते रहे "तुलसी तब तीर-तीर सुमिरत रघुवंश वीर विचरत मति देहु वीर।" हे भगवान्! मुझे ऐसी बुद्धि दे कि गंगा के किनारे तेरा नाम जपता रहूँ! इस तरह से रामायण का प्रचार करते रहे। इन दिनों हर किसीको यही सूझता है कि सरकार के द्वारा बच्चों के लिए किताब लाजिमी करवायी जाय लेकिन लड़के ऐसे बेवकूफ नहीं होते कि लादी हुई

मीज पर सर उठायें। परीक्षा समाप्त होते ही उन्हें ज्ञान का चुनाव हो जाता है। अगर उसी पेपर की परीक्षा दूसरे दिन ली जाये तो आधे लड़के फेल हो जायेंगे। सरकार के जरिये लादी हुई बात से तेजस्विता पैदा नहीं होती।

सरकारी मदद से तेज घटता है

भी प्रभावहृत कंटक जो इन दिनों आध्यात्मिक चिंतन में कमी हुई है, मुझे लिखती है कि जहाँ सरकारी मदद आयी वहाँ तेजस्विता कम हो जाती है। आपने भी कुछ प्रयोग किये हैं। इसलिए आपको इसका अनुभव है। फिर भी हम खादी-ग्रामोद्योग बुनियादी शाला आदि के लिए मदद माँगते चले जाते हैं और सरकार के मना हमें मदद देते चले जाते हैं। लेकिन वे ही नेता हमसे कह रहे थे कि हम इन संस्थाओं को मदद देते तो हैं, पर मदद लेकर ये लोग फीके पड़ते हैं। सारांश यह कि अब सत्ताधारी क्षेत्र शक्ति की स्वाभाविक वृद्धि का क्षेत्र नहीं रहा है, बल्कि शक्ति-क्षय का क्षेत्र बन गया है। जिस तरह विष्णु भगवान् साँप के बिछौने पर सोकर भी शांत रहते थे और 'शान्ताकारं भुजगशयनम्' कहलाते थे उस तरह कोई महापुरुष सत्ता-स्थान में रह कर भी भले ही त्याग कर सके लेकिन साँप का बिछौना शांति का साधन नहीं माना जायगा। कोई गले में पत्थर बाँध कर नदी तैरे, तो यह उसकी एक विशेषता होगी। पर पत्थर नदी तैरने का साधन नहीं माना जायगा। कहा यह जायगा कि वह पत्थर के कारण नहीं बल्कि पत्थर के बावजूद नदी तैरा। सत्ता वैराग्य का साधन नहीं है। हाँ सत्ता के बावजूद कोई महापुरुष वैराग्यसंपन्न रह सकता है।

हमारे पास पैसे के अभाव की शक्ति है

यह बात आपके ध्यान में आयेगी तो कस्तूरबा-ट्रस्ट का क्षेत्र कितना शक्तिशाली है इसका अनुभव आप सबको होगा। सरकार की मदद कम हुई, तो हम कम ताकतवाले बन गये जो ऐसे मानते हैं वे समझते ही नहीं कि असल में ताकत किस क्षेत्र में होती है। हमें समझना चाहिए कि अब सरकारी मदद मिलती है तो उससे हमारी तेजस्विता, बुद्धि-शक्ति और प्रतिभा क्षीण होती है। इसराइल से आये हुए एक भाई हमसे कह रहे थे कि वहाँ पैसे की कोई

कमी नहीं है। मैंने कहा कि हमारे यहाँ पैसे के अभाव की कोई कमी नहीं है। समझने की बात है कि उनके पास पैसे की शक्ति है तो हमारे पास पैसे के अभाव की शक्ति है। जो इसे समझेगा वह इस ढंग को विकसित करेगा। जब स्वराज्य की प्राप्ति के पहले हम कांग्रेस के साथ रचनात्मक काम करते थे तो उसमें हमें जेल जाना पड़ता था। लेकिन आज सरकार के साथ काम करें, तो हमारे लिए आलीशान मकान बनाये जाते हैं जिनसे शक्ति बढ़ती नहीं घटती है! आज रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांति-निकेतन का रूपान्तर भी एक मामूली युनिवर्सिटी में हो गया है। अब वहाँ उनकी प्रतिभा का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। महात्मा मुंशीराम के गुरुकुल ने एक जमाने में अपनी स्वतंत्र परीक्षाएँ चलायीं लेकिन आज वह भी युनिवर्सिटी के साथ जुड़ा हुआ है। जिस शौनक का नाम मैं बचपन से सुनता था वहाँ के गुरुकुल में मैंने देखा कि बच्चे सुबह दस मिनट सन्ध्या-वंदन करते हैं और फिर दिनभर वही सरकारी पढ़ाई चलती रहती है। वहीं पर एक जैन होस्टल था। वहाँ कुछ थोड़ा जैनों को संस्कार दिया जाता था और बाकी वही पढ़ाई चलती थी। इस तरह दस मिनट के लिए ऊपर ऊपर से कुछ संस्कार दिये जायें तो उनको पटक देने में लड़कों को देर कितनी लगेगी?

नैतिक चीज के लिए सत्याग्रह क्यों नहीं?

इन्दौर में एक महीना रहने से मुझे बहुत लाभ मिला। मैंने वहाँ दीवालों पर ऐसे गंदे चित्र देखे कि मुझे लगा कि उन्हें हटाना ही होगा। मेरे मन में विचार आया कि उनका प्रतिकार करने के लिए एक भी कदम सामने क्यों नहीं आता है? मैंने वहाँ कहा कि जो चित्र मालिक की सम्मति के बिना लगाये गये हैं उनको हटाना होगा। जहाँ वे मालिक की सम्मति से लगाये गये हैं वहाँ उन्हें मालिक को समझाकर हटाना होगा। कुछ चित्रों को हटाने के लिए नगर निगम की सम्मति लेनी होगी। सबको समझाने पर भी कोई न समझे तो सत्याग्रह करना होगा। इस तरह की नैतिक चीज के लिए भी सत्याग्रह क्यों नहीं किया जाता? नागरिकों को समझना चाहिए कि हमारे गृहस्थ-धर्म की अपनी एक प्रतिष्ठा है। किसीको हमारी आँखों पर आक्रमण करने का

हक नहीं है। जिनको ऐसे चित्रों का शौक है वे उन्हें अपने रंगमहलों में चाहे जमायें। हम किसीकी आजादी को सीमित नहीं करना चाहते। उन चित्रों को देखकर मुझे लगा कि उनका डटकर विरोध करना ही होगा। मैंने कहा कि पहले सबको समझाओ और फिर देखो कि चित्र टिकते हैं या हम टिकते हैं। इस तरह के काम अब हमें उठाने होंगे।

हमें समझना चाहिए कि पुराने जमाने का सेवा का तरीका और आज का तरीका भिन्न है। आज जो सामाजिक क्षेत्र में रहेंगे उन्हें त्याग का मौका मिलेगा इसलिए शक्ति हासिल होगी। राजनीतिक क्षेत्र में रहनेवालों को वैसा मौका नहीं मिलेगा इसलिए उन्हें शक्ति हासिल नहीं होगी।

इन्दौर (राजस्थान)
२-८ १

राजनीति का शुद्धीकरण

आज समाज में जिस तरह व्यवहार होता है और राजनीति में जो व्यवहार चलता है राजनीति और धार्मिक क्षेत्र में जो दम्भ दीखता है यह सब देख कर मुझे बहुत वेदना होती है और मैं अपनी वेदना बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रकट करता हूँ। मैं समझता हूँ कि बापू के जाने के बाद भारत में जिस तरह राजनीति चलती है, उसी तरह अगर चाये चलानी हो तो बापू ने आकर क्या किया? उनके व्यवहार का कुछ लाभ हमें मिला या नहीं? उन्होंने गोखलेजी के पास से राजनीति शुद्ध करने का एक शब्द लिया था। गोखलेजी ने 'सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसाइटी' की स्थापना की थी। उसके उद्देश्य में स्पष्ट कहा था कि राजनीति को उदात्त बनाना और उसको अध्यात्म की योग्यता देना है। इसमें उन्होंने 'राजनीति का शुद्धीकरण' ऐसे स्पष्ट शब्दों का प्रयोग भी किया था। बापूजी ने ये शब्द उठा लिये और उसका शुद्धीकरण करने के लिए जितना प्रयास किया ऐसा दूसरा किसीने किया हो यह मैं नहीं जानता। राजनीति में रहने पर भी सत्य पर सतत नजर रखकर काम करने की बात जनक महाराज की हम सुनते हैं। परन्तु ऐसा देखा नहीं था। बापू को तो नजर के सामने ही देखा है। सत्य पर जो दृष्टि थी उसे वे जरा भी विचलित नहीं होने देते

थे और काम करते थे। उसका कुछ असर देश पर और देश की राजनीति पर हुआ है क्या? यह जब मैं पूछता हूँ और बारीक नजर से देखता हूँ तो ऐसा भास नहीं होता कि उसका कोई बहुत असर हुआ है। दूर दृष्टि से सिद्ध होगा कि असर हुआ है या होनेवाला है। आगे दूसरे देशों में क्या चलता है, यह मैं नहीं जानता। परन्तु अपने देश में पुराने जमाने में जिस तरह राजनीति चलती थी उससे बहुत ही भिन्न राजनीति आज चलती है ऐसा भास नहीं होता।

लोकनीति आवश्यक

'राजनीति का शुद्धीकरण' यह जो शब्द है उसका अर्थ है राजनीति की जगह पर लोक-नीति की स्थापना होनी चाहिए। भले इसमें चाहे जितना समय लगे। परन्तु राजनीति विज्ञान के युग में न निभ सकती है, न रह सकती है। पाकिस्तान, फ्रांस, रूस, अमेरिका, जापान, जर्मनी आदि में क्या राजनीति चलती है? राजनीति क्या शस्त्रों का खेल चलता है। जिस राष्ट्र के पास तीव्र शस्त्रास्त्र होंगे वे राष्ट्र राजनीति चलायेंगे। इसलिए यह शस्त्र-नीति ही है। विज्ञान-युग में भयानक शस्त्रास्त्र पैदा होते हैं। इसलिए ये सारे राष्ट्र *किस तरह निःशस्त्र हो जायें* शस्त्र कम कैसे हो जायें ऐसा नहीं तो कुछ बड़े शस्त्रों का उपयोग न करें इसका विचार करना और इसके लिए जीवन अर्पण करना—इस विचार के आधार पर समाज बनाना इसका नाम 'लोकनीति की स्थापना' है। लोकनीति की स्थापना के बिना विज्ञान-युग में राजनीति को शुद्ध करने का दूसरा कोई भी रास्ता मेरे ध्यान में नहीं आता। इसलिए सत्ता का जो केंद्रीकरण होता है, अपने देश में 'वेलफेयर' (कल्याण कारी राज्य) के नाम पर और दूसरे देशों में दूसरे नाम होते हैं और वहाँ अफसरशाही चलती है वहाँ तो सत्ता का केंद्रीकरण होता ही है। परन्तु जहाँ अफसरशाही नहीं वहाँ भी सत्ता विशिष्ट मनुष्यों के हाथ में होती है। लोक-शाही का नाम होता है पर लोकशाही का रूप नहीं होता। इस तरह लोक-शाही का रूप स्वयं ही अपना संहार कर लेता है और नाममात्र की लोकशाही रहती है। परन्तु वस्तुतः वह लोकशाही नहीं होती है। इस तरह सब राष्ट्रों

में चलता है। आज एक भी राष्ट्र ऐसा नहीं दीखता है कि जहाँ लोकशाही उसके मूल अर्थ में हो। विज्ञान-युग में ऐसा एक भी राष्ट्र हो भी नहीं सकेगा क्योंकि चाहे जितनी राजनीति मुताबिक की बात करो तो भी सामान्य देश के पास अगर विशेष प्रकार के शस्त्र रखने हों तो उसे अपना सब कुछ छोड़कर शस्त्र की झंझट में पड़ना पड़ता है और उसके अपने हाथ में कुछ नहीं रहता। इसलिए अपने देश का आयोजन हम स्वयं नहीं करते हैं और दूसरे देश के पास से करवाते हैं। हम कोई खर्च करते हैं या नहीं करते हैं अथवा किस तरह करते हैं—कम करते हैं या ज्यादा यह सारा हमारे हाथ में नहीं रहता। दूसरे देशों के हाथ में है। अपने संयोजन के स्वामी हम नहीं हैं एसी स्थिति आज हर देश की है। अमेरिका आज समर्थ है, फिर भी उसका संयोजन रूस की ओर देखकर होता है और रूस समर्थ है, फिर भी उसका संयोजन अमेरिका की ओर देखकर होता है। अपना संयोजन स्वयं करे,ऐसा आज कोई देश नहीं है, इसलिए सच्चे अर्थ में आज लोकशाही कहीं भी नहीं है।

इसका उपाय लोकनीति की स्थापना के सिवा और कुछ नहीं है। परन्तु सवाल यह पूछा जाता है कि जब तक लोकनीति की स्थापना नहीं होगी तब तक बीच के समय में क्या करेंगे ? यह बहुत समझने की जरूरत है कि दुनिया के आरम्भ के काल से यह संक्रमणावस्था चलती है। कल के और आनेवाले कल के बीच आज का दिन यह संक्रमण-काल है। बीता हुआ क्षण और आने वाले क्षण के बीच में यह क्षण एक संक्रमण-काल है। इसलिए हमेशा सबके लिए संक्रमण-काल है ही। सवाल हमेशा उसीका आता है और संक्रमण काल के नाम से मूल चीज को दूर करने की वृत्ति मनुष्य रखेगा तो जिस तरह सब धर्म निकम्मे हो गये हैं उसी तरह अहिंसा का विचार भी निकम्मा हो जायगा।

धर्म का मूल विचार समझें

यूरोप-अमेरिका में खिस्ती-धर्म चलता है। खिस्ती-धर्म अहिंसा पर जितना जोर देता है, उतना शायद ही दूसरा कोई धर्म देता होगा। उसमें अहिंसा और प्रेम पर बहुत स्पष्ट भाषा में जोर दिया है। वे लोग हर रविवार को बाइबल

पढ़ते हैं। बहुत कम लोग ऐसे होंगे जिन्होंने बाइबल कई बार न पढ़ी हो। स्कूल में भी लड़कों को भाषा की दृष्टि से बाइबल सिखायी जाती है और ईसामसीह का नाम लिया जाता है। उसके उत्सव भी होते हैं, साथ-साथ शस्त्र भी बढ़ते हैं। इसका मेल किस तरह बैठेगा? कहते हैं कि संक्रमणावस्था में यह करना पड़ता है। समाज जब पूर्ण हो जायगा तब नहीं करना पड़ेगा। जब समाज पूर्ण बनेगा तब उपदेश का अमल होगा। तब तक शस्त्र बढ़ाने होंगे। तभी धर्म का रक्षण न्याय का रक्षण सत्य का रक्षण होगा। मात हिंसा के नाम पर शस्त्र बढ़ा सकते हैं, शस्त्र लड़ा किया जा सकता है, शस्त्र की खोज की जा सकती है और उसके लिए वैज्ञानिकों को अपना जीवन देना पड़े तो देना चाहिए, यह सारा कर सकते हैं। यह करने में ईसाई-धर्म की जो अहिंसा पर श्रद्धा है, उसका कोई विरोध नहीं आता है, ऐसा मानते हैं। ईसामसीह जो सिखावन देते हैं, वह समाज जब पूर्ण होगा तब अमल में आयगी। आज से ही अगर ईसामसीह की सिखावन अमल में लानी हो तो मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन में आ सकते हैं परन्तु सामाजिक तौर पर समाज पूर्ण बनेगा, तभी उसका अमल पूर्ण होगा। व्यक्तिगत तौर पर उसका अमल व्यक्ति आज कर सकता है और वह कुछ व्यक्ति कर सकते हैं सब नहीं। तीसरी बात यह है कि अहिंसा का जो सिद्धान्त है उसका उपयोग आज समाज में नहीं दीखता है परन्तु परलोक में इसका उपयोग होता है। याने इसका उपयोग मरने के बाद हो सकता है। इसलिए एक तो व्यक्तिगत उन्नति के लिए, दूसरा, समाज जब पूर्ण होगा तब और तीसरा आज की अवस्था में इहलोक में समाज के लिए शस्त्रास्त्र वगैरह बढ़ाना जरूरी है और इसका ईसामसीह की सिखावन के साथ कोई विरोध नहीं है परन्तु परलोक के लिए इसका उपयोग जैसा यह लोग मानते हैं, जैसा हमारे हिन्दू लोग सिद्धान्त में तो अद्वैत में मानते हैं, परन्तु व्यवहार में तो जातिभेद चाहिए। पर विचार करते समय अद्वैत की और शुद्ध अद्वैत की बात करते हैं। एक कहता है अद्वैत तो दूसरा कहता है शुद्ध अद्वैत। याने अद्वैत को शुद्ध करो और उसमें दोषों को बतलाना करके उनको निकाल दो। परन्तु व्यवहार में जातिभेद चलता ही है। इस तरह धर्म के मूलभूत विचार को उन्होंने समझा नहीं है।

गांधी-विचारवाले सोचें

इसी तरह से इसलाम और बौद्ध-धर्म भी करता है। धर्म का विचार संक्रमणावस्था की दृष्टि से समाज के लिए आज कोई काम का नहीं। परन्तु समाज के लिए तो आज की दशा में यह विषय काम में नहीं आयगा। समाज पूर्ण दशा में पहुँचेगा तभी काम में आयेगा। जिस तरह धार्मिक लोग मानते हैं उसी तरह से हम राजनीतिक लोग मानते हैं और उसी तरह से गांधी-विचारवाले भी मानेंगे तो मुझे तो तोबा-तोबा कहना होगा। गांधीजी के नाम में ऐसा चलता है तो मुझे लगता है कि धरतीमाता फटकर मुझे अंदर ले ले तो अच्छा होगा।

महापुरुष करुणावान् और दयावान् होते हैं, इसलिए हमारी स्थिति देखकर बहुत छूट देते हैं। बापू की एक शिष्या थी। वह अंग्रेजी वैद्यक-शास्त्र अच्छा जानती थी। वह सेवा कर सके इस हेतु से अंग्रेजी पद्धति का अस्पताल सेवाग्राम में शुरू किया। आज भी वह चलता है, क्योंकि लोग अंग्रेजी दवा लेना चाहते भी हैं। तो एक ओर बापू ने यह अस्पताल खोलने दिया और दूसरी तरफ उरुळीकांचन में प्राकृतिक चिकित्सालय भी खुलवाया। कहा हमारे लिए प्राकृतिक उपचार ही होने चाहिए। तो दूसरा सेवाग्राम में ऐलोपैथी का अस्पताल किसलिए खोला? एक लाड़ली बेटी को विद्या आती थी और लोग यह सेवा चाहते हैं तो भले ही सेवा हो ऐसा कहकर करुणा की प्रेरणा से बापू ने स्वयं अस्पताल शुरू करने की इजाजत दी। अब एलोपैथी का अस्पताल और वह भी सेवाग्राम में। इसकी मिसाल देकर कोई मुझ पर ब्रह्मास्त्र फेंके तो मैं उसे क्या कहूँगा? तब तो मुझे मौन ही लेना पड़ेगा। इसलिए यह सारा चलता है। मुझे उससे बहुत दुःख होता है। तिस पर भी जो चलता है, वह अगर परमेश्वर भी सहन करता है, तो मेरे मन में आता है कि तू परमेश्वर से भी ज्यादा ऊँचा हो गया क्या कि तुझसे सहन भी नहीं होता है? इसलिए सहन करना पड़ता है। ऐसा विवेक करके आखिर मैं सहन करता हूँ। पर यह सारा जिस समाज के सामने कहा गया वह समझेंगे कि नहीं मैं नहीं जानता। पर आज आखिरी दिन था इसलिए ऐसा विचार प्रकट किया।

बरोल (गुजरात)
१५-११-'५८

राष्ट्र विकास की सही दिशा २८.

छोटी योजनाएँ या बड़ी योजनाएँ

छोटी-छोटी योजनाएँ हम स्वयं अपनी शक्ति से करें, तो हिन्दुस्तान जितना प्रगति कर सकेगा उतनी बड़ी-बड़ी योजनाओं के लाद लेने से नहीं कर सकेगा। भगवान् चाहे, तो हम बड़े-बड़े काम भी कर सकते हैं, लेकिन छोटे कामों में प्रवीण हुए बिना बड़े काम किसी भी तरह नहीं कर सकेंगे। इसलिए छोटे कामों की बुनियाद पर हम बड़े कामों को खड़ा करें।

गाँव की सफाई की ही बात लीजिये। बाहरी मदद की अपेक्षा रखे बिना ही सारे लोग सम्मिलित होते हैं, सफाई करते हैं, मल-मूत्र को गड्ढे में पूर देते हैं और खाद तैयार कर लेते हैं, तो दो तरह का काम हो जायगा। एक तो उन्हें खाद उपलब्ध होगी तथा वे बीमारी से बच जायेंगे एवं यह भी समझ जायगे कि हममें भी कुछ करने की क्षमता है।

बड़ी योजनाएँ ऊपर से लादने की अपेक्षा आप उन्हें सहज रूप से कर सकें, ऐसे कामों के लिए प्रोत्साहित करें, तो स्वतंत्र कर्तृत्व जगाने में महत्त्वपूर्ण योग हो सकता है। जो काम वे नहीं कर सकते वैसे काम उन पर आरोपित कर देने से लोग अधिक परावलंबी बनते हैं। इसलिए आपको उनके पास पहुँच कर उन्हें अपने पुरुषार्थ की प्रतीति करानी चाहिए। यह आपके लिए तालीम देने का अच्छा माध्यम भी बन जाता है। जैसे कि आप सफाई के कार्यक्रम में शरीक हुए, तो उन्हें सफाई-विज्ञान से अवगत करा सकते हैं। खाद बनाने की पद्धति 'सोकपिट' बनाने का ढंग और स्वास्थ्य की सर्वसुलभ दृष्टि बताने का उससे अच्छा अवसर क्या हो सकता है? प्रारंभ में आप योग देते रहें तो बाद में प्रत्यक्ष लाभ देखकर गाँववाले स्वयं उस काम को उठा लेंगे।

दूसरी बात मैं पंचायतों के बारे में कहना चाहता हूँ। आज गाँवों में पंचायतों से लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक हो रही है। अब गाँववालों को सर्वसम्मति से कारोबार चलाने के बारे में समझाना चाहिए। 'मेजारिटी' से काम करने की प्रक्रिया में आज गाँवों में अनेक दल खड़े हो गये हैं। किसी भी

कारण से हो गांव में दल हो जाने से गांवों की तरक्की नहीं हो सकती । तरक्की की प्रथम शर्त है 'गांवों की एकता' । चुनाव आदि कई कारणों से गांव-गांव में झगड़े होते रहते हैं। इससे कहीं एकता नहीं बनती। एकता के अभाव में निर्माण की कोई योजना सफल नहीं हो सकती । इसलिए गांवों में एकमत से काम होना जरूरी है और वह एकमत कैसे बने यह आपको देखना चाहिए।

सर्वोदय-योजना और विकास-योजना

प्रश्न : सर्वोदय और विकास-योजना के कार्यक्रमों का सामञ्जस्य कहाँ कैसे किस तरह होना चाहिए ?

उत्तर : विकास-योजना सर्वोदय के लिए ही है। सर्वोदय यानी सबका भला ! सरकारी योजनाओं में जो सबसे नीचे हैं, गिरे हुए हैं, विपन्न हैं, उन्हें ऊपर उठाने की प्रधानता दी जानी चाहिए। आज वैसा नहीं है। इन दिनों सरकार की ओर से जो मदद दी जा रही है, वह अधिकांश उन लोगों को दी जाती है जिन्हें मदद की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि दूसरे गरीबों को आवश्यकता है जो उस मदद को पाने में असमर्थ हैं। इसलिए जरूरतमन्द लोगों की तलाश करनी चाहिए। सम्भव है उस निमित्त भी अपने वेश-भूषा में परिवर्तन करना पड़े। यह बाबूगिरी की वेश-भूषा त्यागकर सीधी-सादी वेश-भूषा का इस्तेमाल करना चाहिए।

भगवान् कृष्ण गोकुल में ग्वाल-बालों के साथ रहते थे उनकी सेवा करते थे। तत्सम वर्तन करके ही वे उनके दिलों को जीत सके थे—वैसे ही विकास योजनावालों के लिए गांव के लोगों को अपने से भिन्नता प्रतीत नहीं होनी चाहिए। गांधीजी न सबको खादी-पोशाक सुझायी थी उसके पीछे भी यही तथ्य था। आप लोग खादी पहनें तो गांववालों को लगेगा कि ये हममें से ही एक हैं। लोक-जीवन से जरा भी भिन्नता दिखलाई देने पर वे आपके सामने दिल खोलकर बातें नहीं कर सकेंगे।

गांववालों के मन में अपना स्थान बनाने के लिए उन पर प्रभावमय करना होगा। हमारे सारे व्यवहारों में उन्हें न भय मालूम होना चाहिए और न अति

छोटी योजनाएँ या बड़ी योजनाएँ

छोटी-छोटी योजनाएँ हम स्वयं अपनी शक्ति से करें, तो हिन्दुस्तान जितना प्रगति कर सकेगा उतनी बड़ी-बड़ी योजनाओं के हाथ लेने से नहीं कर सकेगा। भगवान् चाहे, तो हम बड़े-बड़े काम भी कर सकते हैं, लेकिन छोटे कामों में प्रवीण हुए बिना बड़े काम किसी भी तरह नहीं कर सकेंगे। इसलिए छोटे कामों की बुनियाद पर हम बड़े कामों को खड़ा करें।

गाँव की सफाई की ही बात लीजिये! बाहरी मदद की अपेक्षा रखे बिना ही सारे लोग सम्मिलित होते हैं, सफाई करते हैं, मल-मूत्र को गड्ढे में पूर देते हैं और खाद तैयार कर लेते हैं, तो दो तरह का काम हो जायगा। एक तो उन्हें खाद उपलब्ध होगी तथा वे बीमारी से बच जायेंगे एवं यह भी समझ जायेंगे कि हममें भी कुछ करने की क्षमता है।

बड़ी योजनाएँ ऊपर से लादने की अपेक्षा आप उन्हें सहज रूप से कर सकें ऐसे कामों के लिए प्रोत्साहित करें, तो स्वतंत्र कर्तृत्व जगाने में महत्त्वपूर्ण योग हो सकता है। जो काम वे नहीं कर सकते वैसे काम उन पर आरोपित कर देने से लोग अधिक परावलम्बी बनते हैं। इसलिए आपको उनके पास पहुँच कर उन्हें अपने पुरुषार्थ की प्रतीति करानी चाहिए। यह आपके लिए तालीम देने का अच्छा माध्यम भी बन जाता है। जैसे कि आप सफाई के कार्यक्रम में शरीक हुए तो उन्हें सफाई-विज्ञान से अवगत करा सकते हैं। खाद बनाने की पद्धति 'सोकपिट' बनाने का ढंग और स्वास्थ्य की सर्वसुलभ दृष्टि बताने का उससे अच्छा अवसर क्या हो सकता है? प्रारंभ में आप भोग देते रहें तो बाद में प्रत्यक्ष लाभ देखकर गाँववाले स्वयं उस काम को उठा लेंगे।

दूसरी बात मैं पंचायतों के बारे में कहना चाहता हूँ। आज गाँवों में पंचायतों से लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक हो रही है। अब गाँववालों को सर्वसम्मति से कारोबार चलाने के बारे में समझाना चाहिए। 'मेजारिटी' से काम करने की प्रक्रिया में आज गाँवों में अनेक दल खड़े हो गये हैं। किसी भी

कारण से हो गाँव में दल हो जाने से गाँवों की तरक्की नहीं हो सकती। तरक्की की प्रथम शर्त है 'गाँवों की एकता'। चुनाव आदि कई कारणों से गाँव-गाँव में झगड़े होते रहते हैं। इससे कहीं एकता नहीं बनती। एकता के अभाव में निर्माण की कोई योजना सफल नहीं हो सकती। इसलिए गाँवों में एकमत से काम होना जरूरी है और यह एकमत कैसे बने यह आपको देखना चाहिए।

सर्वोदय-योजना और विकास-योजना

प्रश्न : सर्वोदय और विकास-योजना के कार्यक्रमों का सामञ्जस्य कहाँ कैसे किस तरह होना चाहिए ?

उत्तर : विकास-योजना सर्वोदय के लिए ही है। सर्वोदय यानी सबका भला। सरकारी योजनाओं में जो सबसे नीचे हैं, गिरे हुए हैं, विपन्न हैं, उन्हें ऊपर उठाने की प्रधानता दी जानी चाहिए। आज वैसा नहीं है। इन दिनों सरकार की ओर से जो मदद दी जा रही है, वह अधिकांश उन लोगों को दी जाती है जिन्हें मदद की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि दूसरे गरीबों को आवश्यकता है जो उस मदद को पाने में असमर्थ हैं। इसलिए जरूरतमन्द लोगों की तलाश करनी चाहिए। सम्भव है, उस निमित्त भी अपने वेष-भूषा में परिवर्तन करना पड़े। यह बाबूगिरी की वेष भूषा त्यागकर सीधी-सादी वेष भूषा का इस्तेमाल करना चाहिए।

भगवान् कृष्ण गोकुल में ग्वाल-बालों के साथ रहते थे उनकी सेवा करते थे। तादात्म्य अर्जन करके ही वे उनके दिलों को जीत सके थे—वैसे ही विकास योजनावालों के लिए गाँव के लोगों को अपने से भिन्नता प्रतीत नहीं होनी चाहिए। गांधीजी ने सबको खादी-पोशाक सुझायी थी उसके पीछे भी यही तथ्य था। आप लोग खादी पहनें तो गाँववालों को लगेगा कि ये हममें से ही एक हैं। लोक-जीवन से जरा भी भिन्नता दिखलाई देने पर वे आपके सामने दिल खोलकर बातें नहीं कर सकेंगे।

गाँववालों के मन में अपना स्थान बनाने के लिए उन पर प्रेमाक्रमण करना होगा। हमारे सारे व्यवहारों में उन्हें न भय मालूम होना चाहिए और न अति

जाकर ही। आदर से भी लोग चूकते नहीं हैं। लोहचुम्बक मिट्टी में से लोह कणों को आकृष्ट कर लेता है, वैसे ही आपको भी गरीबों को आकृष्ट करना चाहिए। भक्त भगवान् के दर्शन करने के लिए मन्दिर जाते हैं। मन्दिर में प्रणाम किये बिना वे किसीसे वार्तालाप भी नहीं करते ठीक उसी तरह आपको भी दरिद्रनारायण के पास पहुँचना है। वे हमारे पास नहीं आयेंगे हमें ही उनके पास जाना होगा। बीच में अवरोध होगा। कई पर्दे होंगे किन्तु हमें सबको लांघते हुए यह तलाश करनी होगी कि गाँव में दीन-दुखी दलित पीड़ित परित्यक्त कौन है? कौन है ऐसा जिसे पूछनेवाला कोई भी न हो? यदि कोई हो तो हमारी सेवा उसीके लिए समर्पित होनी चाहिए। उसे आवश्यक काम मिले ऐसा प्रयत्न करना चाहिए।

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि जनता के साथ घुल-मिल जाने से काम में प्रभावशालिता नहीं रहती इसलिए लोगों से जरा अलग रहकर रौब दिखाते रहने से काम होगा। लेकिन यह एकदम पुरानी बात है। अब इसे आदर्श मानकर आप जन-मानस में नहीं जम सकेंगे। पाकिस्तान में अयूब जो प्रभाव दिखा रहा है, इसे आप स्वीकार करें, तो फिर आपको मिलिटरी के हाथों में शासन-सूत्र सौंपना होगा। मिलिटरी के जवानों जितना प्रभाव रखने में आप कामयाब नहीं हो सकते। पर यह बात भी अब नहीं चलेगी अतः आपको जनता के परिचय में खूब ही आना चाहिए।

परिचय का अर्थ यह नहीं कि लोगों के साथ हम भी चरित्रहीन बन जायें। चारित्र्य तो हमारा ऊँचा रहना ही चाहिए, लेकिन जीवन में उनके साथ घुल-मिल जाना चाहिए। अधिकारी स्वयं अपने हाथ में झाड़ू लेकर सफाई करे। हम लोग अलग रहकर गाँववालों से सफाई करवायें इसमें कोई प्रतिष्ठा नहीं है। साथ काम करने में ही प्रतिष्ठा है। लेकिन वे जैसी गंदगी करते हैं, वैसी गंदगी हमें नहीं करनी चाहिए। जिसका चारित्र्य गिर गया है, उसके साथ हम गिरें नहीं। उन्हें उठाने की भरपूर कोशिश करें, इसीमें हमारा पुरुषार्थ है। अगर हम उन्हें ऊँचा उठाने के लिए जरा झुकेंगे नहीं तो कैसे चलेगा? बच्चे को ऊपर उठाने के लिए माँ को झुकना ही पड़ता है। वह अगर बिना झुके ही अकड़कर खड़ी रहे, तो क्या बच्चे को उठा सकेगी?

'स्वराज्य प्राप्ति से पूर्व जैसा रोब था वह अब नहीं रह गया है। पहले अंग्रेजी में बोलते थे अब हिन्दी में बोलने से लोगों पर जरा भी असर नहीं होता'—ऐसा जो समझते हैं वे ठीक नहीं सोचते। सच तो यह है कि अब वैसा रोब रह ही नहीं सकता। जनता को मताधिकार दें और रोब भी दिखायें—ये दोनों चीजें एक साथ नहीं हो सकती। अगर आपको रोब रखना है, तो मताधिकार मत दीजिये और मताधिकार देना है, तो रोब रखने की कल्पना छोड़ दीजिये। मताधिकार प्राप्त करते ही लोग आपके मालिक बन गये। अब आपको उनकी इज्जत करनी होगी। नम्र भाव से सेवा करनी होगी। ऐसे वर्तन में सिविलियन आदमी यह मानता कोई कारण नहीं और न यही मानने का कोई कारण है कि जरा अलग रहने से हमारा प्रभाव अक्षुण्ण रह जायगा।

अतः हम जनता के साथ मिलें और जनता के हितों को प्रधानता दें तो विकास-योजना का कार्यक्रम सर्वोदय-योजना के साथ सामञ्जस्य पैदा करने का प्राथमिक रूप हो जायगा। आगे फिर हमें क्रमशः कैसे बढ़ना है, क्या करना है यह सब तो अपने-आप सूझनेवाला है।

विकास-योजना की सही दिशा

प्रश्न : क्या आपकी राय में आज की विकास-योजनाओं का कार्यक्रम ठीक है? यदि नहीं तो इसमें कौन से सुधार अपेक्षित हैं?

उत्तर : गाँवों में कच्चे माल का पक्का माल बनाना ही गाँवों को विकास की ओर अग्रसर करने का पहला कार्यक्रम है। जब तक गाँवों का कच्चा माल निर्यात होता रहेगा, तब तक पक्के रास्ते बनाना आदि जितने भी काम हैं वे सब शोषण के जरिये ही सिद्ध होते रहेंगे। जो लोग सेवा के निमित्त से गाँवों में जायेंगे वे भी उस शोषण में सहायक होंगे। इसलिए गाँव की आमद कैसे बढ़े, ग्रामोद्योगों को कैसे विकसित किया जाय देहात में कच्चे माल का पक्का माल बनाने में क्या कठिनाई है इस बारे में प्रबल ध्यान देना चाहिए। इसका आयोजन आप कर सकते हैं।

जैसे शरीर में हाथ पाँव तथा आँख का पृथक-पृथक रहने के बावजूद भी पारस्परिक सहयोग रहता है वैसे ही हमारे उद्योगों में सहकार रहना चाहिए।

आज हमारे खादी और ग्रामोद्योग का काम भी अलग-अलग चलता है। दोनों में पूरा सहयोग होना कठिन माना जाता है। दोनों के हितों में विरोध है, यह कितनी गलत बात है! मेरी आँखों के सामने पेड़ है। पेड़ पर पके फल हैं। आँखें देखती हैं और पाँव तत्काल उधर घूम जाते हैं। नजदीक पहुँचते ही हाथ उठता है, पत्थर फेंकता है, फल गिराता और मुँह खाता है। इस समस्त प्रक्रिया में एक-दूसरे के लिए कितना सहयोग है? अगर पाँव वृक्ष की ओर चलते लेकिन हाथ पत्थर फेंकने का कार्य नहीं करता तो फलोपलब्धि कहाँ से होती? तीनों के सहकार से ही इष्टसिद्धि होती है। इच्छा हुई, उसी क्षण तीनों को प्रेरणा होती है, तीनों अपना-अपना काम करते हैं और देखते-देखते वस्तु मुँह में चली जाती है। किन्तु कहीं ऐसा हो कि आँख का दर्शन पाँव तक पहुँचते-पहुँचते चार महीने बीत जायें तथा पाँव का आदेश हाथों को मिलते-मिलते महीनों लग जायें तो आम बंदर खा जायेंगे और आपकी योजना धरी ही रहेगी। वैसी ही आज की हालत है।

आज सरकारी विभागों में परस्पर सहयोग नहीं होता। मैंने खादीवालों एवं नेताओं से कहा था कि इन सब लोगों का सहयोग होना चाहिए। विकास योजनावालों, खादी-बोर्डवालों तथा अन्यान्य सेवकों को चाहिए कि वे अपना निरीक्षण-परीक्षण करते हुए कार्य करें। एक रास्ते के बारे में सोचेगा, दूसरा खादी की तरक्की की योजनाएँ बनायेगा और तीसरा खेती के अनुसन्धान की कल्पनाएँ ही करता रहेगा तो कोई काम नहीं हो सकेगा। आज राष्ट्र में जो निर्माण-कार्य सफल नहीं हो रहा है, उसका भी मुख्य कारण पारस्परिक सहयोग का अभाव ही है। इसलिए इस दूरी की खाई को हम पाट सकें तो विकास का ठोस काम हो सकेगा।

विकास-अधिकारियों का सहयोग

प्रश्न ग्रामदानी गाँवों में विकास-अधिकारी क्या योग दे सकते हैं?

उत्तर : विकास-अधिकारियों को ग्रामदानी गाँवों में पहुँचकर उन्हें आश्वासन देना चाहिए। उन्हें समझाना चाहिए कि आपने बहुत अच्छा कार्य किया है। आजकल जैसे ही लोग ग्रामदान की घोषणा करते हैं वैसे ही आसपास

वाले उन्हें समझाने लगते हैं कि अब तुम्हारा कैसे चलेगा ? तुम लोगों ने स्वामित्व-विसर्जन कर दिया तो अब तुम्हारी हैसियत मजदूर की हो जायगी। अब तुम्हें कर्ज कौन देगा ? व्यापारी-साहूकार भी अपना कर्ज वसूल करवाने के लिए पीछे पड़ जाते हैं। इस तरह ग्रामदान होते ही वहाँ के लोगों ने मानो कोई पाप कर लिया हो, इस तरह लोग उनके पीछे पड़ जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में आप लोग उन्हें आवश्यक रूप से समझा सकते हैं कि ग्रामदान किया तो बहुत अच्छा किया। अब जमीन अलग-अलग बाँटनी है, तो अलग-अलग बाँटो और साथ रखनी है, तो साथ रखो सहकारी कृषि करो। मान लो अलग-अलग बाँटना ही चाहते हो, तो थोड़ी जमीन सामूहिक कृषि के लिए रखो। सभी लोग मिलकर रहो। मिलकर रहने से ही हमारी शक्ति बढ़ती है। आज गाँव-गाँव में फूट पड़ी हुई है, सभी तरफ दलबंदी हो रही है। ऐसी स्थिति में आप लोगों ने दलबंदी के ऊपर उठकर एकमति से ग्रामदान का जो निर्णय किया है वह बहुत महत्त्वपूर्ण कदम है। राष्ट्र में ऐसे ही महत्त्वपूर्ण निर्णय होंगे गाँववाले एक होंगे सभी मिलकर योजना बनायेंगे तभी हमारे देश में वास्तविक आजादी आयगी। आजादी को लानेवाले ग्रामदानी गाँवों के लोग मजदूर नहीं मालिक होंगे—सभी मालिक।

यहाँ की सरकार ने तो मुझे यहाँ तक कहा है कि ग्रामदानी गाँवों में जो सरकारी जमीन होगी वह भूमिहीनों में वितरित कर देंगे। मैं यह बात लोगों को नहीं कहता क्योंकि मेरा काम लोक-शक्ति बढ़ाने का है। इसलिए आपसे कहता हूँ कि आप लोग ग्रामदानी गाँववालों को विश्वास दीजिये और उन्हें बताइये कि "अब डरने या दबने की कोई बात नहीं है। जब व्यक्तिगत मालकियत थी तब बचाव का साधन था तो आज उससे भी अधिक बचाव के साधन उपलब्ध हो गये हैं। अब आपको सरकारी मदद भी मिल सकती है।"

पहले आपको ग्रामदानी गाँवों में निर्भयता पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिए, फिर ग्रामोद्योग आदि क्षेत्रों में उन्हें मदद पहुँचानी चाहिए।

कानून किसके लिए ?

प्रश्न : नागरिकों के चरित्र-निर्माण में कानून का उपयोग कहाँ तक कर सकते हैं ?

उसका बहुत अच्छा उपयोग कर सकते हैं। कानून को बेकार बनाने की कोशिश न की जाय। सरकार और जनता कानून का अच्छा-से-अच्छा उपयोग करे, तो कानून अच्छा चलेगा। जज को यदि कोई रिश्वत देता है, तो वह चरित्र भ्रष्ट करता है। चारित्र्य के बिना कानून का अस्तित्व नहीं होता। कानून जन-जीवन की सुरक्षा तथा उन्नति के लिए बनाये जाते हैं। यदि वे गलती से वैसे न बन पायें तो हमें चाहिए कि तात्कालिक कानूनों में मामूल परिवर्तन कर दें। चारित्र्य-निर्माण केवल कानून से नहीं होता।

दुनिया में तीन प्रकार के लोग हैं—एक तो वे जो कानून हो या न हो हर हालत में सदाचरणशील ही रहेंगे। दूसरे वे जो चाहे जितने ही कानून बनाइये हमेशा उनकी अवगणना करते हुए खराब ही रहनेवाले हैं और तीसरे वे लोग हैं जो कानून के कारण अच्छे रहते हैं किन्तु कानून न हो तो बुरे बन जाते हैं। इसलिए कानून का उपयोग शिष्ट लोगों के लिए नहीं है और अशिष्ट लोगों के लिए भी नहीं है। विशिष्ट लोगों के लिए ही है। कानून को केवल दण्ड पर आधारित नहीं होना चाहिए।

दुनिया में जो सज्जन पुरुष हैं उनका मुकाबला दुर्जनों के साथ कर जाना चाहिए। जिनकी गिनती न सज्जनों में होती है, न दुर्जनों में होती है वे सामान्य जन हैं। कानून उनके लिए है। वे कानून के पाबन्द रहेंगे। कानून अच्छा रहा तो वे अच्छे रहेंगे और कानून खराब रहा तो वे खराब रहेंगे। जो दुर्जन हैं उन पर सरकार का ज्यादा आक्रमण न हो। उन्हें सद्गति सुलभ करायी जाय। भजन-मंडली कीर्तन-मण्डली और उपदेश मण्डली में रहने से उनके अन्तःकरणों में सद्भावनाएँ उद्बुद्ध होंगी। जो सज्जन हैं उन्हें वेतन दिया जाय ऐसा भी नहीं होना चाहिए। सज्जनों को इज्जत देना ही पर्याप्त है। पुराने राजा यही करते थे। वे समझते थे कि दुनिया में दुर्जनों को सुधारने का काम सज्जन ही कर सकते हैं। कानून से दंडन हो सकता है सुधार नहीं। इसलिए सज्जनों के सहयोग से समाज-रचना में स्वरूपता लाने का प्रयत्न होना चाहिए।

तिलक की आकांक्षा

लोकमान्य तिलक जब जेल में थे तब उनसे पूछा गया कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद आप किस विभाग के मंत्री बनेंगे ? उन्होंने कहा फिर राजनीति में रह क्या जायगा जिसके लिए उसमें रहना आवश्यक हो ? मैं अभी मातृभूमि की मुक्ति के लिए राजनीति में हूँ। आजादी प्राप्त होने के बाद या तो मैं वेदों का संशोधन करूँगा या गणित का प्रोफेसर बनूँगा। लोकमान्य आज के राजनैतिक लोगों की भाँति सत्ता के पीछे पागल बननेवाले पुरुष नहीं थे। वे यह भली भाँति जानते थे कि स्वराज्य प्राप्ति के बाद किस क्षेत्र में इज्जत होगी। स्वराज्य-प्राप्ति से पूर्व राजनैतिक क्षेत्र में त्याग था जेल भुगतनी पड़ती थी सरकारी कोप सहना पड़ता था इसलिए इज्जत थी लेकिन अब राजनैतिक क्षेत्रवालों को कौन-सा त्याग करना पड़ता है ? स्वराज्य-प्राप्ति के बाद इज्जत का क्षेत्र ही बदल गया है। अभी स्वराज्य चलाने के लिए कुछ लोगों को सरकार में जाना पड़ता है, परन्तु वहाँ त्याग का अवसर नहीं है। इसलिए उन्हें समझ-बूझकर वैसा ही त्याग करना चाहिए, जैसा भरत करता था। रामचन्द्र की अनुपस्थिति में अयोध्या से बाहर रहकर ही भरत ने राज्य चलाया और वहाँ तपस्या की। तुलसीदासजी लिखते हैं कि चौदह वर्षों के पश्चात् जब रामचन्द्रजी वापस लौटे तो यह निर्णय करना कठिन हो गया कि कौन राम है और कौन भरत ?

इस तरह साधारण रीति से जहाँ त्याग नहीं होता वहाँ भी कृत्रिम रीति से त्याग तो करना ही पड़ता है, क्योंकि वह भी एक कर्तव्य तो है ही। और, चन्द लोगों को वहाँ काम करना ही चाहिए, किन्तु बाकी समस्त कार्यकर्ता सतत राजनीति का ही चिन्तन करें, इलेक्शन के अतिरिक्त कुछ सोचें ही नहीं तो उनसे बढ़कर बुद्धू किसे कहा जायगा ? मैं कहना चाहता हूँ कि आज अगर काफी तादाद में सेवक मिल जायें तो भूदान का काम काफी तेजी से हो सकता है।

मैं जमीन के प्रति विद्यमान प्रेम को और बढ़ाना चाहता हूँ ताकि हर मनुष्य जमीन की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त कर सके। सभी को जमीन दिलवाना हमारा धर्म है। लोगों की आसक्ति मालकियत की नहीं है आज

कियत तो ऊपर से कानून के जरिये लादी गयी है। उसके इतिहास में मैं अभी नहीं पहुँचा। सामूहिक कृषि जबर्दस्ती से मजबूर बनाने का अभियान नहीं है। दो-दो चार चार किसान मिलकर एक हो सकते हैं। स्वेच्छा से सम्मिलित होने से सामूहिक कृषि खूब ही अच्छे ढंग से सफल होगी।

व्यक्तिवाद नहीं टिक सकता

भारतवर्ष में साथ-साथ काम करने की पद्धति बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है। आधुनिक समय में वह थोड़ी-बहुत खंडित हुई है, लेकिन इस विज्ञान-युग में मनुष्य को फिर से सामूहिकता का महत्त्व स्वीकार करना होगा। यदि अब एक-एक मनुष्य अपना स्वार्थ सोचता रहेगा तो कोई काम नहीं हो सकेगा। सभी मिलकर सभी के हितों के बारे में सोचेंगे तभी सबका कल्याण होनेवाला है।

जब सब लोग सबके हितों को प्रधानता देते हैं, तो साथ का काम करना शुरू करना ही होगा। सामूहिकता में अनेक प्रकार के लाभ हैं। लेकिन पिछली सदियों में हमारा देश गुलाम बना रहा है, इससे हम उसका महत्त्व भूल गये हैं। उसी सबब से हमारे यहाँ व्यक्तिगत स्वार्थ की भावनाएँ बढ़ी हैं और अनेक प्रकार के अन्य दोष भी प्रकट हुए हैं लेकिन अब वे भावनाएँ और दोष मिटनेवाले हैं। हमारे यहाँ के सभी धर्मों ने स्वार्थ-भावनाओं को त्याज्य बतलाया है इसलिए व्यक्तिवाद की बुनियाद नहीं जम सकती। व्यक्तिवाद के निराकरण के साथ ही सामुदायिक जीवन की शुरुआत नहीं होती। उसके लिए भी स्वतन्त्र अभिक्रम करना होगा। हम विचार प्रचार के जरिये और कर ही क्या रहे हैं ?

कोसंबा (राजस्थान)
७-२-'५९

जब हिन्दुस्तान में राजतन्त्र चलता था तब दो बातें थीं—जब युधिष्ठिर, अशोक, मौर्य, अकबर आदि धर्मात्मा राजाओं का शासन चलता था तब प्रजा सुखी रहा करती थी और जब दुरात्मा राजा शासन-सूत्र हाथ में लेता था तो प्रजा दुःखी होती थी। माने यह सब प्रजा के नसीब का खेल था। 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली कहावत ही चरितार्थ होती थी। परन्तु हाँ इस नसीब के खेल में खतरा पग-पग पर था। एक व्यक्ति के हाथ में तमाम प्रजा का नसीब सौंपना एक अजीब बात थी। इसीलिए लोगों ने राजतन्त्र को उपयुक्त न समझकर प्रजातन्त्र का बीजारोपण किया। आज विभिन्न देशों में प्रजातन्त्र की स्थापना हुई है और हो रही है। लोकशाही में जनता में जागृति होती है, सबको जिम्मेदारी का भान हो जाता है। समाज का विकास होता है। इन सब कारणों से लोकशाही एक बहुत अच्छी चीज है, इसमें कोई शक नहीं।

यह लोकतन्त्र !

जहाँ तक हिन्दुस्तान का सवाल है—बहुत सोचने की जरूरत है। हमारे यहाँ अनेक भाषा, अनेक सूबे, अनेक धर्म, एक धर्म में अनेक पंथ, अनेक पंथ में अनेक जातियाँ—आदि नाना प्रकार की विविधताएँ हैं। इस तरह विभिन्नताओं से परिपूर्ण इस देश में पाश्चात्य देशों की लोकशाही का नमूना उतारना कहाँ तक उचित है यही सोचना है। इसीके परिणामस्वरूप आज हमारे यहाँ गाँव-गाँव में आग लग गयी है। बहुमत तथा अल्पमत के झगड़े गाँव-गाँव में पहुँच गये हैं।

राजाओं के जमाने में भी ये सब बातें नहीं थीं ऐसी बात नहीं। राजा के चन्द दरबारी में आपस में द्वेषभाव पर्याप्त मात्रा में चलता था। एक सोचता था कि राजा मुझ पर उतना विश्वास नहीं रखता जितना कि दूसरे सरदार पर। आज लोकशाही में भी जनता चन्द लोगों को चुनकर असेम्बली पार्लमेन्ट आदि स्थानों में भेजती है, तो वहाँ भी आपस में द्वेषभाव शुरू हो जाता

है। कोई कहता है कि मैंने दस साल तक जेल काटी फिर भी मुझे मन्त्री नहीं बनाया गया अमुक ने तीन ही साल जेल काटी तो मन्त्री बन गया। जो मन्त्री बना है वह सोचता है कि अमुक को इतना बड़ा महकमा मिला है, मुझे नहीं मिला। इस तरह ऊपर से लेकर नीचे तक द्वेष ही द्वेष भरा है। राजाओं के जमाने के सरदारों के द्वेष और आज के द्वेष में फर्क इतना ही है कि पहले वह एक-दो सरदारों में पाया जाता था और आज अत्यन्त व्यापक पैमाने पर है। आज १५ २ हजार लोगों में ईर्ष्या चलती है। एक-दूसरे को दबाने के लिए जिससे जितनी ताकत बटोरते बनती है, उतनी बटोर बैठा है। ये १५ २ हजार लोग दही बनकर समाजरूपी दूध को बिगाड़ रहे हैं। भूदान प्रबन्धक समिति का मसला इतना सीधा-सरल है, तब भी वहाँ द्वेषी लोग पहुँच पायेंगे। वे वहाँ की सत्ता को हथियाने की चेष्टा करेंगे। मानो वह भी सत्ता का एक साधन ही बन गया है। और तो क्या म्युनिसिपैलिटी भारत-सेवक-समाज साधु-समाज ग्राम-पंचायतों जैसी सेवाभावी संस्थाओं में भी मौका पाकर वे द्वेषी लोग पहुँच ही जाते हैं। इस प्रकार आज यह द्वेषवाला प्रोग्राम देशव्यापी बन रहा है। इससे देश का बड़ा भारी नुकसान हो रहा है।

गाँव पर शहर का आक्रमण

गुरु नानक ने कहा है कि कुछ लोग 'असत्य मूरख अंध घोर' होते हैं। देहाती लोग ऐसे ही होते हैं। वे इस समय अन्धकार में पड़े हुए हैं। ये बेचारे 'असंख्य चोर हरामखोर' के अनुसार शहरी सत्तालोलुप पढ़े-लिखे चोर हरामखोर लोगों द्वारा लूटे जायेंगे। यह सब मेरी अपनी बातें नहीं हैं। नानक ने भी कहा है वहाँ ये इकट्ठा हुए कि उनकी लड़ाई शुरू। दोनों की लड़ाई शुरू होते ही कोई तीसरी जमात आकर अपना अमल कर लेती है। हिन्दुस्तान में आज तीनों प्रकार के लोग दिखाई देते हैं।

मैं यह सब कह तो रहा हूँ मगर इसमें मुझे बड़ा दुःख होता है। गुरु नानक ने कहा है 'नानक नीच करि विचार' अर्थात् 'नीच नानक यह सब कह रहा है'। एक जगह उन्होंने और कहा है कि हत्या करनेवाला हत्या के लिए जिम्मेदार है चोर चोरी के लिए, मगर जो इस बात की निन्दा करता है, वह इन सबके लिए जिम्मेदार है। इसीलिए नानक ने अपने लिए 'नीच'

विशेषण लगाया है। नानक को यह सब इसलिए कहना पड़ा क्योंकि इसमें निन्दा थी। वे निन्दा करना नहीं चाहते थे यही हाल मेरा भी है। मुझे भी निन्दा से सख्त नफरत है। मगर मुझे लाचार होकर यह कहना पड़ता है। मैं जानता हूँ कि हर मनुष्य के अन्दर स्वच्छ निर्मल चीज मौजूद है, मैं उसे बाहर लाना चाहता हूँ। मेरी कोशिश इसीके लिए है। मगर अभी तक तो मेरे मार्ग में विघ्न ही आते जा रहे हैं।

इस तरह हम देख रहे हैं कि पश्चिमी लोकतन्त्र की नकल कर हम लोगों ने अपना नाश कर लिया है। नहीं तो लोकशाही आज तक अमल में लायी गयी सभी पद्धतियों में सर्वोत्तम है। हमें अपनी इन्सानियत तथा गुणों को कायम रखना होगा। अगर बुनियाद ही बह गयी तो मकान कहाँ से रहेगा? यह भी बह जायगा।

लन्दन की नकल का उदाहरण

आजकल कहा जाता है कि हम बड़े-बड़े काम कर रहे हैं। भाखड़ा नांगल सिंदरी का कारखाना चित्तरंजन आदि के कामों को देखकर बाहर के लोग भी हमें प्रगति का प्रमाणपत्र देते हैं। मगर वास्तव में हम क्या प्रगति कर रहे हैं? विदेशी लोग जब लन्दन या पेरिस से दिल्ली आते हैं, तो उन्हें ऐसा लगता है कि हम वापस लंदन पहुँच गये हैं। इसका कारण है कि लंदन की दूकानों में लंदन का माल बिकता है और दिल्ली की दूकानों में भी लन्दन का माल बिकता है। आश्चर्य यह है कि हम इसमें भी गौरव का अनुभव करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि लंदनवाले अक्ल रखते हैं पर नयी दिल्ली वालों को अभी उसे हासिल करना है।

गत महायुद्ध में हर देश में चीजों के दाम बढ़े। कहीं दो सौ तो कहीं चार सौ प्रतिशत तक बढ़े थे। लेकिन कुछ लोगों ने इतने संकट के समय भी अत्यन्त बुद्धिमत्ता के साथ काम किया और दाम न बढ़ने दिये। इंग्लैंड में सिर्फ दस प्रतिशत दाम बढ़े। इंग्लैंड की अक्ल के बारे में एक दूसरी मिसाल देखिये। जब उन्होंने देखा कि अब हिन्दुस्तान को अपने हाथ में रखना ठीक नहीं है तब तुरन्त उन्होंने तारीख मुकर्रर कर इस पर से कब्जा हटा लिया। और, यहाँ तक तो गनीमत थी मगर इसके बाद जो हुआ वह तो इंग्लैंड के इतिहास

में स्वर्णाक्षरों से लिखने लायक है। हिन्दुस्तानी लोगों ने लार्ड माउंटबैटन से ६-७ महीने हिन्दुस्तान में ही रहने की प्रार्थना की। इससे बढ़कर इंग्लैंड की क्या जीत हो सकती है? दिल्ली में महात्मा गांधी की जय पंडित नेहरू की जय के साथ-साथ लार्ड माउंटबैटन की जय का भी नारा बुलन्द किया गया था। कहने का मतलब यह कि इंग्लैंड ने भारत के प्रति द्वेष-भावना न रखते हुए भारत से सदिच्छा प्राप्त की। ठीक इसके विपरीत पुर्तगाली इतने बेवकूफ हैं कि छोटे-से गोवा के लिए लड़-मर रहे हैं। इसलिए भारत से उनके अच्छे सम्बन्ध नहीं हैं। इंग्लैंडवालों के सम्बन्ध भारत से अच्छे होने के कारण उनका माल यहाँ खूब खपता है। यही कारण है कि जब वे नयी दिल्ली में आते हैं तो उन्हें यही लगता है कि हम अपने ही देश में हैं और इसीलिए वे कहते हैं कि भारत खूब प्रगति कर रहा है।

होशियारपुर (पंजाब)
१७-५-५९

लोकशाही की रक्षा ३०

मेरी सबसे बड़ी टीका लोकशाही पर है। अभी तक जितनी भी राज्य रचनाएँ हुई हैं उनमें लोकशाही सर्वोत्तम रचना है। परन्तु इस लोकशाही में राज्य-रक्षण का आधार उसी सेना पर रखा है, जिसका आधार दूसरी राज्य पद्धतियाँ लेती हैं। राज्यशाही सर्वसत्ताशाही समाजवाद, फैसिज्म पूँजीवाद आदि सभी सैन्य-बल को राष्ट्र-रक्षण का साधन मानते हैं और यही चीज लोकशाही मानती है तो दुःख की बात है। लोकशाही और दूसरी शाहियों में मैं यही फर्क समझता हूँ कि लोकशाहीवाले सैन्य को नहीं मानते। लोकशाही के तत्त्वज्ञान में सैन्य गौण है। तत्त्व के तौर पर सैन्य की इच्छा न रखकर भी व्यावहारिक तौर पर सैन्य को मान्यता देने से लोकशाही का रूपान्तर लश्करशाही में हो जाता है। इसलिए लोकशाही का आधार अहिंसा ही होनी

चाहिए। व्यावहारिक तौर पर आज दुनिया की जो स्थिति है, उसमें सेना से भय ही पैदा होता है। हमारे देश में भी सेना है वह भय-निवारण करने के साधन के तौर पर नहीं परन्तु भय-प्रवर्तन करनेवाले साधन के तौर पर है।

सेना के कारण भय में वृद्धि

आज हम पाकिस्तान के बारे में भय रखकर सेना का बचाव करते हैं, तो पाकिस्तानवाले भी उसी बात पर सेना का बचाव करते हैं कि हमें हिन्दुस्तान का भय है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान ये दोनों एक-दूसरे का भय रखते हैं। हम कहते हैं कि हम पाकिस्तान का भय रखते हैं। यह भय सकारण है। पाकिस्तान अपने लिए भय रखता है वह भी निष्कारण है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। सकारण भय किसका और निष्कारण किसका इसका एकतरफा निर्णय नहीं हो सकता। जिनको भय लगता है, उनका वह भय सत्य ही है, ऐसा मानना चाहिए। हम रूस और अमेरिका को सेना तथा शस्त्र कम करने के लिए कहते हैं पर रूस और अमेरिका को भी तो एक-दूसरे का भय है। ऐसी हालत में जब कि हम एक-दूसरे के डर के कारण सेना रखते हैं, तब रूस या अमेरिका को निःसैन्यीकरण अथवा निःशस्त्रीकरण करने के लिए कहने का हमें क्या हक है?

बहुत-से देश एक-दूसरे के डर के कारण सेना रखते हैं। हम डर के कारण सेना रखते हैं, ऐसा वे कहते हैं परन्तु सेना के कारण से डर बढ़ता है यह उनको मान्य करना चाहिए। सेना से दूसरे राष्ट्रों में भय पैदा होता है, इसमें तो कोई शंका नहीं है परन्तु सेना के कारण अपने ही राष्ट्र में भय पैदा होता है, यह समझने की चीज है। हम निकम्मा भय दुनिया में पैदा करते हैं और सेना को मजबूत करने के लिए खर्च करते हैं। उसके बदले में उस धन का उपयोग गरीबों की सेवा करने में करें, तो सारी दुनिया में एक नयी चेतना और नयी दृष्टि आयेगी। हिन्दुस्तान की नैतिक शक्ति बढ़ेगी और सारी दुनिया की विवेक-बुद्धि जाग्रत होगी जिससे दुनिया की समस्याएँ हल होने में आसानी होगी।

कुछ लोग कहते हैं कि सेना हटाने या कम करने की बात से लोग डरपोक बनते हैं और सेना के कारण बहादुर बनते हैं। लेकिन मैं इससे बिलकुल उलटा

मानता हूँ और देखता हूँ कि सेना से लोग निडर होने के बदले डरपोक बन गये हैं। निर्भयता के बदले सेना रखते हैं परन्तु जैसे दवा की जगह पर दवाखाना नहीं चलेगा उसी तरह निर्भयता की जगह सेना नहीं चलेगी। हम लोगों में जो आन्तरिक शक्ति है उसके कारण रक्षण हो सकता है, ऐसा विश्वास हम खो बैठे हैं और मजबूत सेना पर आधार रखते हैं। अगर सेना हार जाती है तो सारा देश भयभीत हो उठता है। पिछले महायुद्ध में जर्मनी में पन्द्रह-बीस लाख सैनिकों ने दूसरे देशों पर हमला किया। इतना बड़ा आक्रमण देखकर ऐसा लगा कि ये सारे बहुत बहादुर हैं परन्तु चार साल के बाद जर्मनों को लगा कि सामनेवाला पक्ष बहुत मजबूत है। उसके पास अपने से चार पाँचगुना हवाई जहाज और दूसरे शस्त्रास्त्र हैं। इसलिए बराबर विरोध हो रहा है। यह देखकर हुक्म दिया गया कि समस्त सैनिक अपने शस्त्र नीचे रखकर शत्रु की शरण जायें। जिन लोगों ने एक समय दूसरे देश पर हमला किया था उन्हीं लोगों ने शरणार्थी होना स्वीकार किया। इस पर से ध्यान में आयेगा कि शस्त्र से लोग बहादुर होते हैं, ऐसा नहीं है।

अणु-बम के सामने छुरी

इस जमाने में हिन्दुस्तान जैसा देश शस्त्र रखता है इससे क्या रूस और अमेरिका के साथ उसकी तुलना हो सकती है? हम एक साल में जितने रुपये सेना पर खर्च करते हैं, उतने रुपये अमेरिका हर रोज अपनी सेना के लिए खर्च करता है। ऐसी स्थिति में हम सामनेवालों से कहें कि तुम अणु-बम रखोगे तो हम छुरी क्यों न रखें? इस प्रश्न में क्या कोई बुद्धिमानी है? फिर हम सैन्य विघटन की बात क्यों नहीं सोचते? इसका जवाब इतना ही है कि हम सब लोग पुरानी तरह से सोचने के आदी हैं, नयी बातें सोचते ही नहीं।

देश के रक्षण के लिए सेना की आवश्यकता नहीं है ऐसा मेरा मानना है। अगर देश आन्तरिक शक्ति पर निर्भर रहनेवाला है तो कम-से-कम इतना देखना चाहिए कि देश की आन्तरिक शांति के लिए पुलिस और सेना की जरूरत न पड़े। बाहर से हमला भले ही हो उसकी हम परवाह न करें। हम विज्ञान पर या विज्ञान की विवेक-बुद्धि पर आधार रखें और कम-से-कम इतना हम

करें कि आन्तरिक सवालों में पुलिस को नहीं बुलायेंगे । पुलिस को बुलाने की आवश्यकता न रहे, ऐसा दिखाना चाहिए ।

शांति-सेना की स्थापना हो या न हो मैं ऐसा मानता हूँ कि लश्कर को हम आज के आज ही मिटा सकते हैं । यह बात सिर्फ मैं ही नहीं राजाजी जैसे लोग भी कहते हैं कि लश्कर का खर्च घटाना चाहिए । मैं तो एक अव्यवहारी स्वप्न में विचरण करनेवाला आध्यात्मिक चिन्तन में मसगूल आदमी माना जाता हूँ । परन्तु राजाजी के लिए ऐसा नहीं कह सकते कि उनमें राजनीतिक योग्यता का अभाव है या वे व्यावहारिक दृष्टि से विचार नहीं कर सकते । इसी तरह कृपालानीजी ने भी पार्लमेन्ट में कहा है कि सेना की जरूरत नहीं है । ऐसे-ऐसे राजनीतिज्ञ पुरुष बोलने लगे हैं, तो देश में शांति-सेना की स्थापना हो या न हो परन्तु लश्कर के पीछे जो तीन सौ करोड़ रुपये का खर्च होता है, उसकी जरूरत नहीं ऐसा कहनेवाला पक्ष मजबूत हो जाता है । परन्तु मैं इस तरह इसमें से नहीं छूट सकता । देश के आन्तरिक शांति का सवाल लोक-शक्ति से हल कर सकते हैं, यह करके दिखाने की जिम्मेवारी मेरे ऊपर आती है ।

हिंसा को उत्तेजन न मिले

आज एक भाई ने मुझसे कहा कि आपकी बात तो ठीक है, परन्तु अभी इस कोईम्बतूर जिले में अशांति के लक्षण नहीं दीखते । लेकिन अशांति के लक्षण जब प्रत्यक्ष हों, तभी शांति-सैनिकों की आवश्यकता है, ऐसा नहीं । आज देश के सामने इतनी समस्याएँ हैं कि कहाँ और कब अशान्ति फूट निकलेगी कहा नहीं जा सकता । बेंगलोर जैसे शहर में जहाँ शांत लोग रहते हैं और बहुत सालों से अशांति नहीं हुई, वहाँ कौन कह सकता था कि अशांति फूट निकलेगी ? अहमदाबाद जैसा शहर, जहाँ गांधीजी रहते थे और जहाँ से अहिंसा तथा सत्याग्रह का तत्त्व-दर्शन सारी दुनिया को मिला वहाँ कौन मानता था कि अशांति होगी ? अशांति के लिए कारण होते हैं, यह बात अलग है । अशांति दीखती नहीं क्या इसीलिए सर्वत्र शांति हो सकती है ?

आज हिन्दुस्तान में स्वराज्य-प्राप्ति के बाद बहुत से सवाल जैसे-के-तैसे पड़े हैं । लोगों की स्थिति में विशेष सुधार नहीं हुआ है । विकास का रास्ता

रहना पड़ा है। इसके लिए किसीको दोष नहीं देना है। यह हमारा ही दोष है। धीमी प्रगति का कारण यही है कि यहाँ की जनता दो सौ साल तक पारतन्त्र्य में रही। सब तरह से स्वातन्त्र्य छीना गया। देश पीसा गया। हीन और दीन हुआ। फिर भी अब असंतोष न हो और अशांति न बढ़े ऐसा हम चाहते हैं। परन्तु केवल इच्छा करने से यह नहीं होगा। मैं कहना चाहता हूँ कि हमारी एक ही जिम्मेवारी नहीं है। जो चाहते हैं कि लोकशाही शुद्ध हो और हिंसा के बल के बिना लोक-शाही का विचार लोगों में मूर्तिमन्त हो इसके लिए तो हम पर दुहरी जिम्मेवारी आती है। एक तो अशान्ति के कारण होने पर भी अशांति न होने दें। दूसरे, अशांति हो ही जाय तो उसके मूल कारणों का निराकरण करें। 'स्टेटसको' (यथास्थिति) कायम रखकर शांति-सेना की कल्पना करना व्यर्थ है। इसलिए आज की स्थिति बदलने की जिम्मेवारी हम पर आती है और जब तक परिस्थिति में बदल नहीं होता तब तक अहिंसा के ऐसे प्रयोग होते ही रहेंगे। इसलिए यह देखने का हमारा काम है कि हिंसा को उत्तेजन न मिले और अशांति के कारण मिटें।

भावनगर (गुजरात)
८ ११ ५८

संस्था की मर्यादा ३१

अध्ययन किसका—दल या संविधान का ?

सन् १९२५ की बात है। उस जमाने में मैं कांग्रेस का सदस्य था। मित्रों ने मुझसे पूछे बगैर मेरा नाम नागपुर प्रदेश-कांग्रेस कमेटी में रख दिया। उसकी एक सभा के लिए मैं वर्धा से नागपुर जाने के लिए दोपहर बारह बजे निकला। ट्रेन में पढ़ने के लिए ऋग्वेद की पुस्तक साथ में ले ली। सभा तीन बजे थी। सब सदस्यों को संविधान की एक-एक किताब दी गयी थी। सभा के आरम्भ में ही एक भाई ने आक्षेप उठाया कि सभा के लिए कम-से-कम इतने दिनों की

नोटिस मिलनी चाहिए थी जो नहीं मिली इसलिए यह सभा गैरकानूनी है। देखिये संविधान का पन्ना चार, नियम पाँच।" हम सबने वह पन्ना खोला। दूसरे भाई ने कहा कि "नियम तो ठीक है, परन्तु विशेष परिस्थिति में जल्दी सभा बुलाने का हक है।" फिर चर्चा चली जिसमें एक के बाद एक नियम का आधार लिया गया। मैं भी किताब खोलकर नियम पढ़ता गया। मैं सोचने लगा कि सभा गैरकानूनी साबित हो जाय तो हम सब मूरख साबित होंगे। मेरा उन नियमों का कुछ अभ्यास नहीं था। आखिर यह निर्णय हुआ कि सभा गैरकानूनी नहीं है। फिर चर्चा शुरू हुई। थोड़ी ही देर में भोजन के लिए सभा स्थगित हुई। रात में फिर सभा हुई, जिसमें मैं नहीं गया। दूसरे दिन चर्चा पहुँचने पर मैंने इस कमेटी की सदस्यता और कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता से भी इस्तीफा दे दिया क्योंकि मैंने देखा कि इस संस्था में रहते हुए अगर से काम करना हो, तो संस्था के संविधान का ठीक अध्ययन करना होगा। अब मैं ऋग्वेद का अध्ययन करूँ या उस संविधान का? संविधान के अध्ययन में सार नहीं है, वेदोपनिषद् के अध्ययन में ही कल्याण है, यह सोचकर मैं उस संस्था से मुक्त हो गया। सभाओं में एक-दूसरे के सामने बैठनेवाले व्यक्ति मनुष्यता को नहीं बल्कि नियम को लेकर बैठते हैं। मुझे यह सारा बिलकुल शुष्क नीरस मालूम होता है।

बुद्ध ने सत्ता क्यों छोड़ी?

बड़ी-बड़ी संस्थाएँ जो काम नहीं कर सकतीं वह एक व्यक्ति कर सकता है। एक ही बुद्ध भगवान् ने कितना बड़ा परिवर्तन किया! उन दिनों सत्ता पर इतनी श्रद्धा बैठी थी कि ऐसा माना जाता था कि उसीसे क्रान्ति हो सकती है, सेवा हो सकती है। बुद्ध भगवान् के हाथ में तो सत्ता थी। वे राजपुत्र थे। अगर सत्ता से सामाजिक, आर्थिक आध्यात्मिक क्रांति हो सकती तो बुद्ध भगवान् अपने हाथ की सत्ता छोड़कर क्यों निकलते? उनके लिए उनके पिताजी ने ऐसी योजना की थी कि उन्हें दुःख का दर्शन ही न हो, सुख का ही दर्शन हो। फिर भी उन्होंने कुछ दुःख देखा तो वे समझ गये कि मुझे जरा भी दुःख का दर्शन न हो, ऐसा पक्का बंदोबस्त होने पर भी दुःख का दर्शन

हो रहा है, तो समाज में कितना दुःख होगा। फकत वे घर छोड़कर निकल पड़े। अगर सत्ता के जरिये समाज-परिवर्तन होता तो बुद्ध भगवान् की गिनती मूर्खों में की जाती। लेकिन आज की दुनिया उनकी गिनती मूर्खों में नहीं करती बल्कि यही समझती है कि समाज को उनके उपदेशों की सख्त जरूरत है। पं० नेहरू बुद्ध भगवान् के भक्त हैं। वे कहते हैं कि भारत के सर्वश्रेष्ठ पुरुष बुद्ध भगवान् हैं और उनकी तालीम की सारी दुनिया को जरूरत है। २५ साल के बाद भी आज उनकी जरूरत महसूस की जा रही है। बुद्ध तो सत्ता छोड़कर चले गये थे लेकिन आज भी हमारा सारा दिल संस्थाओं की सत्ता में ही बसता है। किन्तु वास्तव में संस्था की पकड़ में इन्सान बुला नहीं रह पाता।

आणंद (गुजरात)
१-११-'५८

लोकतन्त्र और सैन्यबल　　३२

लोकशाही कैसे टिकेगी ?

लोकशाही तब तक स्थिर नहीं होगी जब तक वह अपना बचाव खुद नहीं कर सकती। आज तो लोकशाही के बचाव के लिए सेना की जरूरत होती है। लोकशाही में रक्षण-शक्ति अगर सेना ही हो तो कभी भी उसका रक्षण नहीं हो सकेगा। रक्षण तो तभी हो सकेगा जब कोई भी सिद्धान्त स्वरक्षित हो और रक्षण के लिए उसे किसी तरह से किसी भी बाहरी तत्त्व की मदद न लेनी पड़े। लोकशाही में मुख्य तत्त्व यह है कि प्रत्येक मनुष्य को एक तत्त्व का बोध है। मानवीय आत्मा की एकता याने आध्यात्मिक सिद्धान्त के आधार पर ही हम उसका बचाव कर सकते हैं। दूसरे किसी सिद्धान्त के आधार पर उसका बचाव नहीं हो सकता।

मानवीय आत्मा की एकता बिलकुल सामान्य वस्तु है। बुद्धि तो हर एक में कम-ज्यादा होती है। शक्ति भी हरएक में कम-ज्यादा होती है। तो

आत्मा की एकता के सिद्धान्त पर यह बात चल सकती है। जब मार्क्सिज्म के महासिद्धान्त पर लोक-मानस स्थिर होना चाहता है, तब सिद्धान्त के बाहर जाकर वह पर-रक्षित होना चाहेगा तो नहीं टिक सकेगा। अलग अलग पक्ष अपने-अपने प्रयोग करते हैं। परन्तु इसमें से कोई चीज निर्माण नहीं होती। जब तक हम अपने तत्त्व के रक्षण के लिए आन्तरिक शक्ति निर्माण नहीं करते तब तक कुछ न होगा।

एक भाई ने कहा कि विनोबा चाहता है कि सेना मिटनी चाहिए। सच मुच मैं यही चाहता हूँ क्योंकि मैं अहिंसक हूँ। सेना की मैं इच्छा नहीं करता। अवश्य ही लोगों को बहादुर होना चाहिए, कायर नहीं। लोग कायर होंगे तो काम नहीं चलेगा। फिर भी हमें यह समझना बाकी है कि सेना बढ़ेगी तो मनुष्य की कायरता भी बढ़ेगी। सेना से राष्ट्र का पराक्रम नहीं बढ़ता राष्ट्र कायर ही होता है। मान लो कि बाहर लड़ाई हो रही है और एकदम तार आया और अखबारों में भी छप गया कि हमारी सेना को पाँच मील पीछे हटना पड़ा तो सभी लोग एकदम घबड़ा उठेंगे। उसका परिणाम यह होगा कि शेयर बाजार की एकदम बन्द हो जायगा। सारी चीजों के भाव एकदम गिर जायेंगे। अगर सेना पचास मील अन्दर आयेगी तो हाहाकार ही मच जायगा।

बापू की दीर्घ दृष्टि

ऐसी लड़ाई में मान लो कि एक बार अहमदाबाद पर एक बम गिरे, तो क्या यहाँ की मिलें चलती ही रहेंगी ? मैं कहना चाहता हूँ कि बम की भी जरूरत नहीं है। लोगों को इतना ही पता चले कि अहमदाबाद असुरक्षित है तो तुरत ही सारे मजदूर भाग जायेंगे। फिर हम सबको भले रहने का प्रबंध आयेगा। हमें पहनने के लिए कपड़ा नहीं मिलेगा। इसीलिए बापू ने दीर्घ दृष्टि से कहा था कि कपड़े जैसी चीज बाहर से नहीं लानी चाहिए। यह चीज घर में ही पैदा होनी चाहिए। यह बात रहस्य-दर्शन नहीं दीर्घ-दर्शन है। इस युग में सभी रक्षण हो सकेगा जब जीवन की व बस्त-भस्म आर व्यवस्थाएँ हमारे हाथ में रहेंगी। हमारे गाँवों का रक्षण इसी से होगा। राष्ट्र

का भी रक्षण इसीसे होगा। अन्यथा सारी शक्ति एक ही जगह केन्द्रित की जायगी तो एक अहमदाबाद के बचाव के लिए सारा राष्ट्र सुसज्जित करना होगा और वह भी आज की पद्धति से याने आधुनिक पद्धति से सुसज्जित करना होगा। लेकिन क्या यह कोई लोक-शक्ति का बल कहा जायगा?

लोकशाही, कम्यूनिज्म, समाजवाद : सब एक हैं

आज लोकशक्ति को बाहर से बल है, इसीलिए लेनिन कहता था कि हम तो सिर्फ एक ही बार शस्त्र का उपयोग करेंगे और फिर सारे शस्त्र बांट देंगे। पर क्या आज रूस में सारी प्रजा के हाथ में शस्त्रास्त्र हैं? पहले मुट्ठीभर लोगों के ही हाथ में शस्त्र आ गये। फिर वे कम्युनिस्ट हों या दूसरे कोई, सारी प्रजा को शस्त्र क्योंकर देंगे? होगा यही कि जिनके हाथों में शस्त्र हैं, उन्हींका राज्य चलेगा। आज रूस में लश्करशाही ही चल रही है। दूसरे देशों में लश्करशाही का नाम नहीं होगा, इतना ही फर्क है। भाप, पानी और बरफ ये तीन अलग-अलग चीजें नहीं हैं, एक ही चीज की तीन अवस्थाएं हैं। एक हालत में उसे 'बरफ' कहते हैं, जो जरा सख्त होता है। दूसरी हालत में उसे 'पानी' कहते हैं, जिसका रूप द्रवित है, प्रवाहित है। तीसरी अवस्था में उसे 'भाप' कहते हैं, जो ऊपर जाती है। एक ही चीज के ये तीन नाम हैं। इसी तरह एक ही वस्तु का नाम है—लोकशाही, कम्युनिज्म और *समाजवाद*।

गांधीवादियों का कर्तव्य

गांधीवाद में भी जब तक लोग सेना से रक्षण चाहते हैं तब तक मैं यही कहूंगा कि वे नकली गांधीवादी हैं। हम अपने को गांधीवादी कहते हैं और फिर गांधीजी का ही आधार देते हैं कि जब कश्मीर में सेना भेजी गयी थी तब गांधीजी ने उसे आशीर्वाद दिया था। लेकिन हमें उसका अपरार्थ नहीं लेना चाहिए। अपरार्थ लेंगे तो प्रगति कुंठित हो जायगी। उस वक्त की भावना के लिए उतना। कश्मीर बचाव के लिए गांधीजी के अभिप्राय की जरूरत ही क्या है? जन-जन की अहिंसा [illegible] का समर्थन करने के

लिए क्या महाभारत काफी नहीं है ? बहुत से लोग गीता का भी आधार लेकर शस्त्रों का समर्थन करते हैं । फिर गांधीजी का आधार ज्यादा क्यों माना जाता है ? गोडसे ने गांधीजी की हत्या की । वह कौन था ? जिसकी हत्या की वह भी गीता प्रेमी था और जिसने हत्या की वह भी गीता प्रेमी ही था । दो गीता प्रेमी एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े हुए । एक कहता है कि गीता में अहिंसा-तत्त्व है, दूसरा कहता है कि गीता में धर्म के लिए हिंसा भी करने के लिए कहा है और मैं धर्म के लिए ही हिंसा कर रहा हूँ । अब क्या कहा जाय ? हम चाहे जो आधार दे सकते हैं परन्तु इस तरह के आधार की कुछ जरूरत नहीं है । विज्ञान के जमाने में हम यह भूल नहीं सकते कि आज जो शस्त्रास्त्र मनुष्य के हाथ में हैं वे ही मनुष्य का पूर्ण नाश करेंगे । गांधीवाद से जिन्हें प्रेम है, उन्हें आज यही विचार करना चाहिए कि हम किस तरह सेना-मुक्त हो सकते हैं ।

सैनिक शक्ति की व्यर्थता

यह एक भ्रममात्र है कि देश के लिए सेना होगी तो कोई कायर नहीं रहेगा । यह सर्वथा गलत बात है । अगर देश सेना पर सारा आधार रखता है तो सारा देश कायर बनता है । प्लासी की लड़ाई में केवल बंगाल में सारे बंगाल का और सारे भारत का फैसला हो गया । एक ही लड़ाई में साढ़े तीन घंटे में इतना बड़ा फैसला हो गया । उस लड़ाई में एक बाजू क्लाइव था और उससे लगभग दो-तीन फर्लांग दूर दूसरी बाजू में दूसरी सेना थी जिसमें पचास हजार मनुष्य थे । क्लाइव के पास मनुष्य तो सिर्फ पाँच हजार थे परन्तु बड़ी तादाद में आधुनिकतम शस्त्रास्त्र थे और भारत की सेना के पास वे नहीं थे । केवल एक ही रणक्षेत्र में सिर्फ साढ़े तीन घंटे में सारे राष्ट्र का फैसला हो जाता है यह क्या है ? हमें भी अपने सारे देश को शस्त्र पर रखना हो, तो इस तरह की घटना हम टाल नहीं सकेंगे । पिछले महायुद्ध में जर्मनी ने हिटलर के हुक्म से क्या किया ? बीस-तीस लाख सैनिक एक ही दिन में दूसरे देश पर टूट पड़े । दस-पन्द्रह दिन बाद उसी देश ने जब यह देखा कि हमारा देश अब टिक नहीं सकता सामनेवाले देशों के हाथ में मजबूत शस्त्रास्त्र हैं, तो लाखों सैनिक एक

ही दिन में हुक्म होने पर शत्रु की शरण चले गये। इसमें भला कौन-सा शौर्य है? उनके हाथ में तो शस्त्रास्त्र थे। शौर्य का सवाल ही कहाँ था? चार साल बाद फिर वही हुआ। तीन लाख की सेना को उसके जनरल ने आज्ञा दी कि आप लोग शरण जायें। तो सबने अपने हथियार डाल दिये और नमस्कार करके सब शरण चले गये। इसमें शौर्य क्या था? तो हम भ्रम में न रहेंगे कि हम सेना रखेंगे तो हमारी कायरता मिट जायगी।

कुछ लोग कहते हैं कि लड़कियाँ और स्त्रियाँ कमजोर हैं, इनके हाथ में अगर हम हथियार देंगे तो वे शूर बनेंगी। सीता लंका में गयी थी तो क्या अपने हाथ में हथियार लेकर गयी थी? रावण बात करने के लिए सीता के पास आया तो सीता ने उसके और अपने बीच एक तृण रखा और कहा कि तेरी कीमत मैं तिनके के जितनी मानती हूँ। रावण उसे कुछ नहीं कह सका। सीता के पास शस्त्रास्त्र कहाँ थे? सीता को जब रावण ने उठाया तब उसके पास केवल राम-नाम का ही भरोसा था। मुझे अगर राम-नाम का भरोसा नहीं होगा और मैं छुरी लेकर जाऊँगा तो मेरी छुरी की वीरता कहाँ तक टिकेगी? फिर राम भी इसके लिए क्या करेंगे? बिल्ली अपने सामने चूहा देखकर अपनी आँखें नाक-बाल पंजे आदि उठाकर जैसा स्वरूप प्रकट करती है, वह अत्याचार ही होता है। परन्तु अपने सामने जब वह कुत्ता पाती है, तो उसकी क्या दशा होती है? तो, बिल्ली शूर है या कायर? सामने कमजोर होता है, तो वह शूर बनती है और सामने बलवान् होता है, तो वह कायर बनती है। इसे क्या कोई शौर्य कहेंगे? सिंह इतना बड़ा बहादुर कहलाता है, पर उसकी भी हिम्मत नहीं है। सामने बंदूक देखकर वह भी भाग जाता है।

सेना हटाने की बात सोचें

अगर हम सेना कम नहीं कर सकते तो हमें कबूल करना होगा कि हमारा हिंसा पर भरोसा है। आज के आज ही सेना कम हो जाय, सारी सेना निकाल दी, ऐसा मेरा कहने का मतलब नहीं है। मैं यह कहता हूँ कि किसी भी तरह का खतरा उठाये बिना आज जितनी सेना है, उसमें कमी कर सकते हैं। मैं

तो इतना ही कहना चाहता हूँ कि आज सेना भले ही रहे परन्तु कल तो वह नष्ट होनी चाहिए न ? आज अगर वह बढ़ती है, तो आगे चलकर उसे कम करना है, यह आप सोचिये। जब तक शस्त्र का आधार आप नहीं छोड़ेंगे तब तक यह कभी नहीं हो सकेगा। इसलिए हमें देश के अन्तर्गत अहिंसा की शक्ति खड़ी करनी चाहिए, भले ही इसमें पाँच-दस साल लगें। परन्तु कम-से-कम देश की आन्तरिक शांति के लिए पुलिस या लश्कर का उपयोग न करना पड़े यह बात अगर भारत में सिद्ध हो जाय तो फिर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अहिंसा किस तरह प्रवेश करेगी इसका दर्शन होगा। आज तो भीतरी क्षेत्र में भी पुलिस की मदद लेनी पड़ती है। अहमदाबाद में दंगा चलता रहे और लोग घर में बैठे हों फिर भी हम गांधीवादी कहलायें! इसका अर्थ क्या है—वहाँ ऐसा कोई खड़ा न हो, जो बीच में जाकर कहे कि यह आप क्या कर रहे हैं? लोग कहते हैं कि अहमदाबाद में लोगों ने खादी-भंडार जलाया। परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसा कोई आदमी क्यों नहीं खड़ा हुआ जो कहता कि 'भाई, खादी को जलाने से पहले मुझे ही जला दो।' इसका मतलब यही है कि हम देश की भीतरी परिस्थिति में अभी तक पुलिस के बिना काम नहीं कर सकते। हमने सारे राष्ट्र की जिम्मेवारी सरकार पर सौंप दी और हम घर बैठ गये हैं—यह ठीक नहीं।

हिंसा-अहिंसा के युद्ध में अंतर

अहिंसा और हिंसा के युद्ध में बहुत बड़ा फर्क है। हिंसा के युद्ध में जो बिलकुल नालायक होते हैं वे बचते हैं। पचीस-पचीस साल के जवान लड़ाई में जाते हैं। वे अगर मर जायेंगे तो चौबीस सालवाले जाते हैं और वे भी मर जायेंगे तो सोलह या पन्द्रह सालवाले सेना में भरती किये जाते हैं। उनसे कहना होगा कि आप मर जाइये और साठ-पैंसठ सालवाले लोगों से कहा जायगा कि आप युग-युग जियो। आपको सेना में दाखिल नहीं करेंगे। हिंसक लड़ाई में बूढ़ों के लिए अवकाश नहीं है। वहाँ जाने के लिए जो लायक हैं उन्हें मरना है और मरने के लिए जो लायक हैं, उन्हें नहीं जाना है। परन्तु अपनी अहिंसक लड़ाई में तो मेरे जैसे और महाराज जैसे मरने लायक मनुष्य

आ सकते हैं और जो मरने की बिलकुल सीमा पर आये हैं, उनको भी उसमें दाखिल कर सकते हैं। इसमें जवान लोग ही दो कदम इस बाजू और दो कदम उस बाजू होंगे। इसलिए इसमें वृद्ध पुरुषों को दाखिल होना चाहिए। इसके अलावा जिन्हें 'अबला' कहा जाता है वे अहिंसा की लड़ाई में बलवान् बनती हैं। नारिणी शक्ति कहलाती है। स्त्रियाँ इसमें बहुत काम कर सकती हैं। अहिंसा की लड़ाई में यह खूबी है कि इसमें सब आ सकते हैं। हिंसा की लड़ाई में तो बत्तीस इंच छातीवाले ही आ सकते हैं, परन्तु यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ तो तीस इंच चौड़ी छाती चल सकती है। इसलिए सारा राष्ट्र इसमें खड़ा हो सकता है। सबमें वीरता का पराक्रम का संचार हो सकता है। यह अहिंसा से ही हो सकता है।

अहिंसक की हिम्मत

छोटे-छोटे लड़के भी पराक्रम के लिए तैयार हो सकते हैं और काम में आ सकते हैं। शाकुंतल में यह बात आती है। दुष्यन्त राजा शिकार के लिए आता है और हिरन के पीछे जाकर बाण मारने की तैयारी करता है। कण्व मुनि के आश्रम में हिरन को मारने की मनाही है। इसलिए राजा को देखते ही एक लड़का एकदम कहता है कि 'आश्रममृगो न हन्तव्यो न हन्तव्यः'—यह आश्रम का मृग है इसलिए इसे नहीं मार सकते। राजा को यह छोटा-सा बालक रोकता है और उस बालक के कहने से वह राजा एकदम रुक जाता है। उसे लगता है कि बात तो ठीक है, आश्रम के मृग को मार नहीं सकते। एक छोटा सा बालक इतने बड़े राजा के सामने खड़ा होकर कहे कि 'तुम आश्रम के हिरन को नहीं मार सकते'—यह अहिंसक की ही हिम्मत है। यह अहिंसा की ही शक्ति है।

सुविधावाली सेना में भरती हों

सेना की चर्चा करते हुए अभी एक बड़े पुरुष ने बताया कि जनरल विनेबा ने एक बार कहा था कि सेना की रानी का काम वैसा उसका दुरुपयोग है। उससे सेना का मेमानस कम हो जाता है। सेना को तो 'एक-दो' 'एक-दो' ही करना चाहिए। वह दो-तीन घंटे काम करेगी तो शरीर में तेज नहीं रहेगा। फिर उसका उपयोग नहीं होगा।

एक बार कुछ बुनकरों से जो बिलकुल पतली-पतली साड़ियाँ बनाते थे मैंने पूछा कि आप सब लोग बुनते हैं, यह तो अच्छा है परन्तु क्या आप खेती के काम में दो-तीन घंटा दे सकेंगे? उन्होंने कहा 'हमसे यह नहीं बनेगा क्योंकि खेती का काम 'मोटा' काम है और हमारा काम जरा नाजुक है—हमारा कला का काम है। अगर हम खेती का काम करते हैं, तो हमारे हाथ की कला हमारी अँगुली की कला चली जायगी। इसी तरह सेना के बारे में भी कहा जाता है कि अगर सैनिकों को दूसरा-तीसरा काम देंगे तो उनकी शूरता कम हो जायगी। इसलिए हमेशा के लिए उन्हें खाली रखना चाहिए और भरपूर पोषण देना चाहिए। देश के रक्षक के तौर पर उनको फुरसत भी देनी चाहिए। हिंसक सेना का तो यह हाल है परन्तु अहिंसक सेना बिलकुल सुविधावाली है। उसमें पंगु, बीमार, जवान वृद्ध स्त्री बालक—सब शामिल हो सकते हैं।

वासद (बम्बई राज्य)
११-१०-'५८

सरकार का अन्त करें .३३.

दुनिया में तब तक शान्ति नहीं होगी जब तक इन सरकारों से हम मुक्ति नहीं पायेंगे। कम्युनिस्ट चाहते हैं कि आखिर सरकार का क्षय हो पर आज वह परिपुष्ट होनी चाहिए। मानो क्षय है उधार, पुष्टि है नकद। किन्तु आज की हालत में सरकार को मजबूत बनाने की बात आती है, तो गुलामी के सिवा उससे कुछ नहीं निकलता। इसलिए आज से ही सरकार का क्षय होना चाहिए, यह सर्वोदय का विचार है।

सारांश जहाँ तक व्यक्तियों का ताल्लुक है, हरएक का मन तथा इन्द्रियों पर काबू रखने का भान होना चाहिए। समाज में एक-दूसरे के हितों के साथ एक-दूसरे के हितों का विरोध नहीं है यह समझकर समाज-रचना करनी होगी। सरकार की बिलकुल जरूरत नहीं है, यह समझकर उसके क्षय का आरम्भ आज से ही करना होगा।

विजयवाड़ा (आन्ध्र)

हमारा कुल सरकारों के साथ झगड़ा

एक भाई ने एक बड़ा मजेदार सवाल पूछा कि आपकी ग्रामराज्य की और विकेन्द्रीकरण की बातें चलती हैं तो आपका इस विषय पर सरकार से झगड़ा होगा या नहीं ? इसका उत्तर हम यह देते हैं कि झगड़ा हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता । अगर झगड़ा न हुआ तो वह प्रेम का परिणाम होगा—और झगड़ा हुआ भी तो वह भी प्रेम का ही होगा । अगर सरकार की योजना गलत निकली उसके साथ हमारा मेल न हुआ और हमें गांव-गांव जाकर यह समझाने का मौका आया कि सरकार की योजना गलत है, तो उस हालत में जरूर झगड़ा हो सकता है । परन्तु हमारा वह झगड़ा प्रेम का रहेगा । हम सरकार का परिवर्तन करना चाहते हैं ।

भूदान के काम में पहले कई प्रकार की शंकाएँ थीं । इससे नैतिक भावना तैयार होती है, यह अच्छा है । किन्तु इसमें जो छोटे-छोटे दान दिये जाते हैं उनसे कई समस्याएँ पैदा हो गयी हैं—ऐसा विचार सरकार और दूसरे भी लोगों में चलता है । परन्तु जब से भूदान की परिणति ग्रामदान में हुई, तब से दिल्ली पर भी इसका अच्छा परिणाम हुआ है । हम समझते हैं कि भूदान ग्रामदान की दिशा में जोर करेगा तो हम आज की सरकार का जल्द-से-जल्द परिवर्तन करने में समर्थ होंगे और प्रेम से ही झगड़ा टल जायगा । परंतु ऐसा न हुआ और झगड़े का मौका आया तो भी हमें उसका कोई डर नहीं मालूम होता क्योंकि हमारा तरीका प्रेम का है । इसलिए हमारे सामने यह समस्या उपस्थित ही नहीं होती ।

लेकिन सरकार का हमारे साथ झगड़ा न हो तो भी हमारा उसके साथ झगड़ा है ही । हम इस प्रकार की केन्द्रित सरकार ही नहीं चाहते । लेकिन यह तो जनता में इस प्रकार की ताकत पैदा करने पर निर्भर है । अगर हम वह ताकत तैयार करेंगे तो सरकार को उस दिशा में आना लाजिमी है क्योंकि आखिर यह लोकमत की सरकार है । लेकिन तत्त्वतः देखा जाय तो हम कबूल करते हैं कि हम सारे म हमारा कुल सरकारों के साथ झगड़ा है तो अपनी सरकार के साथ भी है ।

कंचिकचर्ला (आन्ध्र)
२६-१२-५५

राष्ट्र को धारण करनेवाले धृतराष्ट्र

ये जो धृतराष्ट्र होते हैं—राष्ट्र को धारण करनेवाले वे अंधे होते हैं। उनका एक दायरा होता है, उसीमें वे सोचते हैं। वे कहते हैं कि जमीन का बँटवारा होगा तो जमीन सबके लिए पूरी नहीं मिलेगी और हिन्दुस्तान में अशांति पैदा होगी। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि "बाबा बड़ा खतरनाक काम कर रहा है। लोग आश जागेंगे और फिर उन्हें जमीन न मिलेगी तो असंतोष पैदा होगा। आज जो संतोषमूलक राज्य चल रहा है, वह न रहेगा। हम इस आक्षेप को कबूल करते हैं। हम जरूर असंतोष पैदा करना चाहते हैं। व्यास भगवान् ने लिखा है 'असंतोष श्रियो मूलम्' असंतोष पैदा करने का काम दशरथ से नहीं बनता। उस काम के लिए राम और लक्ष्मण चाहिए। इसलिए बच्चों पर राम का काम करने की जिम्मेवारी है। हमारा अनुभव है कि बच्चों की जमात एक आवाज में कहती है कि सबको जमीन मिलनी चाहिए।

तलमर (आन्ध्र)
४ १ ५६

सत्ता कैसे मिटे ? ३४

आज लोगों ने धर्म-कार्य और सेवा-कार्य का जिम्मा चन्द लोगों पर सौंप दिया है। या यों कहिये कि चन्द लोगों ने कुशलता से कुछ जिम्मा या सत्ता अपने हाथ में ले ली और लोगों ने उसे सह लिया। यह भी कह सकते हैं कि लोगों ने उन्हें सत्ता दी या यह भी कह सकते हैं कि उन्होंने सत्ता ली और लोग बेसमझ वश में हो गये।

सत्ता के जरिये सेवा भ्रांति-मंत्र

जो भी हुआ हो लेकिन जो हुआ है, उसके मूल में यही एक श्रद्धा रही कि दुनिया में सत्ता के जरिये काम जल्दी और अच्छा होता है। इसीलिए 'सत्ता के जरिये सेवा' यह एक मंत्र ही बन गया। इसे हम 'भ्रान्ति-मंत्र' कहते हैं। हर जमाने में कुछ-न-कुछ भ्रम भी काम किया करते हैं। उस भ्रम के लिए

आधारस्वरूप कुछ सत्य भी होता है। इस ज़माने में एक विशेष सत्य का दर्शन हुआ है। वह यह कि "कोई भी गुण केवल व्यक्तिगत न रहे, सामूहिक बनना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि यह नया सत्य है, जिसकी झाँकी पहले के ज़माने में नहीं हुई। झाँकी तो थी, पर विज्ञान के कारण उसका स्पष्ट दर्शन आज के ज़माने को हुआ। लेकिन इस सत्य-दर्शन के साथ-साथ एक आभासरूप भ्रान्ति-दर्शन भी हुआ है। इसकी कोई ज़रूरत तो नहीं थी, फिर भी हुआ।

आज यह माना जाता है कि गुण को सामूहिक रूप ज़रूर मिलना चाहिए, उसके आधार पर सामूहिक जीवन बनना चाहिए। उसके लिए इन्तज़ाम होना चाहिए और इन्तज़ाम के लिए सत्ता चाहिए। इस तरह से गुण प्रतिष्ठा के लिए गुण अपर्याप्त है, उसके लिए सत्ता की आवश्यकता है। इसलिए आज की लोकशाही में ज़्यादा-से ज़्यादा लोग यहाँ तक जाते हैं कि लोगों में ज्ञान के ज़रिये कुछ गुण प्रचार भी होना चाहिए और शासन का, सत्ता का रूप उसके अनुकूल होना चाहिए। केवल सत्ता काम नहीं करेगी और न केवल गुण प्रचार ही। गुण प्रचार के लिए दूसरी शक्तियाँ—सत्ता की भी ज़रूरत है। इसलिए सर्व प्रथम लोगों में उस सत्ता को मान्य करनेवाला गुण होना चाहिए। उसके लिए अनुशासन सिखाया जाता है, तालीम भी सरकार के हाथ में दी जाती है, कानून बनाये जाते हैं। इस तरह अनेक प्रकार से लोगों को एक विशिष्ट विचार के पीछे चलने के लिए मजबूर किया जाता है। परिणाम यह होता है कि उस गुण का महत्त्व घट जाता है।

इन दिनों दुनिया के बहुत-से विचारक कहते हैं कि आज का समाज आदर्श समाज नहीं है और विनोबा जो बता रहे हैं, वह आदर्श समाज की बात है, आज के समाज की नहीं। इस आदर्श समाज तक पहुँचने के लिए कुछ समय चाहिए। बीच की जो राह है, उसमें सत्ता की आवश्यकता है। इसीलिए आज सबको सत्ता का मोह है। पर हम समझते हैं कि 'हमारी किसी पर कोई सत्ता न चले' यह जब तक मनुष्य को न सूझेगा, तब तक समाज ही न बनेगा। सामाजिक कार्य सत्ता से बनता है, यह निरी भ्रांति है। वस्तुस्थिति यह है कि सत्ता से समाज ही नहीं बनता। अगर मैं यह सोचूँ कि मेरे विचारों की सत्ता आप पर चले, फिर वह विचार आपको जँचे या न जँचे, तो मैं समाज-विरोधी हूँ, क्यों

चाही हूँ। जो विचार मुझे जँचा उसीको प्रधान मानता हूँ। विचार की आजादी अपने लिए आवश्यक मानता हूँ पर लोगों के लिए वह जरूरी नहीं मानता तो समाज के दो टुकड़े पड़ जाते हैं वहाँ समाज बनता नहीं। अतः गुण को सामाजिक बनाने के लिए उसके रास्ते में जो रुकावटें हों उन्हें हटाना ही चाहिए। जहाँ उसके बीच सत्ता आ जाय वहीं रुकावटें आ जाती हैं। यह बात जरा सूक्ष्म है परन्तु हमें समझनी ही होगी।

गृहस्थाश्रम में सत्ता

भगवान् ने माता-पिता के हाथ में बच्चे दिये हैं। आप देखते हैं कि ४-५ साल के अन्दर उन बच्चों के दिमाग में कुछ स्वतन्त्र विचार आना शुरू हो जाता है। और बढ़ने में उनके और माता-पिता के विचारों में टक्कर होने लगती है। इस हालत में माता-पिता क्या करते हैं ? इस विषय में पुराने लोगों का एक वचन है, पर वह कितना भ्रान्तिमूलक है, यह आप समझ सकते हैं। गृहस्थ के लिए कहा गया है कि उसे सब विषयों में हिंसा का परित्याग करना चाहिए। पर उसके लिए भी दो अपवाद हैं 'अन्यत्र पुत्रात् शिष्यात् वा'—पुत्र और शिष्य को छोड़कर उन्हें बाकी किसीको ताड़ना न करनी चाहिए। पुत्र और शिष्य को शिक्षा के लिए ताड़न करना ही चाहिए। चूंकि गृहस्थ के लिए अहिंसा के विधान में अपवादस्वरूप यह बताया गया इसलिए यह केवल भूतदयामूलक ही विचार है। वे समझते हैं कि अगर हम बच्चों को दण्ड न देंगे तो वे गलत रास्ते पर जायेंगे। वे अपना हित नहीं समझते इसलिए मौके पर प्रेम से प्रेरित होकर उनके हित के लिए ताड़न करना ही चाहिए।

यहाँ माता-पिता ने और उनके सलाहकारों ने हार खायी है और दंड शक्ति को दरम्यान दे दिया। जो बच्चा माता-पिता की गोद में आया उसकी क्या हालत थी ? मानव के नाते हुए दूसरे गुण उसमें नहीं थे लेकिन एक ही गुण था श्रद्धा। बाकी के गुण तो पीछे आते हैं। बच्चे ने श्रद्धा से माता के उदर में जन्म लिया। वह श्रद्धा के साथ माता के स्तन को आशीर्वाद समझता है। उसके मन में जरा भी शंका तर्क या दलील नहीं उठती कि किस दूध से मेरे लिए पोषण मिलेगा ? वह पूर्ण श्रद्धा के साथ उस दूध का पान करता है,

को जो समाधि लगती थी उसमें नींद का भी अंश था । इसलिए अगर जल्दी समाधि लगे तो साधक को शंका करनी चाहिए । इसी तरह अगर यह दीख पड़े कि लोग हमारी बात जल्दी मान लेते हैं, तो हमें जरूर शंका करनी चाहिए। इसलिए जो समय कम रहा है, वह ज्यादा नहीं उतने अवकाश की जरूरत ही है।

सूर्य-सा निष्काम कर्मयोग

हम निरंतर इस बात का चिंतन किया करते हैं कि सत्ता की यह अभिलाषा कैसे दूर हो । फिर हम अपने मन का संशोधन करते हैं कि क्या हमारे मन में ऐसा कुछ छिपा है कि हमारे विचार की सत्ता चलनी चाहिए ? अगर ऐसा अनुभव आये कि 'लोग हमारी बात मानते हैं तो हम सुखी होते हैं और नहीं मानते तो दुःखी होते हैं' तो समझना चाहिए कि हम लोगों पर कुछ सत्ता चलाना चाहते हैं । इसलिए हम ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि 'हमारा असर समाज पर होना चाहिए' ऐसी कोई भावना मन में रही हो तो उसे दूर करें । हमारा अपना विश्वास है कि मन में परोपकार की वासना रखे बिना काम किया जायगा तो अत्यन्त शीघ्र परिणाम होगा। सूर्य चमकता है तो सारी दुनिया को प्रकाशित करता है । किंतु क्या वह कोई ऐसी वासना रखता है कि लोगों को जल्दी उठना चाहिए, जल्द-से-जल्द अपने दरवाजे खोलने चाहिए, मुझे अपने घर में प्रवेश देना चाहिए ? वह केवल चमकता है । वह सेवक है, स्वामी के दरवाजे पर खड़ा रहता है । अगर कोई दरवाजा न खोले तो वह अंदर न घुसेगा बाहर ही खड़ा रहेगा । कोई थोड़ा-सा दरवाजा खोले तो उतना ही प्रवेश करेगा और पूरा खोले तो पूरा प्रवेश करेगा । लेकिन वह कभी गैरहाजिर नहीं रहेगा। स्वामी को चाहे जब जागने का हक है । अगर वे सोते हैं तो उन्हें सोने का हक है । पर सेवक को सोने का हक नहीं है । उसे सेवा के लिए हमेशा जाग्रत ही रहना चाहिए । उसे यह वासना छोड़ देनी चाहिए कि स्वामी जल्दी जागें । इस तरह सूर्यनारायण का आदर्श सामने रखकर हम निष्काम कर्मयोग करते रहेंगे तो दुनिया से सत्ता जल्द-से-जल्द हट जायगी ।

चलनी (मद्रास)
१८-११-५६

सेवा-द्वारा सत्ता की समाप्ति

यह सर्वोदय का विचार है कि हम एक मनुष्य पर भी अपनी सेवा न लादेंगे। इस पर कोई पूछेगा कि 'क्या सब लोग हमें पसन्द न करेंगे तो हम सेवा ही नहीं करेंगे ? इसका उत्तर यह है कि हम सेवा जरूर करेंगे पर चुनाव के जरिये नहीं चुनाव के बिना ही । सेवा के लिए चुनाव की जरूरत ही क्या है ? बाबा सेवा करते हुए पैदल निकल पड़ा है उसे किसने चुना है ? उसने खुद अपने को चुना । लोग उससे यह नहीं कहते कि "आप यहाँ से चले जाइये । आपकी सेवा हम न लेंगे हम आपको नहीं चाहते । यहाँ चुनाव का सवाल ही क्या है ? कोई भला मनुष्य बीमार के पास जाकर कहे कि "मेरे पास दवा है, मैं तुम्हें दूँगा तो क्या वह बीमार यह कहेगा कि 'मुझे तुम्हारी दवा नहीं चाहिए । मैंने तुम्हें चुना नहीं है। कोई भी दुखी लोग दवा ले लेगा । सेवा के लिए चुनाव की जरूरत नहीं है यों समझकर वह कार्यकर्ता चुनाव के जरिये मिलने वाला कोई भी स्थान जिम्मेवारी का पदवी न लेगा । वह लोकनीति को मानेगा और सीधा लोक-सेवक बनेगा । सरकार के जरिये लोगों को बदलने के बदले लोगों के जरिये सरकार को बदलेगा । हमारा यह दूसरा ही पंथ है ।

सब राजनैतिक पक्ष इसी वृत्ति से काम करते हैं कि वे सरकार के जरिये लोगों को बदलेंगे । हम उन पर टीका न करते । उन्हींकी तरह सोचनेवाले लोग दुनिया में ज्यादा हैं। हमारा समाज छोटा है। आज दुनिया में बहुत बड़ा समाज यही मानता है कि सत्ता के जरिये सेवा करनी चाहिए । हम कहते हैं कि सेवा के जरिये सत्ता खतम करेंगे । और भी एक पक्ष है, जो कहता है कि 'सेवा के जरिये सत्ता हासिल करने । आज हमारे हाथ में सत्ता नहीं है, हम सेवा करते-करते सत्ता हासिल करेंगे ।

गांधीग्राम (मद्रास)
१०-११ '५६

मैं राजनीति को ही निर्मूल करना चाहता हूँ

लोग मुझे समझाते हैं कि जिस तरह बापू राजनीति का आध्यात्मीकरण (स्पिरिच्युअलाइज) करते थे वैसी कोशिश आपको भी करनी चाहिए। मैं कहता हूँ कि मैं इस राजनीति को ही खतम करना चाहता हूँ ।

गांधी और तिलक की राजनीति

गांधीजी ने राजनीति में हिस्सा लिया वह इसलिए कि आजादी हासिल करनी थी। अपने शास्त्र में लिखा है—स्वतंत्र कर्ता। जो स्वतंत्र नहीं है वह कर्ता नहीं हो सकता। लोकमान्य तिलक से पूछा गया कि स्वराज्य के बाद आप कौनसा विभाग (पोर्टफोलियो) लेंगे तब उन्होंने कहा था कि राजनीति मेरा विषय नहीं है। स्वराज्य के बाद वेदाभ्यास करूँगा। जेल में उन्होंने गीता पर ग्रंथ लिखा राजनीति पर नहीं लिखा। उस पर से दिखता है कि उनका चित्त कहाँ था।

गांधीजी की राजनीति क्या थी ?

गांधीजी राजनीति के पक्षपाती थे ऐसा अगर आप कहते हैं, तो उनके आखिरी दो चित्र देखिये। स्वराज्य के बाद दिल्ली की सत्ता लेने से उनको कौन रोकता ? बैरिस्टर जिन्ना न अपने हाथ में सत्ता रखी वैसे बापू चाहते तो सत्ता ले लेते लेकिन वे गरीबों की सेवा में नोआखाली में चले गये। इधर स्वतंत्रता का उत्सव चल रहा था उधर उनका उपवास चल रहा था। बापू ने जिस राजनीति में हिस्सा लिया था वह कौनसी राजनीति थी ? उस जमाने में कांग्रेस का 'चवन्निया मेम्बर' बनना याने आखिर सत्ता का विरोध हासिल करना था आज कांग्रेस का मेम्बर बनना माने कुछ खोना नहीं है बल्कि पाना ही है। उस समय उसमें त्याग था तकलीफ थी। इस वास्ते बाबा से जब पूछते हैं कि राजनीति को निर्मल रूप (स्पिरिच्युअलाइज) करने की कोशिश क्यों नहीं करते हैं तो मैं कहता हूँ कि मैं उस चीज को खतम ही करना चाहता हूँ। उसे खतम करना ही है—सर्वोदय के ढंग से या अणुबम के ढंग से।

प्रजातंत्र के सामने सवाल

आपने परदेश के हमले से रक्षा के लिए सेना बनायी किन्तु सेना के हमले से बचने का क्या तरीका है ? यह सवाल आज (डेमोक्रेसी) के सामने पेश है। जब लोकतन्त्र में आपत्ति आती है, तो सब सत्ता राष्ट्रपति के हाथ में सौंपी जाती है [illegible] 'डेमोक्रेसी'

नहीं चल सकती है। जिस पद्धति का अपने पर विश्वास नहीं है, वह कैसे टिकेगी ? लोकतंत्र का अपने आप पर विश्वास नहीं है। इसलिए लोकतंत्र के विचार में संशोधन की आवश्यकता है।

कांग्रेस को गांधीजी का शाप !

कांग्रेस की हालत आज ऐसी क्यों हुई है ? मैं कहता हूँ कि कांग्रेस को गांधीजी का शाप लागू हुआ। गांधीजी ने बहुत दूरदर्शिता से कहा था कि देश की सबसे बड़ी संस्था कांग्रेस लोक-सेवक-संघ बन जाय, सेवा-संस्था बने, सत्ता-संस्था न बने। आज राजनीति को सबसे ऊँचा स्थान दे दिया है, लेकिन आगे आपको कौन पूछेगा ? आज उसकी चलेगी, जिसके हाथ विज्ञान होगा। विज्ञान से मिलिटरी की ताकत बनती है। इसीलिए जब रूस अमेरिका से बात करता है, तो पहले एक 'स्पुतनिक' छोड़ देता है। बातचीत सिर्फ फ्रेंच या अंग्रेजी में नहीं होती है, कृति से होती है। अपनी ताकत कितनी है, यह दिखाकर वह बात करता है। इसलिए इसके आगे कीमत विज्ञान की है, सियासत की नहीं। सियासत की जगह विज्ञान आयेगा और मजहबों की जगह अध्यात्म लेगा।

हलुमना (उत्तर प्रदेश)
१ ११ १

शासन-मुक्ति का विचार ३५

हमारे सामने तीन प्रकार के विचार हैं :

१. पहला विचार यह है कि अन्तिम अवस्था में सरकार क्षीण होकर शासन-मुक्त व्यवस्था हो जायगी। लेकिन वहाँ जाने के लिए आज हाथ में केन्द्रित सत्ता होनी चाहिए। ऐसा माननेवाले आरम्भ में अधिनायकवादी और अन्त में राज्यविलयवादी कहलाते हैं।

२. दूसरा विचार यह है कि राज्य-शासन शुरू में था, आज भी है और आगे भी रहेगा। समाज शासनमुक्त हो ही नहीं सकता। इसलिए समाज में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिसमें न्यूनतम सत्ता हो। शासन-सत्ता पार्टी-बहुल यह

तरफ बँटे लेकिन महत्त्व की व्यवस्था केन्द्र में ही रहे। ऐसा विचार रखनवाले मानते हैं कि शासन हमेशा होना चाहिए और सबका नियमन करने की शक्ति समाज द्वारा नियुक्त सरकार को मिलनी चाहिए।

३ तीसरा विचार हमारा है। हम भी मानते हैं कि अन्तिम हालत में समाज शासन-मुक्त होगा। यह पक्ष प्रारम्भिक अवस्था में एक हद तक शासन व्यवस्था की जरूरत महसूस करता है, लेकिन अन्तिम स्थिति में शासन की कोई आवश्यकता नहीं मानता। इस व्यवस्थाशून्य समाज की ओर बढ़ने के लिए यह अधिराज्य की भी आवश्यकता नहीं मानता बल्कि व्यवस्था और सत्ता के विकेन्द्रीकरण द्वारा उस ओर कदम बढ़ाना चाहता है। अन्तिम स्थिति में कोई शासन नहीं रहेगा केवल नैतिक नियमन रहेगा। ऐसा आत्मनिर्भर समाज निर्माण करने के लिए सर्वत्र स्वयंपूर्ण क्षेत्र बनने चाहिए। उत्पादन विभाजन रक्षण जिसका जहाँ का वहीं हो। केन्द्र में कम-से-कम सत्ता रहे। इस तरह हम प्रादेशिक स्वयपूर्णता में से विकेन्द्रीकरण साथ लेंगे।

सरकारी दृष्टि से मौलिक अन्तर

सरकार के प्लानिंग कमीशन (योजना-आयोग) और हमारी दृष्टि में यही मूलभूत अन्तर है। आयोग के एक सदस्य से पूछा गया कि क्या आपके प्लानिंग कमीशन के सामने यह आदर्श है? उन्होंने कहा "हमारे मन में यह जरूर है कि हरएक गाँव अपनी मुख्य-मुख्य जरूरतों के बारे में थोड़ा-बहुत स्वावलम्बी बने कुछ गाँव मिलकर अपना-अपना इन्तजाम भी कर लें लेकिन अन्त में शासनशून्य स्थिति की कल्पना हमारी नहीं है। मैंने कहा कि हमारी अहिंसक योजना में तो यह बात है कि सर्वोदय की भाषा में व्यवस्था की आवश्यकता धीरे-धीरे कम हो और अन्त में बिल्कुल ही न रहे। कम्युनिस्ट भी अन्त में शासन-मुक्त समाज चाहते हैं पर वे आज अपना अधिराज्य चाहते हैं। वे कहते हैं कि आज अधिक-से अधिक सत्ता होगी और अंत में वह शून्य हो जायगी। दूसरे कहते हैं कि शासन-व्यवस्था आज है और आगे भी रहेगी। बहुत-सी केन्द्रित रहेगी तो कुछ तफ्सील की की जायगी। हम कहते हैं कि अगर बहुत-सी या सारी-की सारी शासन-व्यवस्था केन्द्रित रही

तो आगे उसका विलीन होना मुश्किल होगा । इसलिए आज ही से हम उसे विकेन्द्रीकरण की ओर ले जायें । हमारे सारे नियोजन की यही बुनियाद होगी । आज ही मेरा आग्रह नहीं है कि हरएक गाँव सारी-की-सारी चीजें बनाये । गाँवों के समूह भी स्वयंपूर्ण बनाये जा सकते हैं । सारांश, हम प्रादेशिक आत्मनिर्भरता में से सामाजिक व्यवस्था-शून्यता की ओर कदम बढ़ाने की दृष्टि से ही सारा नियोजन करेंगे ।

अधिक-से-अधिक स्वावलम्बन

हमारा ध्येय तो यह हो कि हरएक व्यक्ति अधिक-से-अधिक स्वावलम्बी बने । भगवान् की भी यही योजना है । इसीलिए उसने सबको केवल मन बुद्धि आदि अन्तःकरण ही नहीं दिये बल्कि आँख कान नाक जैसे अलग-अलग बाह्यकरण भी दिये हैं । उसने किसीको दशकर्ण किसीको दशाक्ष किसीको दशहस्त तो किसीको दशपाद नहीं बनाया । उसने ऐसी योजना नहीं की कि अगर दशकर्ण को देखने की आवश्यकता पड़े तो वह दशनेत्र की तरफ दौड़े और दशनेत्र को सुनने की जरूरत हो तो उसे दशकर्ण के पास जाना पड़े । भगवान् ने इतना अधिक विकेन्द्रीकरण कर दिया है कि अब उसमें नियमन की जरूरत ही नहीं रही । इसलिए भगवान् है भी या नहीं इस बारे में कुछ लोग बेशक शंका प्रकट कर सकते हैं । अगर वह ऐसी सुन्दर व्यवस्था न करता तो उसे आज के मंत्रियों के इतनी ही दौड़धूप करनी पड़ती । एक जगह पत्थर, दूसरी जगह अनाज और तीसरी जगह तेल ऐसी व्यवस्था रहती, तो हरएक चीज यहाँ से वहाँ भेजने की फिक्र रहती और कभी झगड़ा हो गया तो किसीको एक चीज मिलेगी किसीको दूसरी मिलेगी । ऐसी व्यवस्था हमें कभी भी शासनमुक्त समाज की ओर नहीं ले जा सकती ।

टोटलिटेरियनिज्म और डिमोक्रेसी

हम बहुत बार सुनते हैं कि हमें डिमोक्रेसी (लोकराज्य) के जरिये काम करना पड़ता है इसलिए हम तीव्रता से काम नहीं कर सकते टोटलिटेरियन (सर्वाधिकारवादी) होने से काम शीघ्र होगा । लेकिन आज हम विचार को अपने दिमाग से निकाल दें । जहाँ दूर-दृष्टि नहीं होगी वहाँ लोग कहते हैं

कि "इंजेक्शन से शीघ्र आरोग्य मिलता है इसलिए दूसरी औषधियों से यह शीघ्र फलदायी है। किन्तु अगर जहर का इंजेक्शन दें तो चार घण्टे के अंदर बीमारी के साथ बीमार का भी अंत हो जायगा। पूछा जा सकता है कि "यह तो जहर का इंजेक्शन है नहीं। बीमारी शीघ्र चली जाती है और बीमार भी नहीं मरता। फिर हम टोटेलिटेरियनिज्म क्यों न अपनायें? सुनने में तो यह बात बहुत ठीक मालूम पड़ती है लेकिन वास्तव में यह केवल शीघ्र परिणाम वाली ही नहीं शीघ्र कुपरिणामदायी भी है। उस रास्ते से सिर्फ शीघ्र राहत ही नहीं मिलती बल्कि शीघ्र अनेक रोग पैदा होते हैं। इसके बावजूद निसर्गोपचार से थोड़ी देर लगती है, लेकिन हमेशा के लिए रोग से मुक्ति मिलती है। दूसरी दवा से शीघ्र लाभ का आभास होता है, लेकिन डाक्टर के पर्चे से तभी छूटते हैं, जब शरीर छूटता है।

मुख में राम, बगल में छूरी

हमारे लिए यह तरीका काम का नहीं है। लोकतन्त्र में भी शीघ्र फल की सामर्थ्य है, बशर्ते हम उसका ठीक-ठीक अर्थ समझें। अगर हम लोकतन्त्र का ठीक अर्थ समझ तो हमारा नियोजन आज ही से होना चाहिए कि सेना की कम-से-कम आवश्यकता पड़े लोग अपनी रक्षा का भार स्वयं उठायें। साथ उनमें इतनी निर्भयता और निर्वैरता हो कि सेना की जरूरत ही न रह जाय। अगर हम ऐसी योजना बनायेंगे तभी सच्चा लोकतन्त्र होगा और वह शीघ्र फलदायी भी होगा। आज हम इधर तो लोकतन्त्र की बात करते हैं, उधर सब व्यवस्था पूँजीवादी और अफसरशाही रखते हैं। जिस चीज का नाम लेते हैं, उसीके खिलाफ काम करते हैं। इसीलिए उसका थोड़ा-सा फल मिलता है और एक समय ऐसा भी आयेगा जब लोकतन्त्र का कुछ भी फल न निकलेगा। आज थोड़ा-सा फल दीखता है, यह भी आश्चर्य की ही बात है। कहते हैं न मुख में राम, बगल में छूरी—ऐसी ही यथावत् हमारी यह नीति है। हम लोकतन्त्र के साथ-साथ केन्द्रित योजना और लश्कर चाहते हैं। मुँह में लोकतन्त्र है और बगल में केन्द्रीकरण तथा लश्कर है। उस मूर्ख को आप क्या कहेंगे जो सूत कातता भी जाता है और तोड़ता भी जाता है? हम लोकतन्त्र के साथ-साथ उसके विनाश के तत्त्व भी लेते रहेंगे तो परिणाम कैसे निकलेगा?

लोकतन्त्र का सच्चा अर्थ समझें

हम एक विचारक हैं और विचारक के नाते अपना काम करते जाते हैं। अहिंसा हमारी नीति है जिसका तत्त्व समन्वय है। हमारा विचार किसीके साथ थोड़ा भी मेल खाता हो तो उसके साथ सहानुभूति और सहकार करने को हम तैयार रहते हैं। हरएक व्यक्ति के विचार में थोड़ा-बहुत भेद अवश्य रहेगा—पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना। लेकिन कुल मिलाकर हमारी मूलभूत राय एक है। हमारे मन में यह सन्देह न रहे कि टोटेलिटेरियनिज्म नहीं है इसलिए हमारा काम शीघ्र नहीं होता। हम लोकतन्त्र का सच्चा अर्थ समझें और पूरे अर्थ के साथ उसका प्रयोग करें, तो हमारा काम शीघ्रतम होगा।

शिवपुरी (उत्तर प्रदेश)
१५-४-५२

आजादी की लड़ाई की विशेषता

हमारे देश को दीर्घ प्रयत्न के बाद स्वाधीनता प्राप्त हुई है। आजादी की लड़ाई दूसरे देशों में भी लड़ी गयी। इसमें बहुत त्याग करना पड़ता है, यह भी सब लोग जानते हैं। अतः इसमें हमारे देश की कोई विशेषता नहीं। फिर भी इस देश की आजादी की लड़ाई एक विशेष ढंग से लड़ी गयी। दुनिया के इतिहास में यह बात गौरव के साथ लिखी जायगी। यही देश था जहाँ आजादी के लिए शांतिमय साधनों का आग्रह रखा गया। हम यह दावा नहीं कर सकते कि हमने परिपूर्ण शांति का अनुसरण किया फिर भी हमारे नेताओं का यही आग्रह रहा कि शांति के तरीके से ही लड़ाई हो और पूरे देश में टूटा-फूटा ही क्यों न हो शांति का प्रयत्न किया। उसीके परिणामस्वरूप इस देश को आजादी प्राप्त हुई। हम यह दावा नहीं करते कि हम लोगों के प्रयत्न से ही आजादी मिली। यह अहंकार रखने की गुंजाइश भी नहीं और उसे हम लाभ दायी भी नहीं समझते। हम जानते हैं कि हिन्दुस्तान की आजादी की प्राप्ति में दुनिया की ताकतों का भी योग है। दुनिया में एक ऐसी परिस्थिति थी जिसके कारण अंग्रेजों को इस देश को अपने हाथ में ज्यादा दिन रखना कठिन था। फिर भी यह मानना होगा कि उसके साथ-साथ यहाँ भी कुछ

प्रयत्न किया गया और उसका बहुत ही सुन्दर असर इस देश के इतिहास पर हुआ। यहाँ यह भी देखने को मिला कि जिस देश के साथ हमारा झगड़ा था उसके साथ स्नेह-सम्बन्ध बना रहा। इसमें जितना भारत का गौरव है, उतना ही इंग्लैंड का भी यह हम जानते हैं। ऐसे एक विशेष तरीके से यहाँ की लड़ाई लड़ी गयी इसलिए हमारे देश से बाहर की दुनिया कुछ अपेक्षा रखती है और इस देश की आवाज आज दुनिया में बुलंद है। हमारे पास कोई विशेष सेना-शक्ति नहीं कुछ संपत्ति भी ज्यादा नहीं। फिर भी जो कुछ असर इस देश का दुनिया पर होता है इसका कारण हमारे साधन हैं, जिनसे इस देश की आजादी की लड़ाई लड़ी गयी। इसलिए हम पर एक विशेष जिम्मेवारी आती है। हम उस जिम्मेवारी की गंभीरता महसूस करनी चाहिए।

आत्मज्ञान और विज्ञान

हमें समझना चाहिए कि हमारा देश बच्चा नहीं दस हजार साल का अनुभवी पुराना देश है। मैं कभी आत्मा का वर्णन पढ़ता हूँ तो उसमें मुझे इस देश का वर्णन दीख पड़ता है। 'नित्य शाश्वतो ऽयं पुराण'—यह नित्य और शाश्वत है यह पुराण है। यह है आत्मा का वर्णन और यही लागू होता है भारतवर्ष को। भारत के इतिहास में ही कुछ ऐसी विशेषता है जिसके कारण दुनिया की नजर इस देश की ओर है। निस्सन्देह दो हजार साल में जो मौका हिन्दुस्तान को नहीं मिला वह आज मिला है। आत्मज्ञान की परम्परा इस देश में प्राचीन काल से थी।

अब विज्ञान की शक्ति भी दुनिया में प्रकट हुई है। इधर भारत की इस प्राचीन आत्मज्ञान-शक्ति और विश्व की अर्वाचीन विज्ञान-शक्ति का योग हो रहा है। ज्ञान और विज्ञान का जहाँ योग होता है वहाँ सब तरह का क्षेम आ जाता है। *लेकिन यह क्षेम तब होता है जब उस ज्ञान-विज्ञान का हमारे जीवन में प्रवेश होता है।*

भारत का व्यापक चिंतन

हिन्दुस्तान में आवाज उठी है—'मानवता एक है।' हम वेद में पढ़ते हैं कि मानवता ग्रहण करो बुद्धिमान् जन! मानवता का स्वीकार करो। प्रति

हीत मानव सुमेधस'—हे मेधावी जन ! मानवता ग्रहण करो । इस तरह
ानवता की महिमा हम देश मे पायी है । मानवता से कोई छोटी चीज इस देश
ी संस्कृति को मंजूर नहीं । यहाँ के ज्ञानियों ने कोशिश की है कि मानवता
े भी ज्यादा व्यापक हम बन सकें तो बनें । इसीलिए हमने यहाँ के समाज में
ायों को भी स्थान दे दिया । मैं बहुत बार समझाता हूँ कि हिन्दुस्तान में
पना समाजवाद चलता है । इन दिनों पश्चिम में समाजवाद पैदा हुआ
है जिसे 'सोशलिज्म (Socialism) कहते हैं । वह कहता है कि सभी
मनुष्यों को समान अधिकार है । किन्तु हिन्दुस्तान का समाजवाद कहता
है कि मानवसमाज में हम गो-वंश को शामिल करते हैं और जो रक्षा
हम मानव को देंगे वही गायों को भी देंगे । यह छोटी प्रतिज्ञा नहीं
बहुत विशाल समाजवाद है । इसके लिए हम लायक बने हैं सो नहीं ।
इस लिहाज से हम तो बिलकुल ही नालायक हैं । जहाँ हमें गायों और
बैलों को भी रक्षण देना है और मानव के समान उन्हें भी मानना है
वहाँ हमें और भी बहुत व्यापक बनना है । गायों का रक्षा-शास्त्र भी हमें
पढ़ना होगा ।

अवश्य ही आज यूरोप में गायों की हालत हमारे देश से कहीं अधिक अच्छी है, फिर भी मानना होगा कि हमारे समाज-शास्त्र में जो खूबी है, वह पश्चिम के समाज-शास्त्र में नहीं है । वहाँ जो सबसे श्रेष्ठ शब्द है वह है 'ह्यूमेनिटी' (humanity) याने 'मानवता' । किन्तु हमारे यहाँ का सबसे श्रेष्ठ शब्द है वह है 'भूतदया' । हम यहाँ 'सर्वभूतहिते रताः' चाहते हैं । वहाँ वे कहते हैं 'ग्रेटेस्ट गुड ऑफ दि ग्रेटेस्ट नंबर' (*Greatest good of the greatest* number) । याने मानव-समाज के अधिक-से-अधिक लोगों का भला । वे 'सर्वमानवोदय' भी नहीं चाहते । कहते हैं 'अधिकतम मानवोदय' होना चाहिए जब कि हम मानवता से भी व्यापक चीज मानते हैं । सारांश अवश्य ही आज हमारा आचरण बहुत गिरा हुआ है । संभव है कि पश्चिमी देशवासियों की तुलना में हम नीच साबित हों फिर भी यहाँ सब व्यापक चिंतन का तात्पर्य है । वहाँ का चिंतन कम व्यापक रहा है याने हम मानवता से कम कभी नहीं सोचते ।

भारत की दयनीय दशा

किन्तु आज इस देश में एक विचित्र दशा दीख पड़ती है। यहाँ के लोग अपने को विशिष्ट प्रांतवाले समझते हैं। कोई अपने को 'आन्ध्र' समझता है, कोई 'कन्नड़' तो कोई 'बंगाली'। जिस देश के लोग अपने को 'सोऽहम्' कहते थे माने मैं वह हूँ जो अत्यन्त व्यापक तत्त्व है—ऐसा मानते थे उस देश के लोग अपने को जाति में ही सीमित मानते हैं। जो अपने को मानवता से भी अधिक व्यापक समझते थे वे आज 'भारतीय' से भी अपने को कम समझने लगे। S. R. C. (राज्य-पुनर्संगठन-आयोग) ने कुछ बातें प्रकट की तो एक प्रदेश खुश है और दूसरा नाखुश है। एक बात में एक को आनन्द है, तो उसीसे दूसरे को दुःख। अगर ऐसी योजना है, तो वह सर्वोदय-योजना नहीं है। यह मानवता नहीं पशुता है।

हम कबूल करते हैं कि जहाँ भाषा के अनुसार प्रान्त-रचना होती है, वहाँ जनता को सहूलियत मिलती है। जब तक किसान की भाषा में राज्य का कारोबार नहीं होता तब तक स्वराज्य का अनुभव हो नहीं सकता। इसलिए भाषानुसार प्रान्त रचना का हम बड़ा महत्त्व मानते हैं। लेकिन इसमें ज्यादा अभिमान की बात होने का मुख्य कारण हमारे देश द्वारा पश्चिमी देश की रचना का अनुकरण करना ही है, जो खतरनाक है।

सत्ता का विभाजन हो

स्वराज्य के बाद इस देश में 'वेलफेयर स्टेट' (welfare state) का आरम्भ किया गया। इस 'वेलफेयर स्टेट' का अर्थ है अधिक-से-अधिक सत्ता कुछ लोगों के हाथों में रहेगी और वे लोगों का सारा जीवन नियन्त्रित करेंगे। पूरे देश के पाँच लाख देहातों की योजना दिल्ली में बनेगी। जीवन के जितने अंग सम्भव हैं सभी विषयों पर दिल्ली में बात तय होगी। समाज में क्या-क्या सुधार हों, शादियाँ किस ढंग से हों, खाद में फलाँ-अमुक-चीज़ कैसे मिलाया जाय, देश में कौन-सी चिकित्सा-पद्धति लागू की जाय, हिन्दुस्तान में किस भाषा का प्रचलन हो, शिक्षा किस ढंग से चले आदि जीवन के सभी विषयों की दिल्ली में योजना तय होगी। अगर हम इतनी अधिक सत्ता केन्द्र को सौंपते हैं तो सारा

जन-समुदाय पराधीन हो जाता है, अनाथ बन जाता है। इसलिए दिल्ली की सत्ता ही कम होनी चाहिए।

हरएक को जितनी अक्ल की जरूरत है, उतनी अक्ल परमेश्वर ने बाँट दी और अब क्षीर-सागर में शयन करता है। अगर उसने सारी अक्ल का भण्डार अपने पास रखा होता तो वह पसीना-पसीना हो जाता। परन्तु उसने मनुष्य और प्राणियों को बुद्धि दे दी। इससे वह इतना तटस्थ रहता है कि कुछ लोग कहते हैं कि वह है ही नहीं। सर्वोत्तम सत्ता का यही लक्षण है कि उसका सार्वत्रिक विभाजन होता है। सर्वोत्तम सत्ता वही होती है जिसके बारे में हमें शंका हो कि कोई सत्ता चलाता है या नहीं। हमें भी यह शंका होनी चाहिए कि दिल्ली में कोई राज्य चला रहा है या नहीं। अपने गाँव का कारोबार तो हम ही देखते हैं। केन्द्रीय सत्ता इस तरह परमेश्वरीय सत्ता का अनुकरण करने वाली होनी चाहिए। उसके बदले में सारी-की-सारी सत्ता हम केन्द्र के हाथ में सौंप देते हैं। इसलिए सभी चाहते हैं कि केन्द्र पर हमारा प्रभाव पड़े।

वर्तमान चुनाव-पद्धति के दोष

दूसरी बात इस बारे में सोचने की यह है कि हम लोगों ने पश्चिम से चुनाव का एक तरीका अपनाया है। हम देखते हैं कि इस देश में जाति-भेद जितना फैला है उतना पहले नहीं था। भूमिहार-ब्राह्मण और राजपूत-भेद बिहार में जाकर देखिये। कम्मा और रेड्डी-भेद आन्ध्र में देखिये। ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर भेद मद्रास में देखिये। इस तरह हर प्रान्त में अनेक प्रकार के भेद बढ़ गए। सोचने की बात है कि जिस जाति भेद पर राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक सबने प्रहार किया और जो टूट भी रहा था वह आज इतना क्यों बढ़ रहा है? कारण यही है कि यहाँ चुनाव ने जाति-भेद को बढ़ावा दिया। जब चुनाव से इतना भयानक परिणाम होता है, तो उसके तरीके को बदलने की सख्त जरूरत है।

चुनाव से जाति भेद की वृद्धि पहला दुष्परिणाम है। दूसरा यह है कि आज जो तरीका चलता है उसमें जिसके पास ज्यादा पैसा है वही उसमें भाग ले सकता है। जिसके हाथ में ज्यादा शक्ति है, वही चुनाव में खड़ा होता है। इस हालत में गरीब और मूक जनता की आवाज कैसे उठेगी?

और भी एक बात है। चुनाव होते हैं, परन्तु जो लोग खड़े होते हैं उनके चेहरे भी हम नहीं जानते। लाखों मतदाताओं की ओर से सिर्फ चुनना है, उनके गुण तो दूर उनका चेहरा भी हम नहीं जानते। इस तरह चुनाव से खर्च बढ़ रहा है, जाति-भेद बढ़ रहा है और अच्छे मनुष्य ही चुनकर आयेंगे इसका भी कोई भरोसा नहीं।

आरोग्य का काम जनता उठा ले

अगर हम चाहते हैं कि हमारा समाज अहिंसा पर खड़ा हो तो हमें दूसरे ढंग से सोचना चाहिए। उसके लिए हमें समाज की रचना अपने विचार से करनी चाहिए, केवल पश्चिम के अनुकरण से काम न चलेगा। आज दुनिया के सभी देशों के लोग शांति के लिए प्यासे हैं। सभी ऐटम और हाइड्रोजन की शक्ति से भयभीत हैं। वे समझ गये हैं कि इससे दुनिया का निश्चित नाश होगा कुछ काम नहीं होगा। अगर हम शांति चाहते हैं तो उसके अनुकूल रचना भी करनी होगी। सरकार का एक-एक कार्य जनता को अपने हाथ में लेना होगा। काम कम होते-होते सरकार ही क्षीण हो जाय ऐसी योजना करनी होगी।

एक मिसाल लीजिये। यहाँ 'प्रेम-समाज' के लोग बीमारों और दु:खियों की सेवा करते हैं। इस तरह हिन्दुस्तान के कुल बीमारों की सेवा करने का काम जनता उठा ले तो सरकार का स्वास्थ्य-विभाग खतम हो जायगा। और यह होगा तो बहुत बात बनेगी। जैसे 'रामकृष्ण-मिशन' के मठों ने सर्वत्र बीमारों की सेवा का काम उठा लिया है। जगह-जगह वैसी ही संस्थाएँ बनें और लोग यही काम उठा लें। फिर जनता का जिस चिकित्सा-पद्धति पर विश्वास हो वही चलेगी। बी सी जी का जो वाद चल पड़ा है वह उठेगा ही नहीं। आज हालत यह है कि सरकार चाहे तो सब लड़कों को बी सी जी के इंजक्शन दिलवा सकती है। राजाजी इस बारे में बहुत बोल चुके हैं। यह सारा इसीलिए होता है कि इस देश ने केन्द्र के हाथ में सब सत्ता सौंप दी है। बच्चों को कैसी दवा दी जाय यह हम ही तय करने लगें तो सरकार का वह एक काम कम होकर उसकी सत्ता क्षीण हो जायगी। इस तरह देश को एक और आजादी मिल जायगी

पर आज आरोग्य के लिए कौन-सी पद्धति चलायी जाय यह सरकार सोचती है और हम कहते हैं 'यह बड़ा जुल्म है।

शिक्षण सरकार के हाथ में न हो

दूसरी मिसाल लीजिये। आज शिक्षण पर राजसत्ता का नियंत्रण है। जो 'टेक्स्ट बुक' प्रदेश की सरकार तय करे, वही उस प्रान्त के सब बच्चों को पढ़नी होगी। इसका मतलब यह है कि बच्चों के दिमागों में अपने विचार ठूँसने की शक्ति सरकार के हाथों में है। अगर सरकार कम्युनिस्ट होगी तो वह बच्चों को कम्युनिज्म सिखायेगी फासिस्ट हो तो फासिज्म सिखायेगी। सरकार सोशलिस्ट हो तो बच्चों को सोशलिज्म सीखना होगा और पूँजीवादी हो तो सर्वत्र पूँजीवाद का गौरव सिखाया जायगा। सरकार प्लानिंगवाली हो तो प्लानिंग की महिमा बच्चों के दिमाग में ठूसी जायगी। मतलब यह है कि बच्चों के दिमाग को आजादी नहीं रहेगी। हमारे देश में माना गया था कि शिक्षण पर राज्य की सत्ता होनी ही नहीं चाहिए। सांदीपनि गुरु पर वसुदेव की सत्ता नहीं चल सकती थी। वसुदेव का लड़का श्रीकृष्ण सेवक बनकर सांदीपनि के पास गया और सांदीपनि कृष्ण को सुदामा के साथ लकड़ी चीरने का काम देते थे। वहाँ कौन-सी 'टेक्स्ट बुक' चलनी चाहिए यह वसुदेव नहीं देखता था। क्षत्रिय सत्ता या राज-सत्ता शिक्षण पर हरगिज नहीं चल पाती थी। परिणाम यह हुआ कि संस्कृत भाषा में आज जितना विचार-स्वातन्त्र्य है उतना कहीं नहीं देखा जाता। हिन्दू-धर्म के अन्दर छह-छह दर्शन निकले और वे भी परस्पर एक-दूसरे का विरोध करते थे—इतना विचार का स्वातन्त्र्य यहाँ चला। इसका कारण यही है कि शिक्षण पर राजसत्ता का कोई काबू नहीं था।

सारांश अगर आज भी हिन्दुस्तान में लोगों की तरफ से शिक्षण की योजना चलेगी और सरकार का शिक्षण-विभाग खतम हो जायगा तो हिन्दुस्तान को और एक सत्ता मिल जायगी। इस तरह सरकार का एक-एक कार्य जनता के हाथ में आयेगा और सरकार की सत्ता क्षीण होती जायगी तो दुनिया में अहिंसा और शान्ति टिक पायेगी। नहीं तो केन्द्रीय सत्ता के हाथ में लोग रहेंगे तो समझ लीजिये कि दुनिया खतरे में है।

लोकशाही का ढोंग

क्या आप यह समझते हैं कि आपको मतदान का अधिकार मिला इसलिए आपके हाथ में सचमुच सत्ता आ गयी? कलकत्ते में गायों के खून की नदियाँ बहती हैं तो क्या आप यह समझते हैं कि वहाँ के लोग उसके लिए अनुकूल हैं? उत्तर प्रदेश में गो-वध की बन्दी हो गयी तो क्या उत्तर-प्रदेश का लोकमत बंगाल से अलग हो गया? बात यह है कि यहाँ लोकमत का कोई सवाल ही नहीं। बंगाल का मुख्य मन्त्री जिस तरह सोचता है उसी तरह वहाँ का काम चलता है। उत्तर-प्रदेश और बिहार में शराब की नदी बहती है। काशी में जितनी बड़ी विशाल गंगा नदी बहती है, उतनी ही विशाल शराब की नदी भी। उधर मद्रास और बम्बई में शराब की बंदी है। तब क्या आप समझते हैं कि बम्बई और मद्रास का लोकमत शराब के विरुद्ध और बिहार तथा उत्तर प्रदेश का अनुकूल है? स्पष्ट है कि अगर अच्छा मुख्य मन्त्री आये तो राज्य अच्छा और गलत आये तो राज्य गलत। मुगलों के राज्य में भी तो यही होता था। अकबर आया तो अच्छा राज्य चला और औरंगजेब आया तो खराब। जैसे उस समय लोकमत का कोई सवाल नहीं था वैसे आज भी नहीं है यद्यपि 'वोटिंग' (voting) का ढोंग अवश्य चला है।

कहने के लिए तो ये सारे आपके 'सेवक' कहलायेंगे। आप मालिक हैं, पाँच साल के लिए आपने इन नौकरों को चुना है। लेकिन अगर हम मालिक जाग्रत न रहेंगे तो ये ही नौकर कल 'पक्के मालिक' बन जायेंगे। और वे कहते हैं कि आपके कल्याण के लिए हमारे हाथ में ज्यादा-से-ज्यादा सत्ता होनी चाहिए। इसका नाम है कल्याणकारी राज्य (welfare state)। किन्तु जब से यह कल्पना हमने की तभी से हिन्दुस्तान पराधीन हो गया। कभी-कभी सोचता हूँ कि १५ अगस्त १९४७ हमारा स्वतन्त्रता-दिन है या परतंत्रता-दिन? क्योंकि इसके पहले हम कुछ-न-कुछ करते थे। बिहार में भूकम्प हुआ तो जमनालालजी बजाज वहाँ दौड़ पड़े। जनता ने काम शुरू किया। गुजरात में बाढ़ आयी तो वल्लभभाई दौड़े गये। वहाँ की बाढ़ में लोगों ने खूब काम किया जिसे देख अंग्रेज सरकार को भी शर्म आयी और वे काम करने लग गये। पर अगर

बाढ़ आ जाती है, तो कोई एक-दूसरे की मदद नहीं करता। कहते हैं 'सरकार मदद करेगी।' गत वर्ष बिहार में बारिश में बाढ़पीड़ित क्षेत्र में मेरी यात्रा चल रही थी। मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिलों में जबरदस्त बाढ़ थी और सीतामढ़ी के बहुत-से देहात पानी के अन्दर डूबे थे। फिर भी सीतामढ़ी शहर में सिनेमा बंद नहीं हुआ। मैंने वहाँ की सभा में कहा था लोग पीड़ित हैं। उनकी मदद के लिए कम-से-कम १ १५ दिन के वास्ते सिनेमा बंद करो। इतनी निठुरता क्यों? कारण स्पष्ट है वे सोचते हैं कि सरकार करेगी। इसमें हमारा क्या कर्तव्य है? हर बात में सरकार पर आधार रखना स्वतन्त्रता का नहीं गुलामी का लक्षण है।

जन-शक्ति से मसले हल हों

आज भूदान की तरफ लोगों का ध्यान क्यों जाता है? विदेशी लोग हमारी यात्रा में साथ घूमते हैं। दुनिया के बहुत सारे लोगों का ध्यान इसने खींच लिया है। क्योंकि लोग सोचते हैं कि यहाँ जनशक्ति के जरिये जमीन के बँटवारे का काम हो रहा है, यही अद्भुत बात है। लेकिन यहाँ के लोग बाबा से पूछते हैं कि "तुम पैदल-पैदल क्यों घूमते हो? सरकार से कानून बनवा लो, काम खतम हो जायगा।" पर वे सोचते नहीं कि क्या कानून से प्रेम भी किया जा सकेगा? इसने सरकार को जमीन बाँटने से रोका कहाँ है? अब तक सरकार ने जमीन क्यों नहीं बाँटी? अगर वह जमीन बाँट देती तो हमारी यात्रा बंद पड़ती और हम दूसरा काम करते। लेकिन सरकार जिन लोगों की बनी है वे सारे बड़े-बड़े जमीनवाले हैं। कांग्रेसवालों और सरकार की बात मैं छोड़ देता हूँ। कम्युनिस्ट गरीबों के पक्षपाती कहलाते हैं लेकिन उन्होंने भी यही कहा कि "कम्युनिस्टों का राज्य आयेगा तो हम बीस एकड़ का सीलिंग करेंगे।" कृष्णा-गोदावरी की तरीवाली २ एकड़ जमीन माने महाराष्ट्र की ५ एकड़ जमीन। वहाँ २ एकड़ तरीवाला मनुष्य लखपती बनता। इतनी जमीन रखने के लिए कम्युनिस्ट राजी हैं, तो दूसरों की बात ही क्या? फिर भी मान लीजिये कि कानून से यह काम किया जायगा तो क्या लोगों में प्रेम और जन-शक्ति पैदा होगी? इसीलिए दुनिया का भूदान की तरफ ध्यान है।

लोक-शक्ति के जरिये ऐसे विलक्षण कार्य होने जा रहे हैं जिसकी आज तक किसीने कल्पना तक नही की क्योंकि इसमें जन-शक्ति बढ़ती है। लोग प्रेम से जमीन दान देते हैं और एक मसला हल करते हैं। यह एक ऐसा कार्य होगा जिससे दुनिया के दूसरे मसले हल हो सकेंगे। मान लीजिये भूदान का काम जन-शक्ति से हो गया और गाँव-गाँव म प्रेम से जमीन बँट गयी तो कितना बड़ा काम होगा। कोरापुट जिले में छह सौ (अब लगभग दो हजार) ग्रामदान मिले हैं। वहाँ जमीन की मालकियत मिट गयी तो अब वहाँ सरकार के कानून को कौन पूछता है? अगर गाँव-गाँव के लोग तय करें कि हम जमीन की मालकियत नही रखेंगे तो कौन उनके सिर पर मालकियत थोपेगा?

सत्ता विचार की ही चले व्यक्ति की नहीं

इस तरह अपने देश का एक-एक मसला सरकार-निरपेक्ष जन-शक्ति से हल करना चाहिए। नहीं तो सारी सत्ता सरकार के हाथ में रहेगी और दुनिया में शान्ति रहना मुश्किल हो जायगा। अभी पाकिस्तान ने अपना शस्त्रास्त्र संभार बढ़ाने के लिए अमेरिका की मदद लेना तय किया। उस समय अगर पंडित नेहरू का दिमाग ठिकाने पर न रहता और वे कहते कि 'हम सबको युद्ध के लिए तैयार होना चाहिए' तो क्या हिन्दुस्तान म अशान्ति का वातावरण पैदा न होता? लेकिन परमेश्वर की कृपा से हमें एक ऐसे मनुष्य मिले हैं जिनकी अक्ल ठिकाने पर है। माने हिन्दुस्तान में शान्ति रखना या देश को अशान्ति में डुबोना यह सारा पंडित नेहरू पर निर्भर है। इस तरह किसी एक व्यक्ति के हाथ में सारे देश को ऊपर उठाने या नीचे गिराने की ताकत कानून से देना गलत है। अगर किसीके पास नैतिक शक्ति हो और लोग उसकी सलाह मानते हैं तो दूसरी बात है। गांधीजी की सत्ता हिन्दुस्तान पर चलती थी लेकिन वह नैतिक सत्ता थी। सब लोग उनकी बात मानने या न मानने के लिए मुक्त थे। इस तरह महापुरुषों की नैतिक सत्ता चले तो उसमें कोई भय नहीं। लेकिन देश को बनाने या बिगाड़ने की कानूनी सत्ता किसी एक के हाथ में देना गलत है।

हम तो यह भी चाहते हैं कि लोग नैतिक सत्ता भी बिना सोचे-समझे कबूल न करें। बाबा यह नहीं चाहता कि बाबा की तपस्या देखकर आप लोग उसकी बात बिना समझे कबूल करें। वह यही चाहता है कि उसकी बात आपको जँचे तभी आप उसे स्वीकार करें। हमने स्पष्ट जाहिर किया है कि हमारी बात समझे बिना कोई हमें दान देगा तो उससे हमें दुःख होगा। हमारी बात समझकर कोई दान देता है तो हमें खुशी होती है। हम चाहते हैं, जन-शक्ति और लोक-हृदय का उद्धार हो। हम चाहते हैं कि सामूहिक संकल्प-शक्ति प्रकट हो समुदाय की चित्त-शुद्धि हो। इस प्रकार की शक्ति प्रकट किये बिना अपना देश और दुनिया खतरे से नहीं बचेगी।

विशाखपत्तनम् (आन्ध्र)
२७-१ '५५

नेता की नहीं ईश्वर की मदद

हमेशा यह शिकायत की जाती है कि हमारे कार्यकर्ताओं के पीछे कोई बड़ा मनुष्य नहीं है। यह सोचने की बात है कि बड़ा कौन है। इस दुनिया में जो सबसे छोटे होते हैं वे ईश्वर के राज्य में सबसे बड़े होते हैं। अगर आपको किसी नेता की मदद मिलती तो आप ईश्वर की मदद से वंचित रह जाते ईश्वर की ज्योति आपके हृदय में प्रकट न होती। अगर जमीन मिलती तो आपको यही लगता कि उस नेता की ताकत के कारण मिली और नहीं मिलती तो लगता कि उसमें ताकत नहीं है। मान यश और अपयश दोनों आप उस नेता पर डालते। आपकी हृदय-शुद्धि का कोई सवाल ही नहीं रहेगा। इसलिए आज की हालत बहुत अच्छी है इससे आपके अन्दर में जो ग्लानि है वह आपकी आपको आत्म निरीक्षण का मौका मिलेगा और ईश्वर ने चाहा तो आपकी ही ताकत बढ़ेगी और आपकी शक्ति से ही काम होगा। लेकिन फिर अहंकार मत रखो कि हमारी शक्ति से काम हुआ। आपको समझना चाहिए कि यह कार्य नया है इसलिए नये मनुष्यों के लिए ही है। नया कार्य पुराने लोगों के लिए नहीं होता। ईश्वर अगर नये कार्य पैदा करता है तो उसके लिए नये मनुष्यों को भी पैदा करता है। पुराने नेता नये कार्य को पहचानें यह आशा रखना व्यर्थ

है। पुराने लोग आपके काम को अच्छा कहते हैं, आपको आशीर्वाद देते हैं इससे ज्यादा क्या चाहिए? समझना चाहिए कि भगवान् ने आपके लिए द्वार खोल दिये हैं। आप जाइये और बे-रोक-टोक काम कीजिये। आपके प्लेटफार्म पर बोलने के लिए कोई नहीं आता है, वह बिलकुल खाली है आपके लिए ही खाली रखा है। बारिश में ठण्ड में धूप में घूमना पड़ता है छोटे छोटे गाँवों में जाना पड़ता है, लोगों को बार-बार समझाना पड़ता है। कौन जायगा बारिश में और काम करेगा? इसलिए यह सारा कार्यक्रम हमारे लिए खाली रखा है। अतः परमेश्वर का नाम लेकर उत्साह के साथ काम करो।
भवानी (मद्रास)
२१-८ ५६

शस्त्रों के हल बनेंगे

बाबा जप करेगा और काम आप लोग करेंगे। क्या आपका काम बाबा करेगा? आपका खाना बाबा खायेगा? आपकी नींद बाबा सोयेगा? आपको अपना खाना खुद खाना होगा अपनी नींद खुद सोना होगा। हिन्दुस्तान का मसला हिन्दुस्तान हल करेगा। बाबा ने अपना मसला हल किया है। उसने अपनी कोई मालकियत नहीं रखी। जैसे साँप दूसरे के घर में जाकर रहता है वैसे बाबा भी दूसरे के घर में जाकर रहता है। बाबा ने साँप का चरित्र उठा लिया है। वह अपना घर बनाता नहीं। भागवत में अवधूत मुनि ने कहा है कि 'मैं साँप से यह बोध लेता हूँ' उसी तरह बाबा ने साँप से बोध लिया और अपनी मालकियत छोड़ दी। वह अपनी देह की भी मालकियत नहीं मानता बल्कि यही मानता है कि यह सारी देह समाज की सेवा के लिए है। उसने स्वयं अपने लिए कोई वासना नहीं रखी। तो बाबा का यह प्रश्न हल हो गया है। इसलिए बाबा को कोई समस्या नहीं हल करनी है। वह सारे देश की समस्या है, उसे सारा देश हल करेगा।

आज दुनिया में लोग बड़े-बड़े बम बनाते हैं लेकिन ये सारे शस्त्रास्त्र खतम हो जायेंगे। उन्हें कौन तोड़ेगा? जिन हाथों ने ये बनाये हैं, वे ही हाथ उन्हें तोड़ेंगे। ये सारी-की-सारी तलवारें, बन्दूकें लोहे के कारखानों में वापस जायेंगी

और वहीं उनका रस बनाकर हल तैयार किये जायेंगे। सारे-के-सारे शस्त्रास्त्र पिघलने के लिए भानवाले हैं, वहीं उनसे अच्छे-अच्छे औजार बनेंगे—काटने के लिए हँसिया, खेती के लिए हल और सूत कातने के लिए तकुए। यह कौन बनायेगा? जिन लोगों ने ये शस्त्र बनाये वे ही बनायेंगे। कब? जब विचार बरसेगा तब। विचार जन्मने पर सारी-की-सारी सृष्टि का संहार हो जाता और नयी सृष्टि पैदा होती है। सूर्य की किरणें फैलते ही सभी लोग अपने बिस्तर लपेट लेते हैं। जो बिछाते हैं वे भी लपेट लेते हैं। इसी तरह जिन्होंने ये शस्त्रास्त्र बनाये हैं उन्हींको समझ में आ जायगा कि इनसे कोई मसला हल नहीं होता तो वे ही इन्हें खतम कर देंगे। लोग पूछते हैं कि इतनी बड़ी भारी योजनाएँ गिरेंगी? भूकंप में क्या होता है? जितना बड़ा मकान होता है, उतना ही वह जल्दी गिरता है। छोटे मकान टिक भी जाते हैं। उसके लिए क्या करना होगा? विचार फैलाना पड़ेगा और वही काम कर रहा है।

मदुरै (मद्रास)
६-१०-'५६

शासनहीनता सुशासन शासन-मुक्ति ३६

प्रश्न : सरकार का स्वरूप कैसा होना चाहिए?

उत्तर : यह तो लोगों की हालत पर निर्भर है। मान लीजिये कि किसी कुटुम्ब में बिलकुल छोटे-छोटे बच्चे और जवान माता-पिता हैं। वहाँ माता-पिता की आज्ञा ही चलेगी और छोटे बच्चों को उनकी आज्ञा में रहना पड़ेगा। वही उस कुटुम्ब का स्वरूप होगा। जिस कुटुम्ब में लड़के बिलकुल छोटे नहीं हैं, समझदार हो गए हैं और माता-पिता और दूसरे कुछ काम कर सकते हैं, वहाँ दोनों के सहयोग से काम चलेगा। केवल माता-पिता की आज्ञा नहीं चलेगी—उस कुटुम्ब का स्वरूप वह होगा। और जिस कुटुम्ब में लड़के प्रौढ़ और माता-पिता बिलकुल बूढ़े हो गये हैं, वहाँ लड़के ही सारा कारोबार चलायेंगे। माता-पिता सिर्फ सलाह देंगे—न उनकी आज्ञा चलेगी, न उनका बच्चों के साथ सहयोग होगा।

सरकार का स्वरूप जनता की शक्ति पर निर्भर

इस तरह कुटुम्ब का स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार का होगा। लेकिन तीनों हालतों में उसका मुख्य तत्त्व प्रेम ही रहेगा और उसे बाधा न पहुँचे इसी दृष्टि से उसके बाह्य स्वरूप में परिवर्तन होगा। जैसे कुटुम्ब का मूल तत्त्व प्रेम है वैसे ही समाज का मूल तत्त्व 'सर्वोदय' होना चाहिए। 'सर्वोदय' समाज का मूल तत्त्व दिखानेवाला एक उत्कृष्ट शब्द है। जिस समाज में प्रजा-जन बिलकुल अज्ञानी हों उन्हें सोचने की शक्ति प्राप्त न हुई हो उस समाज की सरकार के हाथ में ज्यादा शक्ति रहेगी और लोग सरकार से संरक्षण की अपेक्षा रखेंगे जैसे छोटे बच्चे माता-पिता से संरक्षण की अपेक्षा रखते हैं। जहाँ प्रजा की दशा अज्ञानी की और हालत कमजोर हो वहाँ की सरकार सर्वोदय चाहनेवाली लेकिन कल्याणकारी सरकार होगी। उस सरकार को 'माँ-बाप सरकार' का स्वरूप आयेगा। किन्तु जैसे-जैसे प्रजा की शक्ति योग्यता और ज्ञान बढ़ेगा प्रजा में परस्पर सहयोग का मादा बढ़ेगा वैसे-ही-वैसे सरकार की जरूरत कम होती जायगी। फिर सरकार आज्ञा देनेवाली नहीं बल्कि सलाह देनेवाली संस्था बन जायगी। इस तरह जैसे-जैसे जनता का नैतिक स्तर ऊपर उठेगा वैसे-ही वैसे हुकूमत की हुकूमत चलाने की शक्ति क्षीण होती जायगी—हुकूमत कम होती जायगी। आखिर में तो हम यही आशा करते हैं कि हुकूमत मिट भी जायगी।

सर्वोदय के अन्तिम आदर्श में हम शासन-मुक्त समाज की कल्पना करते हैं। हम 'शासन-हीन' शब्द का प्रयोग नहीं करते। शासनहीनता तो कई समाजों में होती है जहाँ अन्धाधुन्ध कारोबार चलता है। जहाँ किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं होती दुर्जन लोग चाहे जो करते हैं उस अवस्था को 'शासन-हीन' कहा जायगा। ऐसा शासन-हीन हमारा आदर्श नहीं। हम तो चाहते हैं कि शासन हीनता मिटकर सुशासन हो और उसके बाद सुशासन मिटकर शासन-मुक्त समाज बने। शासन-मुक्त समाज में व्यवस्था न रहेगी सो बात नहीं। उसमें व्यवस्था तो रहेगी पर वह गाँव-गाँव में बँटी रहेगी। उसमें दण्ड की आवश्यकता नहीं रहेगी। समाज में कुछ नैतिक विचार इतने मान्य होंगे कि समाज के आचरण में आये होंगे समाज के छोटे-छोटे लड़कों को भी उसकी

तालीम मिली होगी। ऐसे समाज के लोग खुद होकर नैतिक विचार को मान कर चलेंगे। वह समाज स्वयं शासित होगा।

संग्रह भी पाप है

आज लाखों लोग चोरी नहीं करते तो वे इसलिए नहीं करते कि चोरी के विरुद्ध कानून है। कानून है तो ठीक ही है पर लाखों लोग इसलिए चोरी नहीं करते कि 'चोरी करना गलत है' यह नैतिक विचार उन्हें मान्य है। जैसे आज चोरी करना गलत है, यह मान लिया गया इसलिए सब लोग चोरी न करना सहज ही मान लेते हैं—चाहे किसी दण्ड या कानून का भय न हो तो भी चोरी न करेंगे। इसी तरह लोग संग्रह को भी बुरा मानने लगेंगे। वे अपने पास संग्रह न करेंगे। कुछ संग्रह हो जायगा तो फौरन बाँट देंगे। जिस तरह आज समाज में व्यभिचार बहुत बुरा माना जाता है लोग उससे बच ही रहना चाहते हैं—चाहे उसके विरुद्ध कोई सरकारी कानून न हो तो भी लोगों के विचार में व्यभिचार करना कानून माना जाता है। इसी तरह समाज में 'संग्रह गलत है' यह विचार मान्य हो जायगा। फिर उस समाज में 'अपरिग्रह' भी माना जायगा। तब आज के कई झमेलों का समाधान हो जायगा। चोरी करना पाप है यह विचार ठीक है पर वह एकांगी है। किन्तु जब संग्रह करना पाप है यह विचार भी समाज को मान्य हो जायगा तो दोनों मिलकर पूर्ण विचार बन जायगा। तब समाज का स्वास्थ्य बढ़ेगा। आज जिसके पास ज्यादा संग्रह है उसीका समाज में गौरव होता है किन्तु कल ऐसी स्थिति आयगी कि जिसके पास ज्यादा संग्रह हो उसकी अवस्था चोर जैसी मानी जायगी।

सर्वोदय-समाज की ओर

इस तरह जब समाज-रचना का आधार अपरिग्रह हो जायगा, तब सरकार की शक्ति की भी कम-से-कम आवश्यकता पड़ेगी। गाँव के लोग ही अपने गाँव का सारा कारोबार देख लेंगे और ऊपर की सरकार केवल निमित्तमात्र रहेगी। वह केवल सलाह देनेवाली सरकार होगी हुकूमत चलानेवाली नहीं। ऐसी सरकार में जो लोग होंगे वे नीतिवान् चरित्रवान् और सदाचारी होंगे। इसलिए उनके हाथ में नैतिक शक्ति रहेगी भौतिक नहीं। हम इसी प्रकार का सर्वोदय समाज लाना चाहते हैं। हमें इसी दिशा में अपनी सारी कोशिश करनी चाहिए।

सुशासन की बातें शासन-मुक्ति के गर्भ में

आजकल 'समाजवादी समाज-रचना' या और भी जो बातें चलती हैं, सारी 'सुशासन' की बातें हैं, शासन-मुक्ति की नहीं। इसलिए वे 'शासन-मुक्ति' के पेट में आ जाती हैं। जैसे माता के पेट में गर्भ रहता है तो उसे माता से पोषण मिल जाता है—वह जानता भी नहीं कि उसे माता से पोषण मिल रहा है—वैसे ही सर्वोदय-विचार से उसके गर्भ की समाजवादी समाज-रचना आदि बातोंको पोषण मिलता है। इसमें 'अ-शासन' या 'शासनहीनता' से 'सु-शासन' की ओर और 'सु-शासन' से 'शासन-मुक्ति' की ओर जाना है। इस तरह हम एक-एक कदम आगे बढ़ेंगे। लेकिन अगर हमारा अन्तिम आदर्श शासन-मुक्ति का होगा, तो हमें सुशासन भी इस तरह चलाना होगा कि शासन-मुक्ति के लिए राह खुली रहे। जैसे साधारण असंयमी मनुष्य को गृहस्थाश्रम की दिक्षा दें तो वह गृहस्थ बनता और उसमें संयम आ जाता है किन्तु यदि वह गृहस्थाश्रम में ही स्थिर हो जाय और वानप्रस्थाश्रम की ओर न बढ़े तो आगे नहीं बढ़ सकता। फिर तो जो गृहस्थाश्रम संयम के लिए उसे साधक हुआ वही बाधक बन जाता है। सारांश असंयम मिटाने के लिए गृहस्थाश्रम की स्थापना करनी होगी और गृहस्थ को अपने सामने वानप्रस्थ का आदर्श रखना होगा—गृहस्थाश्रम इस तरह चलाना होगा कि आगे कभी-न-कभी वानप्रस्थ लेना है। इसी तरह समाज की आज की हालत में हमें एक तरफ से शासन-मुक्ति की ओर ध्यान देते हुए सुशासन चलाना चाहिए और दूसरी तरफ से शासन-मुक्ति के लिए जनशक्ति संगठित करने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

हमारा दोहरा प्रयत्न

इसीलिए हम भूदान-यज्ञ में जनता की शक्ति को जगाना चाहते हैं, जनता को अपने पैरों पर खड़ा करना चाहते हैं। दूसरी ओर सरावबन्दी के लिए कानून बने ऐसी भी अपेक्षा करते हैं, क्योंकि शराबबन्दी के खिलाफ काफी जन मत तैयार हो चुका है। अगर शराबबन्दी न होगी तो देश में सुशासन न होगा—कुशासन होगा जो शासन-मुक्ति में बाधा देगा। इसलिए हम शासन-मुक्ति चाहते हुए शराबबन्दी-कानून की माँग भी करते हैं। लेकिन जमीन के बारे में हम चाहते हैं कि गाँव की कुल जमीन गाँव की हो। इस तरह उधर तो हम स्वतन्त्र

रीति से लोक-शक्ति संगठित करने का प्रयत्न करते हैं और इधर शासन को सुशासन में परिवर्तित करने की कोशिश भी करते हैं।

कानून याने समाप्तम्

गाँव की कुल जमीन गाँव की बन जाय, अगर इस तरह का सक्रिय लोकमत बन जाय याने लाखों लोग भूदान दे दें, तो आगे गाँव की जमीन गाँव की हो, इस तरह का कानून बनेगा। वह कानून लोकमतानुसारी होगा—वह लोगों को प्रिय होगा, अप्रिय नहीं। मान लीजिये कि हर गाँव के ८० फीसदी लोगों ने जमीन दान दी और २० फीसदी लोग दान देने को तैयार न हुए। उन्हें मोह है, इसलिए तैयार नहीं हुए, पर उन्होंने विचार को तो पसन्द किया ही। उस हालत में भी सरकार का कानून बन सकता है। इसलिए इधर हमारी कोशिश तो यही रहेगी कि सारे-के-सारे लोग इस विचार को पसन्द करें, ताकि सरकार के लिए सिर्फ उसका नोट लेना, उस पर मुहर लगाना इतना ही काम बाकी रह जाय। जैसे हम एक अध्याय पूरा-का-पूरा लिख डालते हैं और जहाँ लिखना समाप्त होता है, वहाँ आखिर में 'समाप्तम्' लिख देते हैं, वैसे ही जनता एक काम को कर डालती है तो वहाँ 'समाप्तम्' लिखने का काम सरकार का होता है। लेकिन लोक-शक्ति से अध्याय लिखने का काम पूरा न हो, अध्याय अधूरा ही रह जाय और उस पर भी सरकार 'समाप्तम्' लिख दे, तो केवल वह लिखने से अध्याय पूरा नहीं होता, पूरा लिख डालने से अध्याय पूरा होता है। जैसे बाल-विवाह नहीं होना चाहिए। इसका अध्याय हम लिख रहे थे, तो सरकार ने बीच में लिख डाला कि 'समाप्तम्'। परन्तु वह समाप्त नहीं हुआ और आज भी बाल-विवाह जारी है।

सरकार का भी एक काम होता है। अन्तिम अवस्था में सरकार का कोई काम नहीं होगा, पर आज की हालत में होता है। लेकिन आज भी जनता पहले काम उठायेगी और जनता के पीछे-पीछे आने का काम सरकार का होगा। इस तरह सुशासन भी रहेगा और हम शासन-मुक्ति की तरफ भी आगे बढ़ेंगे। हम शासन-मुक्ति की वांछा रखते हैं, तो कम-से-कम सुशासन तो हो ही जायगा। करोड़ रुपया प्राप्त करने की आशा रखते हैं तो लाख रुपया तो हो ही जाता है।

हिमतरी (उत्कल)
१८-५-५५

आजादी के बाद की प्रेरणा

आप आजाद देश के नागरिक हैं। आज आपके सामने देश को बनाने का काम है। हम लोगों ने देश को आजाद करने के लिए कोशिश की थी। अनेक लोगों ने जान की बाजी लगा दी। उस जमाने में जो प्रेरणा थी वैसी ही कोई प्रेरणा इस जमाने में भी होनी चाहिए। स्वराज्य-प्राप्ति का काम बहुत जल्दी हुआ। लेकिन अब मोसम के दिन हैं यह समझोगे तो श्रम का आरम्भ होगा। पहले बहुत त्याग किया उसकी जरूरत भी थी लेकिन आज पहले से भी ज्यादा त्याग करने की जरूरत है। स्वराज्य हमारे हाथों में आया है माने हमारा पंत हमारे हाथ में आया है। अब इस वक्त में हमें मेहनत-मशक्कत करनी होगी। मिल-जुलकर काम करना होगा। पहले से भी ज्यादा त्याग करना होगा। इसलिए हम सबको हाथ में हाथ लेकर काम में जुटना होगा। धनक पैदा करना उसकी हिफाजत रखना और जो पैदा हो उसकी बटनी करना यह सारा काम करने का है। अमावस्या टल गयी। कृष्णपक्ष समाप्त हो गया। शुक्लपक्ष शुरू हुआ है। अब दिन-ब-दिन चन्द्र बढ़ेगा। इसलिए मैंने कहा कि देश को आकार देना और मेहनत करना अभी बाकी है।

आजादी का आलोक घर-घर फैले

उन दिनों हमारे यहाँ के लगड़ शंकराचार्य के गद्दी के सामने जैसी के लगड़ लन्दन की प्रीवी कौंसिल में जाते थे। कैसी शरम की बात थी? अब आजादी मिल गयी तो हम जरा जानना होगा कि आजादी का पार्सल कहाँ है? लन्दन से दिल्ली आया है और शायद थोड़ा-सा हिस्सा जयपुर आया है। लेकिन वह पार्सल गाँव-गाँव तक नहीं पहुँचा है। कहीं बीच में ही स्टेशन मास्टर ने उठा लिया है। स्वराज्य आया, लेकिन गाँव-गाँव में उसका उदय नहीं हुआ है। जब तक गाँव का दिमाग गाँव का मजदूर गाँव का कारीगर

यह नहीं समझता कि हमारे लिए कुछ हो रहा है तब तक हम कैसे कह सकते हैं कि हमारा राज्य आया है। जब तक बच्चे-बच्चे को स्वराज्य का अनुभव नहीं होता तब तक हमारी आजादी का कोई अर्थ नहीं है। क्या बहनों को स्वतन्त्रता का अनुभव आता है? गरीबों को यह महसूस होता है कि हमारा राज्य आया है और हमें उसमें कुछ काम करना है? क्या इस तरह की भावना गाँव के लोगों में उद्भूत हुई है? आजादी मिली है तो क्या उसको बिगाड़ना है? आजादी का एहसास हम सब लोगों को नहीं होता है, तब तक स्वराज्य गाँवों में नहीं दिल्ली में ही है ऐसा मानना चाहिए। सर्वोदय दिल्ली में हुआ लेकिन मुल्क में तो अंधेरा ही है। गाँव-गाँव में अंधेरा है। गाँव में कुछ झगड़ा हुआ तो आज भी गाँव के लोग शहर के कोर्ट में आते हैं। सारे लोग बेचारे डरे हुए हैं। गाँव-गाँव में दारिद्र्य है, बीमारी है, अज्ञान है। बाहर शहरों में तथा देश में कहाँ क्या चल रहा है कोई जानता ही नहीं।

राज्य चलाना भी एक कर्तव्य

दिल्ली का राज्य चलाना भी हमारा धर्म है, कर्तव्य है। लेकिन हम राज्य में भरत और उसके समान लक्ष्मण भी होना चाहिए। लक्ष्मण बाहर है या भरत राज्य सँभाल रहा है ऐसा होना चाहिए। दोनों महान् विरक्त दोनों महान् भक्त। एक जंगल में मंगल कर रहा है और दूसरा मंगल को जंगल कर रहा है। सुमित्रा के पास जाकर जब लक्ष्मण ने कहा कि मुझे जंगल में राम की इजाजत दो तब वह क्या भावना लेकर गया था? यही कि मैं राम का भाई हूँ, दशरथ का पुत्र हूँ ऐसा कोई नाता उसने ध्यान में नहीं रखा। एक ही चीज ध्यान में रखी कि मैं राम का भाई हूँ। राम को ही पिता समझ कर वह उनके साथ गया। लक्ष्मण अयोध्या छोड़कर राम के साथ गया और भरत ने अयोध्या को ही जंगल समझा। दिल्ली में जो रहेगा, वह दिल्ली को जंगल समझे और बाहर मेरे जैसा जो फकीर रहे वह जंगल को दिल्ली समझे।

इसके बाद पूछा जाता है कि जो लोग चुनकर आयेंगे उनकी हैसियत क्या होगी? मैं कहता हूँ कि जनता के जरिये सेवा करना जैसा एक काम होता है वैसा ही जो जंगल नहीं जाते उनको सत्ता के जरिये ही सेवा करनी है।

मैंने मिसाल दी कि दिल्ली में जो हों वे विष्णु भगवान् और बाहर जो हों वे शंकर भगवान् होने चाहिए। विष्णु की हालत क्या होगी? लक्ष्मी माता का जब स्वयंवर हुआ था तब बहुत सारे बादशाह 'लक्ष्मी मुझे वरेगी और मेरे ही गले में माला डालेगी' इस भावना और आशा से आये। लक्ष्मी ने अपना प्रण जाहिर किया कि जिस शख्स को मेरी प्राप्ति की इच्छा नहीं होगी उसे मैं माला डालूँगी। जितने आये थे वे सब बेवकूफ साबित हुए और भागने लगे। आखिर वहाँ कोई न रहा। फिर लक्ष्मी ढूँढ़ती चली गयी। झुँझनू में भी आयी थी सीकर में भी गयी जयपुर, दिल्ली में भी गयी—वहाँ के बड़े-बड़े मकानों में गयी। आखिर क्षीरसागर में गयी। वहाँ शेषशायी *भगवान् अत्यन्त शान्त होकर बैठे हुए थे। उन्होंने लक्ष्मी को देखा भी नहीं।* माने ऐसा शख्स जिसे उसकी परवाह भी नहीं थी। उनके चरण में लक्ष्मी बैठ गयी और आज भी वहीं है—वह उन्हें छोड़ती ही नहीं। विष्णु की भाँति अत्यन्त अनासक्त होकर लोगों के नाम से लोगों के लिए ही राज्य चलाना चाहिए। भगवान् शंकर का वर्णन है कि उनके हाथ में कपाल है, भस्म लगाया है—याने सारा दरिद्रनारायण का ठाट। वह वैराग्य में मस्त है और विष्णु अनासक्ति में। इस तरह दोनों चाहिए। सारांश राज्य चलाना *कर्तव्य है। वह रामजी का कार्य समझकर अत्यन्त अनासक्ति से वैराग्यपूर्ण* होकर चलाना चाहिए। लेकिन दूसरी एक ऐसी जमात होनी चाहिए, जो गाँव गाँव में जाकर लोगों में स्वराज्य की भावना निर्माण करे। स्वराज्य याने ग्राम स्वराज्य। लोगों को जगावें और कहें कि 'जागिये रघुनाथ कुँवर पंछी बन बोले।' उधर अयूब खाँ एक पंछी बोल रहा है। उधर मिस्र में दूसरा पंछी नासिर बोल रहा है। तीसरा पंछी तिब्बत में भी बोल रहा है। मिस्र, ईराक, पाकिस्तान में क्या चल रहा है, यह देहात के लोगों को मालूम नहीं है। उनके पास कौन जायगा, कौन समझायेगा? दुनिया में क्या हो रहा है यह ज्ञान लोगों के पास कौन पहुँचायगा?

झुँझनू (राजस्थान)
१७-३ '५९

फसादात का बाइस खानगी मालकियत

हमारा यह मानना है कि फसादात का मजा तब तक जारी रहेगा जब तक हम खानगी मालकियत कायम रखेंगे। आज दुनिया में जितने दुःख मौजूद हैं, उनका मूल कारण है—खानगी मालकियत। यह घर, यह खेती, यह दौलत सब 'मेरी' 'मेरी' कहते हैं। यह 'मेरी' ही हमें तकलीफ देती है। इस तकलीफ को और दुनिया की कशमकश को मिटाने के लिए आप सिर्फ 'मेरी' की जगह 'हमारी' दाखिल कर दीजिये। आप यों कहना सीखिए कि यह घर हमारा है, यह खेती हमारी है, यह दौलत हमारी है और ये सभी चीजें हमारी हैं। 'मेरी' कुछ नहीं सब 'हमारी' है। यहाँ तक कि यह शरीर भी मेरा नहीं सबका है, सबके लिए है, जो सिर्फ मेरे सुपुर्द किया गया है, ताकि इसके जरिये सबकी खिदमत की जा सके। एक भाई ने हमसे पूछा कि यह जद्दोजहद कायम ही रहेगा या मिटेगा? हमने कहा कि अगर इसका बुनियादी कारण मालूम कर मिटाया जाय तो मिट सकेगा। बुनियादी कारण है—खानगी मालकियत।

पार्टियाँ दिलों को तोड़ती हैं

मैं देखता हूँ कि लोग मुझे ही अपनी सियासत (राजनीति) समझाते हैं। क्या हम सियासत को चाटें? क्या उससे लोगों के दिल जुड़नेवाले हैं? यहाँ कश्मीर घाटी में कितने लोग हैं? बीस लाख। सियासत के कारण उनके भी टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं। कुछ लोग इस पार्टी में हैं, कुछ उस पार्टी में। जहाँ ऐसे टुकड़े-टुकड़े हों वहाँ ताकत कैसे बनेगी? मैं आठ साल तक घूमने के बाद यहाँ आया हूँ तो क्या सियासत सम्बन्धी बातें सुनने आया हूँ? नहीं। मैं चाहता हूँ कि गाँव-गाँव के लोग अपनी ताकत को पहचानें। आप यह निश्चित समझ लीजिये कि जब तक आप पर कोई न कोई सियासी पार्टी हुकूमत चलाती रहेगी तब तक गाँव की ताकत मजबूत नहीं बन सकेगी।

हुकूमत करनेवाली पार्टी अच्छी रही तो लोग सुखी बनेंगे और अच्छी न रही तो लोग दुःखी बनेंगे। अकबर बादशाह आया तो जनता सुखी बनी और औरंगजेब आया तो दुःखी। पहले एक आदमी के हाथ में नसीब सौंप देते थे। लेकिन अब वैसा नहीं करते। अब जम्हूरियत (लोकशाही) आयी है। सारी सत्ता लोगों के हाथों में है। फिर भी यह निश्चित है कि इस समय भी सच्ची जम्हूरियत नहीं आयी है। इसका नतीजा यह हुआ है कि हुकूमत चन्द लोगों के हाथों में है। वे चन्द लोग अच्छे होते हैं तो काम अच्छा होता है और बुरे होते हैं, तो बुरा होता है। इसलिए पार्टीवाली जम्हूरियत रहेगी तब तक दिलों के टुकड़े होते रहेंगे।

पार्टी-पॉलिटिक्स जहाँ चलता है वहाँ एक पार्टी के हाथ में हुकूमत होती है और दूसरी पार्टी के हाथ में हुकूमत नहीं होती। दूसरी पार्टी पहली पार्टी के साथ झगड़ती रहती है वह भी हुकूमत अपने हाथों में लेना चाहती है। दोनों पार्टियाँ हुकूमतपरस्त (सत्ता-पूजक) होती हैं। दोनों का मानना हुकूमत के इर्दगिर्द होता है। इसलिए दोनों में कशमकश जारी रहती है। हुकूमतवाली पार्टी के लोग अपनी खूबियों को कारनामों को बढ़ा-चढ़ाकर लोगों के सामने रखते हैं और विरोधी पार्टीवाले उनके मसूस कमियों और दोषों को जाहिर करते हैं। दोनों हुकूमतपरस्ती के कारण गुण-दोषों के कहने सुनने में ही लगे रहते हैं। नतीजा यह होता है कि खिदमतगार कोई नहीं रहता। हर कोई यही कहता है कि हमारे हाथ में हुकूमत रहेगी तो हम आपको 'जन्नत' में ले जायेंगे और दूसरों के हाथ में हुकूमत रही तो वे आपको 'जहन्नुम' में ले जायेंगे। कोई लोगों को यह नहीं कहता कि 'जन्नत' और 'जहन्नुम' खुद आपके हाथों में है। आपको वहाँ ले जानेवाला आपके सिवा और कोई नहीं हो सकता।

अपनी ही ताकत काम देगी

कोई शख्स दूसरे की जिम्मेदारी नहीं उठा सकता। हरएक को अपना-अपना बोझ उठाना पड़ेगा।—यही बात कुरान में भी कही गयी है। आपको अपनी और अपने गाँव की ताकत को समझना होगा। ऐसी ताकत

आप पैदा करेंगे, तभी पैदा होगी। इसके वास्ते लोगों को खिदमत-परस्त (सेवा-मूलक) होने की जरूरत है। मैं चाहता हूँ कि हर इन्सान खिदमत-परस्त हो। पर इन्सान की हर ख्वाहिश पूरी नहीं होती। इसलिए यहाँ कम-से-कम कुछ लोग तो खिदमत-परस्त रहें, जिनकी जबान पर लोग भरोसा कर सकें। आज लोगों को किसी पर भरोसा नहीं है। इस पार्टीवाले उस पार्टी की निन्दा करते हैं और उस पार्टीवाले इस पार्टी की निन्दा करते हैं। जनता दोनों की निन्दा सुनती है और दोनों पर भरोसा करना छोड़ देती है।

मजदूरी की दुआएँ

आज सुबह जो लोग आये, वे कह रहे थे कि यहाँ जम्हूरियत (लोकशाही) पनपनी चाहिए। दुनिया में जम्हूरियत है, लेकिन वह कहाँ? क्या वह अमेरिका में पनप रही है? नहीं। मैं कहना चाहता हूँ कि अमेरिका में भी जम्हूरियत पनप नहीं रही है। वहाँ भी पूरी ताकत चन्द लोगों के हाथों में है। बस, अगर आइक का दिमाग बिगड़ जाय या खराब हो जाय, तो वह पूरी दुनिया को तबाह कर सकता है। आज आइक, मैकमिलन, बुल्गानिन आदि कुछ ही ऐसे लोग हैं, जिन पर सारी दुनिया का दारोमदार है। अगर बुल्गानिन ने चाहा और उनका दिमाग बिगड़ गया, तो हम सब खतम हैं। आप दुआ माँगते हो कि 'ऐ खुदा, हमें अमन दे।' लेकिन अब ऐसी दुआ माँगो कि 'ऐ खुदा, आइक, मैकमिलन, बुल्गानिन आदि को अमन दे।'

अल्लाह के बीच मुल्ला

अल्लाह और हमारे बीच में है—मुल्ला। इस्लाम का काम हमारी तरफ से अल्लाह बोलना और मेरा या नाम लेकर सुनाइएगा! तब फिर हम क्या करेंगे? नाचेंगे, गायेंगे और रोयेंगे (अपनी हालत के मुताबिक)। इस्लाम और निरन्तर जैसी जिन्दगी की बातें जो आज हम बरदाश्त तथा सुनाइएगी पर ध्यान, तब तक हम सुखी नहीं बन सकेंगे। अगर इन्साफ से हम सुखी बन भी गए तब भी वह गलत होगा। दूसरे की बदौलत से सुखी या दुःखी बनना, दोनों ही गलत है।

खिदमतगार जमात की जरूरत

डमोक्रेटिक नेशनल कान्फ्रेन्सवालों ने हमारे सामने दो बातें रखीं (१) यहाँ हिन्दुस्तान की चुनाव-पद्धति लागू हो और (२) यह सुप्रीम कोर्ट के मार्फत हो। इससे क्या होगा? गैरजानिबदार (निष्पक्ष) न्याय मिलेगा।

मैंने दोनों सुझाव पसन्द किये और कहा कि ठीक है। ऐसा ही होना चाहिए और यही होगा। अब यह जितना जल्दी हो सके उतना अच्छा ऐसा ये लोग मानते हैं। मैंने यह बात तो मानी। लेकिन मैं यह नहीं मानता कि इससे जम्हूरियत पनपेगी या अच्छी होगी। ऐसा तो तब होगा जब इन जानिबदार पार्टियों के अलावा एक ऐसा समाज होगा जो खिदमत में लगा रहेगा। इसके मानी यह नहीं है कि पार्टीवाले कुछ भी खिदमत नहीं करते। वे भी खिदमत करते हैं। किन्तु उनकी नजर 'इलेक्शन' पर रहती है।

खुदा के चेहरे : चुनाव ?

कुरानशरीफ में आया है कि 'खुदा के चेहरे के दर्शन के लिए हमें दान देना चाहिए।' इन पार्टीवालों के लिए 'खुदा के चेहरे' 'चुनाव' है। चुनाव के लिए दान! चुनाव के लिए खैरात!! खिदमत करेंगे और वे आपसे पूछेंगे कि हमने इतनी खिदमत की तो कितना पाया? ये पक्के बनिया हैं। दो पैसे की खिदमत के चार पैसे चाहते हैं। जरा-सी खिदमत करेंगे और कैमरे से फोटो खिंचवायेंगे। इस तरह से बदले की अपेक्षा रखकर खिदमत करनेवाले लोग खिदमत में जहर मिला रहे हैं।

इन पार्टीवालों के आगे-पीछे अन्दर-बाहर सभी जगह चुनाव का विचार रहता है। यहाँ तक कि बाबा जिनके चुनाव-क्षेत्र में घूमता है, वहाँ भी वे लोग दौड़-दौड़े पहुँच जाते हैं। चाहे उस वक्त पार्लमेंट हो, तब भी वे आते हैं, साथ रहते हैं और काम भी दिखाते हैं। नहीं तो फिर चुनाव के समय लोग उनसे पूछते हैं कि बाबा आया तब आप कहाँ थे? पद-यात्रा में क्यों नहीं आये?

पद-यात्रा के दो मानी हैं। एक तो यह कि पाँव से चलना यानी पैदल चलना पद-यात्रा। और दूसरा मानी है—पद प्राप्ति के लिए पद-यात्रा। पद प्राप्ति

के लिए उसको मिलना चाहिए। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि अच्छा काम भी आप जिस मकसद से करते हैं, उसी पर उसकी कीमत निर्भर रहती है।

ग्रामदान से कुनबा बनेगा

'जमीन बँट के रहेगी' यह नारा लगता है लेकिन जब कोई जमीन दान नहीं देगा तो ऐसे नारे बुलन्द करने से क्या होगा? जब तक जमीन की मालकियत रहेगी तब तक कशमकश बदस्तूर जारी रहेगी। इसलिए सिर्फ जमीन ही नहीं भगवान् ने जो कुछ दिया है वह बाँटना होगा। 'जकात' देना होगा। लोग कहेंगे कि इसमें जरा तकलीफ होती है। लेकिन जरा दूर निगाह से देखो तो कोई तकलीफ नहीं है। दूसरे को दिल खोलकर दोगे भी तो कितने हाथों से? दो से। उसके बदले में हजारों हाथों से पाओगे। यह सौदा घाटे का नहीं मुनाफे का है। खेत में एक सेर बीज बोया तो कितना लौटा? (जवाब मिला—दस मन) यह है अल्लाह की कुदरत! वह बनिया नहीं है। वह बेहिसाब देता है। एक बीज बोओ सौ पाओ। यह खैरात जकात और दान बोने की बात है। ग्रामदान से सारा गाँव एक बनेगा कुनबा बनेगा। सबको समाज का प्यार मिलेगा।

देने से रूहानी तसल्ली होगी

कल अगर कोई हमारे पास पानी माँगने के लिए आये तो उसे पानी देना हम अपना फर्ज समझते हैं। अगर हम उसे पानी न दे सकें, तो शर्मिन्दा हो जाते हैं। हम प्यासे को पानी पिलाते हैं तो उसे जितनी तसल्ली पहुँचती है, उससे ज्यादा हमें पहुँचती है। प्यासे को तो पानी पीने से जिस्मानी तसल्ली होती है, लेकिन पिलानेवाले को रूहानी तसल्ली होती है जिसकी कीमत ज्यादा है। यह इसलिए होता है कि हम महसूस करते हैं कि भगवान् ने पानी सबके लिए पैदा किया है। वह हमारे घर में है, तब भी हम उसके मालिक नहीं हैं। यही बात हवा की भी है। इस तरह जैसे हवा और पानी भगवान् की पैदा की हुई वस्तु है वैसे ही जमीन भी भगवान् की पैदा की हुई चीज है।

जमीन जैसी चीज पर, जो कि हर इन्सान के हर काम के लिए जरूरी है हम मालकियत बतायें तो सुखी कैसे हो सकते हैं? अंग्रेज कहते थे कि हम

हिन्दुस्तान के मालिक हैं, लेकिन उन्हें यह मालकियत छोड़नी ही पड़ी। राजा-महाराजाओं को भी मालकियत छोड़नी पड़ी। इस तरह आप देख रहे हैं कि दुनिया का बहाव किधर है। यह सारा जबरदस्ती से हो, इससे बेहतर है कि वह प्यार से हो। हर कोई छठा हिस्सा दे, यह इसकी इब्तेदाह (आरंभ) है।

हम पानी के बूँद-से बनें

गेहूँ के ढेर में से मुट्ठीभर गेहूँ निकाल लें तो उस जगह का गड्ढा उस ढेर में पड़ता है और वह भरता नहीं है। लेकिन पानी में से थोड़ा पानी निकाल लें तो उसमें जो गड्ढा होता है, वह फौरन भर जाता है। पानी की बूँदें एक-दूसरे पर प्यार करती हैं—जहाँ गड्ढा हो जाता है, वहाँ दौड़ जाती हैं, गड्ढा पैदा ही नहीं होने देतीं। गेहूँ के दाने बेवकूफ होते हैं। कोई महात्मा इसे गड्ढा भरने के लिए जाते अवश्य हैं, पर अन्दर गिर जाते हैं। आज हमारा समाज गेहूँ के ढेर जैसा बना है, किन्तु वह पानी जैसा बनना चाहिए।

सरकार और शान्ति-सेना ३६

पार्टीदार सरकार पर, तो जनता अनाथ !

देश का कारोबार, देश की रक्षा सरकारें करती हैं। वे किसी-न-किसी पक्ष की होती हैं। पाँच साल के बाद उसको बदल सकते हैं। फ्रांस जैसे देश में तो सरकार बन ही नहीं पाती। चार-पाँच महीने में ही सरकार बदलती रहती है। जैसे-जैसे यह पार्टी-पॉलिटिक्स बढ़ेगा, वैसे-वैसे आपका अनुभव बढ़ेगा। अनेक पार्टियाँ खड़ी होती हैं, एक की आकांक्षाओं से दूसरे की आकांक्षाओं की टक्कर होती है। परिणामतः लोगों में झगड़े पैदा होते हैं। आप कभी इस पार्टी को चुनते हैं, कभी उस पार्टी को। कभी यह भी होता है कि जिसके हाथ में सेना है, वह सत्ता ले लेता है। सेना का कमाण्डर-इन-चीफ लोकप्रिय है, मन्त्रिमण्डल कमजोर है, लोगों में पार्टी-पॉलिटिक्स का झगड़ा है, तो उस हालत में वह आम हाथ में सत्ता ले लेता है, जैसा मिस्र में नासिर का हुआ।

पार्टियों से मुक्त होना है

अब यह 'शांति-सेना' 'सर्वोदय' 'ग्रामराज' क्या है? सबका भावार्थ यही है कि आपको अपना कारोबार अपने हाथ में लेना है। आप पार्टी बनाकर अपने पर सत्ता लाद लेते हो, खुद कुछ नहीं करते। अतः पार्टियों से मुक्त होना है। यहाँ इस काम के लिए सर्वोदय-मंडल बना है। लेकिन वह यह नहीं कहेगा कि आपके लिए हम सर्वोदय-समाज बना देंगे। ये तो पार्टीवाले कहते हैं। सर्वोदय-मंडल कहेगा आपको ही बनाना है। भगवान् ने गीता में कहा है, 'उद्धरेदात्मनात्मानम्'—स्वयं हमको अपना उद्धार करना चाहिए। इसीलिए सर्वोदय-मंडलवाले कहेंगे यह आप कर सकते हैं। आपको ही करना है। हम आपको मदद दे सकते हैं। आप चाहें, तो सलाह दे सकते हैं। लेकिन करना होगा आपको ही और आप कर सकते हैं।

सम्मति का गोवर्धन

सरकार सेना रखती है। परन्तु उसके पीछे आपकी सम्मति होती है। आपमें से हरएक ने उसके लिए मदद दी है। मान लीजिये २०-२५ करोड़ का खर्च सेना पर होता होगा। आप सब वह दे रहे हैं। यह मेरे सामने जो छोटा लड़का बैठा है, वह भी दे रहा है। क्या वह कपड़ा नहीं पहनता? कपड़े पर टैक्स लगा है। कभी पोस्ट-कार्ड लिखता है, उस पर टैक्स लगा है। कभी ट्रेन में भी बैठता होगा तो उस पर भी टैक्स लगा है। आप सब टैक्स दे रहे हैं। टैक्स यानी आपकी सम्मति। सरकार चाहे जो करे, उसके लिए आपकी सम्मति है। फिर सरकार सेना रखती है, उसके लिए भी आपकी सम्मति हो जाती है। इस तरह सब लोगों की सम्मति होना यह एक शक्ति है। हम चाहते हैं गाँव-गाँव के लोग अपने लिए शांति-सेना तैयार करें। नित्य-सेवा करने के लिए सेवा-सेना होगी परन्तु रक्षण करने के लिए वही शांति-सेना बनेगी। शांति-सेना की ताकत क्या रहेगी? आप सब लोगों की सम्मति है। आपकी सम्मति न रही तो वह काम नहीं कर सकेगी।

यहाँ के बहुत सारे भाइयों ने संपत्ति-दान दिया। उससे इतना ही हुआ कि इतने ही लोगों की हमको सम्मति मिली। परन्तु सरकार के कारोबार के लिए,

सैन्य के लिए हम छोटे बच्चे की भी सम्मति है। कपड़ा पहनता है, तो जाता है टैक्स सरकार को। इस तरह हर मनुष्य अपनी सम्मति देता है। इसके बिना सरकार की ताकत नहीं बनेगी। उसी तरह शांति-सेना की ताकत तब तक नहीं बनेगी जब तक आप सबकी सम्मति उसे नहीं मिलती। चन्द लोगों ने संपत्ति दान दिया है, लाख करोड़ भी देंगे खूब सेवा-कार्य होगा फिर भी शान्ति-सेना की ताकत नहीं बढ़नेवाली है, क्योंकि सबकी सम्मति नहीं मिली। इसलिए हम चाहते हैं कि हर घर से 'सम्मति-दान' मिलना चाहिए, केवल सम्पत्ति-दान नहीं। शान्ति-सेना का कार्य तो सम्पत्ति-दान से चलेगा परन्तु उसकी ताकत बनेगी सम्मति-दान से। इसके लिए हरएक बच्चा-बड़ा भाई-बहन सबकी सम्मति चाहिए। आपको गोवर्धन पर्वत की कहानी मालूम है? भगवान् ने कहा था मैं तो पर्वत उठा सकता हूँ, उठा भी लूँगा परन्तु उससे आपकी ताकत नहीं बनती। अतः गोकुल के सब बच्चे-बड़े भाई-बहन सबने मिलकर गोवर्धन को उठाया और फिर भगवान् ने अपनी एक उँगली लगायी। मतलब यह कि सब हाथ नहीं लगते तो ताकत न बनती।

घर-घर से एक मुट्ठी

शान्ति-सेना की ताकत बढ़नी चाहिए। उसके लिए आपको क्या करना है? हर घर में जितने लोग हैं उनकी तरफ से सम्मति-दान के तौर पर कुछ देना होगा। सम्पत्ति-दान तो प्रत्यक्ष साक्षात् मदद है। उसमें भी सम्मति है, परन्तु वह हर लड़के से हर बड़े से बहुत से नहीं आती। हर घर से सबका सम्मति-दान लेना है। यह कैसे होगा? हमने सुझाया कि पैसे के बदले अन्न दें तो। हर महीने में पाँच मनुष्य के घर से मूठ की एक मुट्ठी मिलनी चाहिए। उसकी कीमत बीस नये पैसे होगी। मान पाँच मनुष्य के परिवार में से हरएक मनुष्य को चार नये पैसे देने हैं। माने मनुष्य के एक परिवार से बीस नये पैसे मिलने चाहिए। हम पैसे नहीं बीस नये पैसे का अन्न चाहते हैं। अगर यह बात होगी तो बहुत बड़ी शान्ति होगी। घर घर में उत्पादन होने लगेगा। बड़ा और बीमार भी एक मुट्ठी दे सकता है। इस तरह से होगा, तो हर घर से सम्मति मिलेगी। एक मुट्ठी से शान्ति-सेना को बहुत मदद नहीं मिलेगी

ज्यादा मदद मिलेगी सम्पत्ति-दान से, परन्तु ताकत मिलेगी सम्मति-दान से। अतः हर घर से सम्मति मिलनी चाहिए।

किसीका नुकसान नहीं

यह नया विचार है। इसका धीरे-धीरे मैं विकास कर रहा हूँ। केरल में ही यह विचार सूझा है। इसलिए आप लोगों पर इसकी जिम्मेवारी आती है। केरल में १ करोड़ ११ लाख जन-संख्या है। इसलिए २५ लाख से ज्यादा मुट्ठी घर-घर से मिलनी चाहिए। एक ही घर से ५, १ मुट्ठी मिलेगी और इस तरह २५ लाख होंगी तो नहीं चलेगा। हर घर में पाँच मनुष्य मानकर उस हिसाब से हर घर से एक मुट्ठी मिलनी चाहिए। जब यह सम्मति-दान सारे केरल में मिलेगा तब मिलेगा। परन्तु एक तालुके में या किसी एक क्षेत्र में उसका काम शुरू करना चाहिए। अगर एक तालुके में यह काम सफल हुआ तो उसका प्रभाव सारे हिन्दुस्तान पर पड़ेगा। इस कार्य से किसी पार्टी की हानि नहीं है। गाँव में शान्ति-सेना होगी तो न्याय गाँव में ही होगा, झगड़े कम होंगे, चोरियाँ कम होंगी, ज्यादातर सन्तोष ही होगा। परस्पर सहयोग का एक वातावरण रहेगा। इसमें किसी पार्टी का नुकसान नहीं है।

सरकार विरोध क्यों करेगी ?

एक भाई ने पूछा, सरकार विरोध करेगी तो क्या होगा? हमें सरकार द्वारा विरोध करने का कारण ही नहीं दीखता। एक-एक कार्य जनता हाथ में लेती है तो सरकार का भार कम होता है। जिस देश के लोगों में ताकत है, उस देश की ताकत बढ़ती है। मानो हमला हुआ तो सेना जगह-जगह भेज जायगी। अगर ऐसा नहीं हुआ, जनता भयभीत होगी। इसके अलावा अगर शान्ति-सेना गाँव-गाँव में काम करती है तो ऐसे मौके पर सरकार को मदद होगी। फिर उसको सेना जगह-जगह भेजनी नहीं पड़ेगी, क्योंकि जनता स्वयं अपना रक्षण करने के लिए समर्थ है। जनता की शक्ति पैदा कायम है। और फलस्वरूप सरकार की सेना की ताकत बहुत बढ़ेगी।

इतना सुन्दर विचार हमने आपके सामने रखा है। परन्तु केवल विचार सुनने से काम नहीं होता। आपको कुछ करना होगा। आपने इस गाँव में

भी आप शान्ति-सेना तैयार कर सकते हैं। उसके लिए बूढ़े-बच्चे भाई-बहन सबकी सहानुभूति मिलेगी। सब राजनैतिक पक्षों का समाधान होगा। गाँव-गाँव पर शान्ति-सेना का प्रभाव रहेगा तभी देश बचेगा नहीं तो देश खतरे में है। इस तरह की योजना होनी चाहिए कि सरकार को मिलिटरी या पुलिस की याचना करने का मौका ही न मिले। इतनी आत्म-रक्षण-शक्ति होनी चाहिए। लेकिन यह संरक्षण-शक्ति आयेगी कैसे? उसके लिए समाज की शक्ति बनानी पड़ेगी। इसलिए शान्ति-सेना ही नित्य-सेवा-सेना होगी। वे सैनिक ग्रामदान भूदान का प्रचार करेंगे लोगों की सेवा करेंगे और मौके पर बलिदान देने के लिए तैयार रहेंगे। यह भूदान-यज्ञ की नयी प्रक्रिया है। आरम्भ में भूदान में हमने छठा हिस्सा माँगना शुरू किया। फिर मालकियत मिटाने का आवाहन किया। ग्रामदान में ग्रामराज्य निकला। अब ग्राम रक्षण की बात इसमें से आती है। यह आखिरी चीज शान्ति-सेना की सूझी है।

वैक्कम (केरल)
२१-८-५७

विद्यार्थी लोकनीति प्रवीण बनें ४०

विद्यार्थियों के लिए एक बात बार-बार पूछी जाती है कि विद्यार्थियों को राजनीति में हिस्सा लेना चाहिए या नहीं? अब यह समझने की जरूरत है कि हम दुनिया के नागरिक बने हुए हैं, विज्ञान ने हमें जबरदस्ती से दुनिया का नागरिक बना दिया है। आज सारी दुनिया नजदीक आ गयी है, इसलिए अब थोड़े दिन दुनिया बँटेगी फिर सम्मिलन होगा। आज भिन्न-भिन्न देश अलग नहीं रह सकते। इसलिए हमें राजनीति का विचार दूसरे ढंग से करना होगा। अब हमें विश्वव्यापक राजनीति का विचार करना चाहिए। हम अभी व्यापक-विशाल राजनीति को लोकनीति कहते हैं, जिसमें सारा विश्व आ जाता है, हम सारे उसके नागरिक हैं, जिसमें किसीका किसी पर अनुशासन नहीं चलता, हर मनुष्य का अपने पर अनुशासन चलता है। इसी राजनीति और इसी प्रकार

हमें बनाना है। पर विश्व-मानव बनाने की जो राजनीति होगी, उस पर 'राज-नीति' शब्द लागू नहीं पड़ता। इसीलिए हम कहते हैं कि विद्यार्थियों को 'लोक-नीति' में प्रवीण होना चाहिए।

सर्वानुमति की लोकनीति

हमें सर्वानुमति से चलनेवाली नीति ही चाहिए, जिसे लोकनीति कहते हैं। वह किस तरह से आ सकेगी, इस बारे में हम सोचें। इसका थोड़ा-सा आरंभ सुरक्षा-परिषद् ने 'विशेषाधिकार' के रूप में किया है। कांग्रेस में भी सर्वानुमति से प्रस्ताव पास करते हैं। ये मिसालें छोटी हों, तो भी ये लोकनीति के प्रयोग हैं। इन्हें हमें आगे ले जाना है।

पक्ष-शासनवाली राजनीति में विद्यार्थियों को हिस्सा लेना ही क्यों चाहिए? उन्हें तो व्यापक लोकनीति का अध्ययन करना चाहिए और आज के राजनैतिक विचारों का सोशलिज्म, कम्युनिज्म, वेलफेयरिज्म, सर्वोदय आदि का अध्ययन करके उनके गुण-दोषों की चर्चा करनी चाहिए एवं उन्हें अपने विचार व्यापक बनाने चाहिए।

विश्वव्यापी दृष्टि से सेवा में लगें

व्यापक विचार बनाने के बाद यदि वे छोटे क्षेत्र के काम में पड़ेंगे, तब तो कोई हर्ज नहीं है। लेकिन व्यापक विचार बनने के पहले ही वे यदि संकुचित क्षेत्र में पड़ेंगे, तो उनका सारा जीवन संकुचित बन जायगा। हम कहीं भी काम करना शुरू करते हैं, तो छोटे क्षेत्र में ही करते हैं, देह के साथ मर्यादित क्षेत्र में ही करते हैं। माँ काम करेगी, तो परिवार में ही करेगी, ग्रामसेवक ग्राम में ही काम करेगा, देशसेवक देश में ही काम करेगा। इस तरह सेवा-क्षेत्र चाहे छोटा भी हो और घर, गाँव या देश के रूप में सेवा चलती हो, तो भी विश्व-व्यापी दृष्टि से सेवा करनी चाहिए। विद्यार्थियों की ऐसी ही विश्वव्यापी दृष्टि होनी चाहिए। बच्चे की सेवा करते समय माँ की ऐसी संकुचित भावना नहीं रहनी चाहिए कि यह मेरा बच्चा है और मैं उसकी सेवा करती हूँ। बल्कि उसकी ऐसी भावना होनी चाहिए कि सारे विश्व का प्रतिनिधि मेरे घर में आया है, जैसे कौशल्या यह समझकर रामजी की सेवा करती थी कि राम के

रूप में भगवान् ही मेरे घर में आया है। ऐसी भावना से माँ सेवा करेगी तो उस बच्चे की सेवा से माता मोक्ष पा सकती है। जितनी दृष्टि व्यापक रखोगे उतनी सेवा की कीमत बढ़ेगी। सेवा की कीमत उसके परिणाम पर निर्भर नहीं है।

सेवा का रहस्य

सेवा छोटी है या बड़ी इसकी कीमत नहीं है। किस भावना से किस दृष्टि से वह की जा रही है उसीकी कीमत है। छोटी दृष्टि से देश की सेवा करना संकुचित विचार ही माना जायगा और बड़ी दृष्टि से घर की सेवा करना बड़ा विचार होगा। आज बड़े-बड़े देश के नेता देश की सेवा करते हैं, परंतु उनका विचार छोटा होता है, तो क्या परिणाम आता है? हिटलर ने जर्मनी की सेवा की। वह अपने को देशसेवक ही समझता था और सारे जर्मनी की चिंता करता था। परंतु वह संकुचित बुद्धि से चिंतन करता था। परिणाम यह आया कि सारा समाज विनाश की तरफ गया।

विद्यार्थियों को राजनीति में पड़ना चाहिए या नहीं इसका विचार भी ऐसी बुनियादी दृष्टिकोण से करना चाहिए। आज जो राजनीति चल रही है वह अत्यन्त संकुचित है। वह समाज के टुकड़े करती और सत्ता के जरिये सेवा करना चाहती है। महापुरुषों ने इससे बिलकुल उलटी प्रक्रिया बतायी थी। उन्होंने कहा था कि हमारी आज्ञा किसी पर नहीं चलनी चाहिए, हरएक को हमारा विचार सुनने-समझने का अधिकार है। अगर उसे विचार जँचेगा तो वह कबूल करेगा, न जँचेगा तो उसका परित्याग करेगा।

कल्याण-राज्य यानी जड़ दशा

आज की राजनीति तो सत्ता के जरिये समाज पर कुछ चीजें लादने की कोशिश करती है। 'कल्याण-राज्य' से तो भयानक कोई राज्य ही नहीं हो सकता। दीखने में तो यह बड़ा सुन्दर विचार दीखता है। कहा जाता है कि 'पुराना राज्य केवल पुलिस-राज्य था वह केवल रक्षण की चिंता करता था और कुछ नहीं। सारा काम समाज ही करता था। अब पुरानी सरकार गयी और नयी सरकार आयी जो समाज के कल्याण की चिंता करती

है।" पर कल्याण राज्य की भी कल्पना नयी तो नहीं है! कालिदास ने रघुवंश में राजा दिलीप के राज्य का वर्णन किया है जो आदर्श कल्याण-राज्य कहा जा सकता है 'प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।' वह राजा प्रजा का रक्षण पालन-पोषण सभी करता था। इसलिए 'स पिता' वही प्रजा का पिता था 'पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः'।—बाकी सारे बाप केवल जन्म देनेवाले थे। हम तो कालिदास का यह श्लोक पढ़कर बिलकुल घबड़ा गये। अगर ऐसा राज्य हो तो वह बड़ी भयानक कल्पना है। जिसमें जनता के जीवन को सब तरह से जकड़कर बाँधा जाता है, उसमें जनता को स्वतंत्र रीति से कुछ भी काम करना नहीं होता। देश के हर काम के लिए सरकार की तरफ से ही योजना बनती है। समाज-सुधार, खेती-सुधार, बच्चों शिक्षण साहित्यिकों को उत्तेजन देना उद्योगों के बारे में पॉलिसी (नीति) तय करना रक्षण आदि सब सरकार करेगी और लोग रक्ष्य बनेंगे। यह बिलकुल जड़ दशा है, यह तो भेड़ों की अवस्था है।

बेंगलोर
१०-१०-५७

सूद लोकतन्त्र का दुश्मन ४१

आज एक भाई ने मुझसे पूछा कि ग्राम-स्वराज्य की सारी जमीन तो गाँव-सभा की हो गयी। उस गाँव में मजदूरी की शक्ति तो है ही—मजदूर तो है ही परन्तु गाँव को पूँजी की जरूरत पड़े तो वह पूँजी कहाँ से लायगे? वे लोग अपने जीवन में श्रम करें और बचायें तो कुछ पूँजी खड़ी कर सकते हैं। मैंने उनसे कहा 'यह ठीक ही है। ऐसा तो उनको करना ही चाहिए।' इसमें कोई शक नहीं कि हम परदेश से पूँजी लाकर ग्राम-स्वराज्य न ला सकेंगे। फिर भी गाँव का पैसा खूटनेवाली राज्य-संस्था का भी गाँव के बारे में कुछ कर्तव्य है या नहीं? वे भाई कहने लगे 'सरकार ऋण दे सकती है परन्तु वह ब्याज लेकर ऋण देती है।

यह सुनकर मैंने कहा कि क्या बाप भी अपने लड़के से ब्याज लेता है? सरकार लोगों से ब्याज लेती है, तो क्या यह उचित कहा जायगा? ग्रामोद्योगों को खड़ा करने के लिए पूँजी चाहिए। जो माल गाँव में पैदा करना है वह कच्चा माल भी गाँव में होना चाहिए। सरकार ने भी यह कबूल किया है और पंचवार्षिक योजना में भी यह है। इसके लिए खादी-ग्रामोद्योग कमीशन बना है। फिर भी ऐसे पाप हमारे समाज में चलते हैं। ब्याज लेना महापाप है। ब्याज पर अभी तक सभी धर्मों ने प्रहार किया है। कुरान में मुहम्मद साहब ने कहा है कि "अरे मूर्खो तुम क्या चाहते हो? संपत्ति बढ़े यही चाहते हो न? तो तुम्हारी संपत्ति क्या ब्याज से बढ़ेगी? तुम दान दो न! तब संपत्ति बढ़ेगी। परन्तु इस पर कोई अमल नहीं करते। सारा व्यापार व्यवहार सूद पर चलता है।

हमारा अन्तिम लक्ष्य व्यापार को ब्याज से छुड़ाना ही है। तब सरकार ब्याज क्या ले? जनता से ज्यादा पैसा क्यों ले? इसके विरोध में जनता को आवाज उठानी चाहिए। टॉल्स्टॉय ने जमीन की मालकियत को महान् अनीति कहा है। वैसे ही जनता से ब्याज लेना महान् पाप है, महान् अनीति है। जैसे 'अहिंसा परमो धर्मः' कहते हैं उसी तरह ब्याज लेना 'परम अधर्म' कहा जायगा। परन्तु हम ऐसे आदी हो गये हैं कि चार पैसे दें तो भी पूछेंगे कि क्या इसका ब्याज मिलेगा? इस ब्याज से शोषणशाही के लिए और हिंसा के लिए एक रास्ता निर्माण हुआ है। ब्याज शोषणशाही और अहिंसा का शत्रु है। इसलिए उस पर प्रहार करना ही होगा। जिस तरह जमीन की मालकियत तोड़नी है उसी तरह ब्याज भी तोड़ना है।

बीरभीर (गुजरात)
२१-१०-५८

प्रश्न : "सत्याग्रही लोकसेवक राजनैतिक दलों का सदस्य बना रहे, तो क्या हर्ज है ?"

उत्तर : "हम मानते हैं कि जो शख्स किसी भी दल का सदस्य बनेगा वह अपनी नैतिक शक्तियों को निश्चय ही कम करेगा। शुद्ध धर्म-कार्य करने वालों को राज्य-सत्ता से अलग ही रहना चाहिए। जहाँ आपने कहा कि मैं अमुक पार्टी का हूँ, वहीं आप दूसरी पार्टियों के नहीं रहे। जहाँ आपने कहा कि मैं हिन्दू हूँ वहीं आप मुसलमान नहीं रहे। हम तो सब पर समान प्रेम करना चाहते हैं।

आप कहें कि हम किसी पार्टी में रहते हैं तो उस पार्टीवालों के साथ संपर्क रहता है। लेकिन संपर्क केवल शरीर का नहीं मानसिक भी होता है। टॉल्स्टॉय ने साठ साल पहले एक किताब लिखी थी। उसमें उन्होंने लिखा था कि 'जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए'। उसी वक्त मेरा जन्म हुआ। मैं मानता हूँ कि शायद उन्होंने यह लिखकर अपनी वासना मुझमें भर दी। हम जनता को लोकनीति का विचार देना चाहते हैं। आप जहाज में बैठकर कहीं जा रहे हैं किनारे पर जो प्रकाश-गृह है, वह आपको मदद देता है। अगर आप चाहें कि वह प्रकाश-गृह भी किनारा छोड़कर आपके साथ जहाज में चले, तो कैसे चलेगा ? प्रकाश-गृह के तौर पर ही कुछ लोग राजनीति से अलग रहें तो देश के लिए अच्छा होगा। दुनिया में कुछ तो ऐसे मुक्त पुरुष रहने ही चाहिए, जो दुनिया के सामने चिरकालीन मूल्य रखें।

कन्नादरी (मद्रास)
१-१ '५७

वाराणसीवासी पंचसूत्री कार्यक्रम अपनायें।

काशी को सर्वोदय नगरी बनाने के लिए मैंने तीन बातें बतायी हैं। स्वच्छ-सुन्दर होने पर मन शुद्ध होता है। इसलिए पहली बात यह है कि काशी अत्यन्त स्वच्छ-सुन्दर निर्मलतम बननी चाहिए। पश्चिम से लोग आते हैं तो मुझे सुनाते हैं कि इधर मिस्र से 'डर्टी होल' शुरू होता है। उसमें काशी भी शामिल है। यह हमें शोभा नहीं देता। स्वच्छ काशी-अभियान में बहनों का भाइयों का स्वयंसेवकों का नागरिकों का कर्तव्य है कि वे सब इसमें योग दें। यहाँ की छोटी-छोटी बस्तियों की सफाई होनी चाहिए। रोज कम-से-कम पन्द्रह मिनट के लिए यह काम सब मिल कर करें।

शराब-बन्दी

दूसरी बात जो आठ साल पहले ही हमने बतायी थी यह है कि काशी में शराब-बन्दी होनी चाहिए। मालूम नहीं क्या माया है कि अभी तक यह काम नहीं हुआ है। अब मुझे कह रहे हैं कि यहाँ दो-तीन जिलों में शराब-बन्दी की है लेकिन वहाँ हम यशस्वी नहीं हो रहे हैं इसलिए अब हम सोच रहे हैं कि क्या पूरे प्रान्त में करने से यशस्वी होंगे? मसला तो पहले से सोची है अब मैंने सोचने की बात। मैंने कहा अरे भैया काशी में हम स्नान करके घाट पर चढ़ते हैं तो विलायती शराब की दुकान हमें दिखती है। मंत्रियों से बात करता हूँ तो सहानुभूति दिखाते हैं और कहते हैं "हाँ देखेंगे सोचेंगे।" मंत्री का ऐसा ही शब्द होता है। 'करेंगे' शब्द नहीं निकलता। 'अंडर कन्सिडरेशन अंडर एक्टिव कन्सिडरेशन' ऐसा ही शब्द उनका होता है। ऐसा शब्द तब तक होगा जब तक आप और हम मिलकर नहीं जागेंगे। इसलिए यहाँ के सब सम्मानी सर्वोदय-सेवक कार्यकर्ता—सब मिल कर यह प्रचार करें कि सर्वोदय नगर बनाने के लिए पहला काम यह होना चाहिए। सरकार को दिखना होगा कि लोग चाहते हैं और फिर सरकार हिम्मत करेगी। वास्तव में शराब-बन्दी का सारे

भारत में ही होनी चाहिए। अब उसके लिए सरकार ने एक कमेटी मुकर्रर की है। वह कहती है कि हिन्दुस्तान में पहले आठ लाख गैलन शराब लोग पीते थे अब पौने आठ गैलन पीते हैं याने पाव गैलन कम हुई है। धीरे-धीरे और कम होगी। लेकिन देखिये महात्मा गौतम बुद्ध ने इसी सारनाथ में कहा था पुण्य कार्य में सुस्ताते हैं, तो पाप जोर करता है। मंद गति से पुण्य करते हैं तो तीव्र गति से पाप होता है। यहाँ गंगा नदी है, यहाँ संस्कृत विश्वविद्यालय है—ऐसे सुन्दर कार्य यहाँ होते हैं वहाँ शराब क्यों चलनी चाहिए?

पंचमहापातकी

शास्त्रों में पंचमहापातक बताये हैं।

(१) सुवर्ण की चोरी करनेवाला पापी है। जिसने जिन्दगीभर मेहनत करके सुवर्ण इकट्ठा किया उसकी जो चोरी करेगा वह पापी है।

(२) जो शराब पीनेवाला है, वह भी पापी है।

(३) गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार करनेवाला महापापी है।

(४) ब्रह्म-हत्या करनेवाला ब्रह्मज्ञानी की हत्या करनेवाला महापापी है। ये चार महापातक बताये हैं और—

(५) पाँचवाँ यह बताया है कि इन चारों के साथ जो व्यवहार करेगा वह पाँचवाँ महापातकी है। अब मैं कहता हूँ, इसके आधार पर राज चलाने वाला कौन है? शराब की आमदनी पर राज करनेवाला कौन कहा जायगा? मेरे प्यारे भाइयो मैं सब शब्द मैं नहीं जोड़ रहा हूँ। शास्त्र बोल रहा है।

अशोभनीय पोस्टर्स

इन दिनों गृहस्थाश्रम की बुनियाद उखाड़ी जा रही है। सब आश्रमों में गृहस्थाश्रम भी एक आश्रम है। पावित्र्य और कारुण्य इन दोनों के आधार पर गृहस्थाश्रम आज तक चलता था। उसे पावित्र्य का आधार है। पति-पत्नी के अत्यन्त निर्मल संबंध हैं। उन पर गृहस्थाश्रम चलता है और यह गृहस्थाश्रम हमने परमेश्वर-तत्त्व में ही दाखिल किया है। इसीलिए हम 'सीताराम' और 'राधाकृष्ण' कहते हैं। तुलसीदास कहते हैं "सियाराम मय सब जग जानी।" स्त्री-पुरुष का समावेश ईश्वर-तत्त्व में हमने किया।

है। लेकिन इसके लिए मैं सत्याग्रह नहीं करूँगा। इसके लिए तो लोकमत तैयार होना चाहिए, लेकिन पोस्टर्स तो आज ही हटने चाहिए। उनको हटाना ही होगा। अगर सरकार या निगम उन्हें हटाती नहीं तो मैं मानता हूँ कि यह नागरिकों के मूलभूत अधिकार पर प्रहार है और बच्चों के लिए मुफ्त लाजिमी तालीम है। 'फ्री एण्ड कम्पलसरी एज्युकेशन इन सेन्सुआलिटी'। क ख ग, ग बच्चा सीखेगा बड़े-बड़े हरफ और उसके साथ चित्र वह सीखता है। चित्र के जरिये अक्षर का परिचय उसे होता है। ग माने गमला खरगोश का ख इस तरह बच्चा सीखता है।

इन दिनों तो एक नयी खोज हुई है। एक जगह कुछ स्कूलवालों ने बताया कि पहले तो गमला का ग चलता था लेकिन अब गधे का ग चलता है। मेरे मन में गधे के लिए बहुत प्यार है, इसलिए उसके लिए मुझे कुछ कहना नहीं है। मैं कहना यह चाहता हूँ कि इस तरह बड़े-बड़े अक्षर और उसके साथ चित्र जिससे बच्चा पढ़ता है, उससे भी बड़े-बड़े टाइप में सिनेमा पोस्टर्स पर वह चित्र और शब्द देखता है। उससे बड़ा टाइप बच्चे को कहीं नहीं मिलेगा। यह जब तक चलता रहेगा तब तक बुनियादी या और कोई तालीम नहीं चलेगी। आप मुझसे पूछ सकते हैं कि मुझे भी अभी कैसे जागृति आयी इसका उत्तर दे सकता हूँ कि दस साल से मैं घूम रहा हूँ। बड़ौदा में मैं पचास साल पहले था उस वक्त ऐसी कोई बात नहीं थी। उसके बाद मैं गांधीजी के आश्रम में रहा तो शहर के साथ कोई खास ताल्लुक नहीं आया। अब उसके बाद भूदान-यात्रा में शहरों में जाता था तो एकाध दिन ठहरता था। इस बीच शहर को मैं क्या देखता शहर मुझे देखता था। इन्दौर ही पहला शहर है, जिसकी गली-गली में और बाजारों-बाजारों म मैं गया। यहाँ मेरे करीब १८२ व्याख्यान हुए और यहाँ ये पोस्टर्स देखने का मौका मिला और मैं जाग गया। गृहस्थाश्रम की कोई कीमत नहीं रही है, कोई मान्यता नहीं रही है। इसकी बुनियाद उखाड़ी जा रही है, इसलिए पोस्टर्स के बारे में मैं तीव्रता से सोचता हूँ।

सर्वोदय-नगरी बनाने के लिए, स्वच्छ काफी शराब-बन्दी और गन्दे पोस्टर्स हटाना यह बिलकुल सामान्य मामूली स्वच्छता हो गयी। उसके आधार पर फिर सर्वोदय-नगर बनेगा।

आश्रम धर्म की स्थापना

एक बात और। मैं यहाँ काशी में आश्रम-धर्म की स्थापना करना चाहता हूँ। गृहस्थाश्रम के बाद वानप्रस्थाश्रम होता है। उसकी स्थापना करना मेरा मिशन है। हिन्दू धर्म की बहुत ही बड़ी देन है—आश्रम-विचार और वर्ण व्यवस्था। वर्ण-व्यवस्था अलग-अलग हो सकती है। सत्य-युग में एक ही वर्ण था—हंसवर्ण बल्कि यह भी कहा गया है कि संन्यासी तो सब वर्णों से मुक्त है। लेकिन आश्रम अलग और वर्ण अलग है। आश्रम सब समाज में सब देशों में लागू हो सकता है। इसलिए मुझे यहाँ वानप्रस्थाश्रम और गृहस्थाश्रम की बात करनी है। इन्दौर में वानप्रस्थाश्रम की स्थापना हुई है। एक विशिष्ट उम्र में गृहस्थाश्रम से अलग होकर विषय-वासना से मुक्ति पानी पड़ती है। वैसे तो मनुष्य उससे छूटता नहीं है उसको छुटकारा कर लेना पड़ता है।

संन्यासी भी सामने आयें

स्वयंभू मनु महाराज की कहानी है। तुलसीदासजी ने वर्णन किया है कि उनकी आसक्ति नहीं छूटती थी। आखिर पुत्र के हाथ में राज्य सौंप कर 'बरबस गमन बन कीन्हा'। अपने पर जबरदस्ती करने का मौका उनको आया। विषय-वासना ऐसे ही नष्ट नहीं होती। उस पर नियमन रखने का काबू रखने का काम करना ही होगा। पैंतालीस साल की उम्र में वानप्रस्थ-वृत्ति धारण करनी चाहिए। उसके लिए जगह-जगह 'लोकमत' बनाना होगा। हिन्दुस्तान में औसत आयु भी कम ही है इसलिए चालीस-पैंतालीस के अन्दर-अन्दर यहाँ वानप्रस्थाश्रम को स्वीकार करना चाहिए और कार्य का भार घर में लड़के पर या छोटे भाई पर सौंपना चाहिए। समाज की निष्काम-सेवा में लगना चाहिए। वर्ण-व्यवस्था दूसरे तरीके से आयी है। भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न तरीकों से वह चल सकती है। लेकिन आश्रम-व्यवस्था जो यहाँ पहले चलती थी, वह चलानी होगी। इस १० लाख की काशी में दस हजार वानप्रस्थाश्रमी होंगे। इनसे समाज के सेवक होंगे अगर यह आश्रम का विचार पहले जैसा चलता रहता। लेकिन वह व्यवस्था मिट गयी है। वैदिक संस्कृति का केवल अभिमान रखते हैं। उसमें जितनी वैचारिक सहानुभूति रखते हैं वह नहीं वह करते। केवल

अभिमान से क्या होता है, उस मुताबिक काम करना चाहिए। काशी में ऐसे कितने ही लोग हैं जो संन्यास लेकर घूम रहे हैं। उन लोगों को इस काम में लगना चाहिए। तो सार्वत्रिक ब्रह्म-प्रचार होगा और कम-से-कम यहाँ वान-प्रस्थाश्रम की स्थापना होगी। यह एक बहुत बड़ा काम यहाँ होगा।

काशी (उत्तर प्रदेश)

१५ ११ ६

सर्व-सेवा-संघ का चुनाव प्रस्ताव

सर्व-सेवा-संघ का लक्ष्य अहिंसक समाज-रचना है। उसका यह विश्वास है कि हुकूमत के मार्फत अहिंसक समाज कायम नहीं किया जा सकता। लोकतंत्र का आखिरी आधार लोक-सम्मति है, यह तो मानी हुई बात है। उसकी सिद्धि के लिए पक्ष-निरपेक्ष समाज-व्यवस्था की ओर कदम बढ़ाना आवश्यक है। अतएव सर्व-सेवा-संघ सत्ता-प्राप्ति की राजनीति में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी प्रकार का हिस्सा नहीं ले सकता। जिस पक्ष के हाथ में हुकूमत है या जो पक्ष अपने हाथ में हुकूमत लेना चाहते हैं, उन सबकी तरफ सर्व-सेवा-संघ तटस्थ बुद्धि से देखता है। आज लोकतंत्र 'पक्षनिष्ठ' है। उसको 'लोकनिष्ठ' बनाने के लिए पक्ष-निरपेक्ष और पक्षातीत भूमिका की वह आवश्यकता मानता है। उसे किसी भी एक पक्ष की हार या जीत में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं हो सकती। कारण जाहिर है कि मत-परिवर्तन की प्रक्रिया हार और जीत से परे है। हम किसीकी हार या जीत चाहेंगे तो दोनों में से किसीका भी हृदय-परिवर्तन करने की पात्रता खो देंगे। इसलिए सर्व-सेवा-संघ न तो चुनावों में स्वयं किसी तरह का हिस्सा ले सकता है और न किसी व्यक्ति को चुनाव के विषय में किसी प्रकार की सलाह देना उपयुक्त ही मानता है।

"लेकिन आज की हालत में सर्वोदय-सिद्धान्तों को माननेवाले कुछ व्यक्ति मतदान के अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहेंगे। वे स्वाभाविक ही शान्तिमय साधनों में विश्वास न करनेवाले अथवा सम्प्रदायवादी उम्मीदवारों को अपना वोट देना उचित नहीं मानेंगे। जो व्यक्ति भिन्न-भिन्न राजनीतिक पक्षों के सदस्य हैं वे यह तो जानते ही हैं कि नागरिक के लिए वोट देने का कर्तव्य जितना पवित्र माना जाता है उतना ही विशिष्ट परिस्थिति में वोट न देने का कर्तव्य भी पवित्र है। इसलिए उनका पक्ष अयोग्य आदमियों को उम्मीदवारी के लिए खड़ा करे, तो हरएक लोकनिष्ठ नागरिक का यह कर्तव्य हो जाता है कि पक्ष का सदस्य होते हुए भी वह उस उम्मीदवार को वोट न दे।

धर्मपुरी (सेलम)
५-८-५६

परिशिष्ट : २

लोकतांत्रिक व्यवहार की आचार-मर्यादा

हिंसक और गैरकानूनी कार्रवाइयों की बढ़ती हुई भावना पर देश में जो चिन्ता प्रगट की जा रही है, उसमें सर्व-सेवा-संघ भी शरीक है। हालां कि संघ की मान्यता है कि मानव-समाज में हिंसा की समस्या का बुनियादी हल हिंसा की जड़ पर प्रहार करने का है, जैसा कि भूदान-ग्रामदान आन्दोलन करने का प्रयत्न कर रहा है, संघ यह भी महसूस करता है कि सार्वजनिक अव्यवस्था को बढ़ानेवाले जो तात्कालिक कारण हैं, उन्हें भी दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

मुल्क में जो परिस्थिति पैदा हुई है उसके कई कारण हैं, पर इससे भी सब सहमत होंगे कि राजनैतिक दलों में आपस में जो संघर्ष चलता है और उसके फलस्वरूप जो तनाव और दलबन्दी का वातावरण प्रगट होता है, उसका भी इस परिस्थिति को पैदा करने में कम हिस्सा नहीं है।

सामाजिक अशांति की परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए संघ ने विनोबाजी की प्रेरणा से और उनके मार्गदर्शन में मुल्क के सामने शांति-सेना और सर्वोदय-पात्र का द्विविध कार्यक्रम रखा है।

लेकिन संघ की यह दृढ़ मान्यता है कि राजनैतिक दलों के आपसी संघर्ष से जो अशांति पैदा होती है, उसे दूर करने में राजनैतिक दल स्वयं बहुत मदद पहुँचा सकते हैं—अगर वे सार्वजनिक जीवन में लोक-तांत्रिक व्यवहार के बारे में एक सर्व-मान्य आचार-मर्यादा अपने आपस में तय कर लें।

इस सम्बन्ध में संघ यह महसूस करता है कि कम-से-कम नीचे लिखी बातों के बारे में राजनैतिक दलों को सहमत हो जाना चाहिए

१ राजनैतिक पार्टियाँ अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हिंसक तरीके काम में नहीं लायेंगी।

२ किसी राजनैतिक दल से संबंधित कोई व्यक्ति या गिरोह हिंसक कार्यवाहियों में भाग लेता है, तो संबंधित राजनैतिक दल उस कार्यवाही का खंडन करे और अपने सदस्यों को ऐसी कार्यवाहियों से रोके।

३ सार्वजनिक आन्दोलनों के सिलसिले में पुलिस या मिलिटरी द्वारा गोली चलाने को सरकार भरसक टालने की कोशिश करे। अगर किसी मौके पर सरकार को गोली चलाने के लिए बाध्य होना पड़े तो ऐसी हर घटना की 'ज्युडिशियल' जाँच होनी चाहिए।

४ ग्राम-पंचायतों तथा सहकारी समितियों के चुनावों में राजनैतिक पार्टियाँ अपने उम्मीदवार खड़ी न करें और इन संस्थाओं का व्यक्तिगत या दलीय हित के लिए उपयोग करने से सदस्यों को रोकें।

५ राजनैतिक पार्टियाँ अपने राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए धार्मिक संस्थाओं का उपयोग न करें।

६ राजनैतिक पार्टियाँ आन्दोलनकारी या दलीय उद्देश्यों की पूर्ति के कामों में विद्यार्थियों का उपयोग न करें और विद्यार्थी-समाज को दलीय संगठनों में विभाजित न करें।

७ अभी हाल ही में देश में जो चंद राजनैतिक घटनाएँ घटी हैं उन्हें ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक मालूम होता है कि सार्वजनिक आन्दोलनों के स्वरूप और पद्धति की मर्यादाओं के बारे में भी राजनैतिक पार्टियाँ लोकशाही के बुनियादी उसूलों के अनुकूल कुछ आपसी समझौता करें।

पठानकोट (पंजाब) सर्व-सेवा-संघ की बैठक में
१४ ९ ५९ स्वीकृत निवेदन

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

मोहब्बत का पैगाम (विनोबा)

जम्मू-कश्मीर की पदयात्रा में विनोबाजी ने वहाँ लगभग १९ प्रवचन किये। इन प्रवचनों में बाबा ने कश्मीर के सौंदर्य की सराहना के साथ-साथ सियासी और मजहबी मसलों पर जो रोशन किया है वह हृदय को सीधा छूता है। तीसरा संस्करण प्रेस में। पृष्ठ ७५ । मूल्य २५ सजिल्द १ । उर्दू में भी प्राप्य १ ।

समग्र ग्राम-सेवा की ओर (तीसरा खंड)

(धीरेन्द्र मजूमदार)

इस ग्रंथ का तीसरा खंड भी छप गया है। इसमें भारत की आजादी से लेकर अब तक की राजकीय तथा रचनात्मक प्रवृत्तियों का सूक्ष्म दर्शन तथा भूदान-ग्रामदान-आंदोलन की नैतिक और सर्वोदयी भूमिका के अनुभव गहरी और मार्मिक दृष्टि से किये गये हैं। सन् '४५ से बापू-निधन तक तथा स्वराज्य-प्राप्ति के बाद के १ वर्षों का जीवित इतिहास-दर्शन। पुस्तक हर रचनात्मक कार्यकर्ता के लिए पठनीय और मननीय है। पृष्ठ १९६, सजिल्द पुस्तक का दाम २५ । प्रथम दोनों खंड भी उपलब्ध हैं। सजिल्द का मूल्य १५

गाँव-आन्दोलन क्यों ?

(जे० सी० कुमारप्पा)

गांधीजी की प्रस्तावना सहित भारत में ग्राम-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था के लिए एक दलील। हाथ-कागज पर छपी। पृष्ठ २ ८ मूल्य २५ । अंग्रेजी १ ।

स्थायी समाज-व्यवस्था

(जे० सी० कुमारप्पा)

(अभिनव संस्करण दोनों भाग संयुक्त)

किस प्रकार देश की शोषणयुक्त वर्तमान समाज-व्यवस्था को हटाकर स्थायी समाज-व्यवस्था स्थापित हो सकती है, इसीका विवेचन इसमें किया गया है। हाथ-कागज पर छपी। पृष्ठ ९१ मूल्य २५ । मराठी २५ अंग्रेजी १ ।

दादा की नजर से लोकनीति (विमला ठकार)

इस पुस्तक में 'लोकनीति' विषय पर बम्बई में किये गये दादा के तीन भाषणों का संकलन श्री विमलाबहन ने किया है। राजनीति के कार्यों के लिए इसमें सर्वथा मौलिक चिंतन मिलेगा। मूल्य ५ ।

चम्बल के बेहड़ों में बागियों का आत्मसमर्पण

(श्रीकृष्णदत्त भट्ट)

भिंड-मोरेना क्षेत्र में डाकुओं (बागियों) की समस्या से प्रजा और सरकार दोनों सब परेशान थे। विनोबाजी ने उस क्षेत्र में प्रवेश किया। डाकुओं से मिले। उन्हें शांति और प्रेम का सन्देश सुनाया। अनेक डाकुओं का हृदय विश्व-मानव विनोबा के आगे पसीजा। यह सब कहानी मधुर, अद्भुत और आश्चर्यक है। लेखक ने आँखोंदेखा वर्णन इस अपूर्व ग्रंथ में किया है। अनेक चित्रों से परिपूर्ण ४२ पृष्ठ की इस पुस्तक का दाम केवल २५ सचित्र १ ।

एशियाई समाजवाद : एक अध्ययन

(अशोक मेहता)

विषय नाम से स्पष्ट है। लेखक ने अपने अनुभव और अध्ययन के परिणामस्वरूप यह महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखा है। विश्व की समाजवादी व्यवस्थाओं का अध्ययन करने के लिए इसका अपना स्थान है। मूल्य १ ९ ।

लोकतांत्रिक समाजवाद

(अशोक मेहता)

यह पुस्तक भी अपने ढंग की निराली है। दोनों ग्रंथ एक-दूसरे के पूरक हैं। मूल्य १ ५ ।

विश्व-शान्ति क्या संभव है? (कैंटवेल स्मिथ)

आज विश्व में सब तरफ से शान्ति-शान्ति की आवाज आ रही है। बड़े-बड़े सबसे राष्ट्र भी अब हिंसा और हथियारों से घबरा उठे हैं। लेखक ने शान्ति की समस्या पर गंभीर विचार किया है। मूल्य १ २५।

अहिंसात्मक प्रतिरोध (श्री ससित ई० हिनया)

लेखक की अंग्रेजी पुस्तक Nonviolent Resistance का अनुवाद है। आज दुनिया में जहाँ एटम और हाइड्रोजन बम का आविष्कार हुआ है वहाँ शांति की प्यास भी बढ़ गयी है। शांति की दिशा में किया गया यह निबंध हमारे हिन्दी पाठकों को अवश्य विचार की सामग्री देगा। पृष्ठ ८४ मूल्य ५

अफ्रीका में गांधी (जॉसेफ जे० डोक)

स्व० डोक साहब ने गांधीजी पर लगभग ४ वर्ष पूर्व एक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी थी। उसीका यह हिन्दी अनुवाद पहली बार प्रकाशित हुआ है। यह किताब तब लिखी गयी थी जब गांधीजी 'महात्मा' नहीं बने थे और भारत की राजनीति में नहीं उतरे थे। गांधीजी के मानवीय स्वरूप को एक विदेशी की नजर से देखने के लिए पुस्तक बड़ी उपयोगी है। पृष्ठ १४४ मूल्य १

मानवता की नवरचना (डॉ पितिरिम ए० सोरोकिन)

लेखक मनोविज्ञान और राजनीति के प्रखर विद्वानों में हैं। अमेरिका में रहते हुए उन्होंने यह पुस्तक सर्वोत्तम-सिद्धान्तों का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लिखी है। अनुवादक हैं श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट जिनकी मीठी लहराती शैली से हमारे पाठक सुपरिचित हैं। पृष्ठ ११ मूल्य २५। सजिल्द ३।

गांधी एक सामाजिक क्रान्तिकारी (विल्फ्रेड वेलॉक)

लेखक अंग्रेज विद्वान् हैं। भारत से उन्हें विशेष दिलचस्पी रही है। गांधीजी पर उन्होंने अपने विचार बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त किये हैं। पुस्तिका छोटी होने पर भी विचारों में क्रांतिकारी है। पृष्ठ ५२, मूल्य १०।

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
रा ज घा ट का शी